“ नारदीय एवं अग्नि पुराण में वर्णित व्रतों का तुलनात्मक अध्ययन ”

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
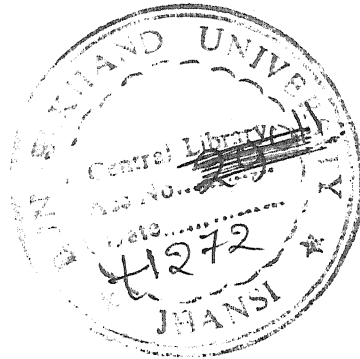
निर्देशक :-

डा० जगदेव प्रसाद पाण्डेय

अध्यक्ष—संस्कृत विभाग

अतर्रा पी० जी० कालेज

अतर्रा (बाँदा)

शोधकर्त्री :-

कु० साधना रिछारिया

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ० प्र०) १९-९३

॥ श्री ॥

जिनके पुण्यप्रकर्ष और आशीर्वचन की रश्मियाँ

मेरे जीवन को सदा आलोकित करती

रही हैं, उन्हीं साकेतवासी परमपूज्य

पिता स्व0के0एन0रिछारिया एवम्

माता स्व0श्रीमती श्यामा रिछारिया

के दिव्य चरणों में सादर
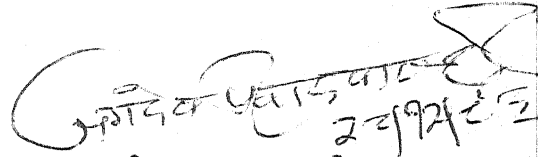
समर्पित

—

प्रमाणपत्र

डा0जगदेव प्रसाद पाण्डेय,
अध्यक्ष – संस्कृत विभाग,
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा(बांदा)

प्रमाणित किया जाता है कि कु0 साधना रिछारिया ने मेरे निर्देशन में "नारदीय एवं अग्निपुराण में वर्णित व्रतों का तुलनात्मक अध्ययन" शीर्षक पर अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण कर लिया है। यह शोध प्रबन्ध शोध छात्रा की अपनी मौलिक कृति है। कु0रिछारिया ने विश्व विद्यालय द्वारा निर्धारित अवधि तक मेरे यहाँ उपस्थित रहकर अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण किया है।

दिनांक
मार्गशीर्ष पूर्णिमा भौमवार
२८ दिसम्बर १९९३ ई.

जगदेव प्रसाद पाण्डेय
28/12/93

(डा0जगदेव प्रसाद पाण्डेय)
निर्देशक
अध्यक्ष – संस्कृत विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज,
अतर्रा (बांदा)

भूमिका

भारतीय जीवन संस्कृति के मूलाधार वेद हैं। वेद भगवान के स्वाभाविक उच्छ्वास हैं अतः वे भगवत्स्वरूप ही हैं। प्राचीनता को अद्यतन स्वरूप देने की प्रेरणा के कारण ही पुराण की महत्ता वेदों से कहीं अधिक आकलित की गयी है। प्राचीनतम अष्टादश पुराण साहित्य की अपनी एक विशिष्ट महत्ता है। उनका अपना गम्भीर गुरुतर अनुपम इतिहास है। भारतीय जनता के हृदय में भक्ति, ज्ञान वैराग्य, सदाचार तथा धर्मपरायणता को दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित करने का श्रेय पुराणों को ही है। वेद, शास्त्र, ईश्वर, वर्णाश्रम, धर्म, पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता एवं परलोक की सत्ता पर जो हमारा अटूट विश्वास है, यह समग्र आस्तिकता पुराणों की ही देन है।

हमारी जीवनचर्या, सामाजिक व्यवस्था, संस्कृति सभ्यता, संस्कार, नीति-रीति, आचार संहिता एवं मर्यादा पर वेदों और स्मृतियों के साथ इतिहास, पुराणों का ही अधिक प्रभाव है। पुरावर्णित पावन चरित्र हमारे मन प्राण में रमे हैं। सतीत्व के ऊँचे आदर्श, जितेन्द्रियता, शौर्य, रणक्षेत्र में हँसते-हँसते प्राण निछावर कर देने की उदात्त भावना तथा त्याग बलिदान के लिए सतत समुद्यत रहने की प्रेरणा हमें पुराणों से ही सदा प्राप्त होती आयी है।

प्राचीन भारतीय धर्मों का उद्गम स्रोत वेद हैं। यह सर्वविदित है, परन्तु भारतीय समाज विशेष रूप से ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी से आज तक प्रधानतया पुराण सम्मत धार्मिक मान्यताओं से अनुप्राणित रहा है। इससे पौराणिक साहित्य तथा उसमें अन्तर्निहित मूल्यों एवं मान्यताओं की जीवन्तता का बोध होता है।

इनमें उल्लिखित सर्ग, प्रतिसर्ग, वंशानुचरित, मन्वन्तर, भुवनकोश आदि का वर्णन अतिशयोक्ति शैली में होने पर भी मूल तथ्य से सम्यक् सम्पृक्त है। छान्दोग्योपनिषद के उद्गाता ऋषि ने पुराणों की इन्हीं विलक्षणताओं को ध्यान में रखकर उन्हें 'पंचम वेद' की मान्यता प्रदान की है। यह यथार्थ है कि वैदिक एवं पौराणिक साहित्य का पारस्परिक सम्बन्ध निर्विवादतः निश्चित नहीं हो सका, परन्तु पुराण वेद सम्मत मान्यताओं के प्रतिष्ठापक हैं, अवश्य प्रस्तावित किया जा सकता है। महाभारत एवं वायुपुराण में उक्त तथ्य की पुष्टि इस उद्घोषणा से की गयी है कि वेदों की सम्यक् व्याख्या हेतु पुराणेतिहास का यथेष्ट ज्ञान सम्यक् आवश्यक है -

'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।'[1]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नारदीय एवं अग्निपुराण में वर्णित व्रतों का महत्व, तिथि एवं विधि, माहात्म्य एवं फलश्रुति, निषिद्ध एवं प्रायश्चित्त कर्म, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व का तुलनात्मक विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

व्रत तो वास्तव में किसी देवी या देवता का उद्देश्य मानकर सच्ची निष्ठा के द्वारा नियमानुकूल यजन करना ही कहा जासकता है, इसलिए अग्नि - पुराण में कहा गया है कि शास्त्र के द्वारा कहा गया नियम ही व्रत है। व्रतकरने वाला सन्तापित होता है और वही तपस्या का रूप धारण कर लेता है।

नारदीय पुराण में कहा गया है कि चाण्डाल भी यदि विष्णु का भक्त है तो वह द्विज से बढ़कर है। भक्ति का तात्पर्य मनसा, वाचा, कर्मणा

1- महाभारत, 1-267 , वायुपुराण 1- 207

एवं अपने आप को अर्पित कर अभिमान की भावना से शून्य होकर ईश्वर की आराधना करना है। पुराणों में व्रतों की महत्ता को विविध भक्तों के उदाहरणों से प्रस्तुत किया गया है। गंगार्चन व्रत का महत्त्व इतना है कि मानव शरीर त्याग करने के पश्चात् विष्णु लोक को जाता है और देवता उसकी स्तुति करते हैं। जो उत्तरायण में भगवान का ध्यान कर शरीर का परित्याग करता है वह सचमुच धन्य है।

व्रतों की विधि में नियमों का पालन करना एक महान तपश्चरण है, जिसके कारण ही सृष्टि की धारा अप्रतिहत गति से बढ़ती चली आ रही है। पुराणों की महत्ता स्वीकार कराने में व्रतों एवं उसके विधियों पर आधारित नायकों ऋषियों, महर्षियों, राजाओं एवं भक्तों आदि की गाथायें सतत महनीय भूमिका निभाती चली आ रही हैं। व्रत में त्याग की महत्ता को स्वीकार कर उसके द्वारा पवित्रता की ओर संकेत किया गया है। त्याग में फल और कर्म में आसक्ति न होना चाहिए। गीता में कहा गया है —

'एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥'[1]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कामदगिरि में रम रहे राम का अनुपम प्रसाद है। मैं सर्वप्रथम राम के चरणों में ही अपना श्रद्धाभाव, शरणागत भाव से निवेदित करती हूँ, यद्यपि यह शोध कार्य मेरे लिए अगाध सागर की तरह दुष्पार था क्योंकि मेरे पूज्य पिता जी स्व0केदारनाथ रिछारिया बचपन काल में ही चल

1- श्रीमद्भगवद्गीता, 18/6

बसे थे। जिनके कारण मेरी शिक्षा में समय-समय पर अनेक कठिनाइयाँ आयीं परन्तु पैतृक परम्परा के अनुसार शिक्षा के संस्कार होने के कारण मैं अपने लक्ष्य की ओर उत्तरोत्तर बढ़ती गयी और ईश्वर की महती अनुकम्पा से ऐसा संयोग बना मैंने अतर्रा डिग्री कालेज अतर्रा से संस्कृत विषय को लेकर प्रथम श्रेणी में एम०ए०परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। इसके बाद मेरे हृदय में संस्कृत विषय में शोध करने की इच्छा जागृत हुई, मैंने ज्यों ही अपने गुरुवर संस्कृत विभागाध्यक्ष साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित डा०जगदेव प्रसाद पाण्डेय से शोध के लिए निवेदन किया तो उन्होंने मुझे प्रेरणा का विशेष पुट देकर शोधकार्य करने की प्रबल दृढ़ता प्रदान की और शोध का उत्तम विषय देकर अपना अनुपम निर्देशन प्रारम्भ कर दिया।

मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि यह मेरा कार्य कठिन परिश्रम का फल ही नहीं अपितु पूज्य गुरुजनों की अहैतुकी कृपा का सुपरिणाम है। उदारचेता तथा साहित्य विषय के मौलिक चिन्तक मेरे निर्देशक श्रद्धेय डा० जगदेव प्रसाद पाण्डेय के समक्ष मैं अति विनीत भाव से उनका नमन करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपने अमूल्य तथा उपयुक्त निर्देशनों के द्वारा मेरी समस्याओं का समाधान किया तथा मेरे शोध प्रबन्ध लेखन में गति प्रदान की।

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् डा० वेद प्रकाश द्विवेदी, हिन्दी विभाग-अतर्रा डिग्री कालेज अतर्रा(बाँदा) के समक्ष मैं विनम्र भाव से श्रद्धा सुमन अर्पित करती हुई आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरे शोध-प्रबन्ध में आने वाली समस्त बाधाओं को दूर किया।

परम आदरणीय गुरुवर श्री बाबू लाल दीक्षित जी की मैं जीवन पर्यन्त ऋणी रहूँगी, जिन्होंने कठिन एवं दुरूह परिस्थितियों में भी अपने समस्त कार्यों को छोड़कर मुझे उत्तम दिशा निर्देशन किया और विविध शोध कठिनाइयों को दूर

करने में पूर्ण सहायता की।

आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी जी का मैं विनम्र भाव से नमन करती हूँ जिन्होंने पत्राचार के माध्यम से मेरे शोध प्रबन्ध में होने वाली कठिन समस्याओं को दूर किया, उनके प्रति मैं आभारी हूँ।

परम श्रद्धेय गुरूवर आचार्य पं० राम सिपाही मिश्र के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से निरन्तर सहयोग रहा।

मैं अपने श्रद्धेय जीजाजी श्री अजय प्रकाश शर्मा का किन शब्दों में आभार व्यक्त करूँ, जिन्होंने सदैव अपनी पुत्री की तरह स्नेह एवं संरक्षण देकर सतत विद्याभ्यास की दिशा में अग्रसर होते रहने की प्रेरणा दी। उनकी विद्या-नुरागी वृत्ति के प्रति कृतज्ञ हूँ। एतदर्थ आभार प्रदर्शित करने में कोई भी शब्द मुझे उनके ऋण से मुक्त नहीं कर सकता।

मैं अपने अग्रज श्री शेखर रिछारिया एवं श्री शरद रिछारिया के प्रति विनम्र भाव से श्रद्धावनत हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत प्रबन्ध लेखन में पर्याप्त प्रेरणा एवं सहयोग प्रदान किया। डॉ० ओंकार मिश्र, श्री मनोज मिश्र एवं श्री देवेन्द्र कुमार तिवारी के प्रति सादर नमन प्रस्तुत करती हूँ। साथ ही मैं श्री राम आसरे पाण्डेय को भी आभार प्रगट करने में अपना परम कर्तव्य समझती हूँ, जिन्होंने समयाभाव एवं व्यस्तता होते हुए भी शोध-प्रबन्ध को लिपिबद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। मैं श्रीमती ज्योति वर्मा के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव देकर मुझे कृतार्थ किया।

अपनी स्व0माता जी श्रीमती श्यामा रिछारिया एवं स्व0पिता जी श्री केदारनाथ रिछारिया के चरण कमलों में यह शोध प्रबन्धरूपी श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए मुझे हर्ष और विषाद के सम्मिलित आनन्द का अनुभव हो रहा है। जिन्होंने मुझे कलम पकड़कर लिखना-पढ़ना सिखाया, किन्तु आज जब मैं उनकी सफलता के आनन्द का द्वार खोजने जा रही हूँ तो उनके वियोग में साथ देने वाली केवल उनकी स्मृतियाँ शेष रह गई। ये स्मृतियाँ मुझे इसी तरह मेरे जीवन-पथ में मार्ग-दर्शन करती रहें, यही ईश्वर से प्रार्थना है। मैं अपने इस कृत्य से यत्किंचित् भी स्वर्गीय माता-पिता जी को आनन्दाभिभूत कर सकी तो अपने को धन्य समझूँगी।

अन्त में मैं अपने समस्त मित्रों, गुरुजनों एवं सम्पूर्ण परिवार के प्रति नमन करती हूँ, जिनकी हार्दिक शुभकामनाओं के फलस्वरूप यह स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ।

प्रस्तुत ग्रन्थ अपने पवित्र उद्देश्य की सम्पूर्ति में सफल हो यही माँ सरस्वती से मेरी कामना है।

साधना रिछारिया
(कु0साधना रिछारिया)

विषय अनुक्रमणिका

****

प्रथम अध्याय

व्रतों का सामान्य परिचय एवं महत्त्व

****

प्रथम अध्याय

व्रतों का सामान्य परिचय एवं महत्व

सभी देशों तथा धर्मों में व्रत का महत्वपूर्ण स्थान है। व्रत से मनुष्य की अन्तरात्मा शुद्ध होती है। इससे ज्ञानशक्ति, विचारशक्ति, श्रद्धा, मेधा, भक्ति तथा पवित्रता की वृद्धि होती है। अकेला एक उपवास सैकड़ों का संहार करता है। नियमतः व्रत तथा उपवासों के पालन से उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है – यह सर्वथा निर्विवाद है।

व्रतों की विधि में नियमों का पालन एक महान तपश्चरण है, जिसके कारण ही सृष्टि की धारा अप्रतिहत गति से बहती चली आ रही है, यही कारण है कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने अपने चिन्त्य पर आश्रित होकर सृजन की प्रबल इच्छा को जागृत किया, किन्तु किसी भी प्रकार की दिशा निर्देशन न होने से विचार-मग्न हो गये।

व्रत को वास्तव में किसी देवी या देवता को उद्देश्य मानकर सच्ची निष्ठा के द्वारा नियमानुकूल यजन करना है। इसलिए अग्निपुराण कहता है कि शास्त्र के द्वारा कहा गया ही नियम व्रत है और दम आदि का पालन करना ही नियम है। व्रत करने वाला सन्तापित होता है और वही तपस्या का रूप धारण करता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि मानवजीवन को सफल करने के कामों में व्रत की बड़ी महिमा मानी गयी है।

यह सृष्टिधारा पुण्य एवं पाप के पथ से प्रवाहित होती हुई वस्तुतः सुख दुःख के अनन्त सागर में समाहित हो जाती है। कोई विरला ही इस पारावार को पारकर सुख शान्ति की अनुभूति, स्वादु एवं मधुरमय कर पाता है। जिसका फल संसार में कृच्छ्रात्मक जीवन यापन करने वाले पतनोन्मुख प्राणियों को आस्वादित करने के लिए वह उत्कण्ठित हो जाता है। हमारे पूर्वजों ने अनन्तकाल का अपना अनुभवात्मक परिचय देते हुए सुख शान्ति की परिधि में प्राणी मात्र को स्थिन करने के लिए सतत प्रयत्न किये हैं।

देवर्षि नारद ने भी परानुग्रह की आकांक्षा से विविध लोकों का भ्रमण करते हुए मर्त्यलोक के प्राणियों के दुःखमय जीवन का अवलोकन कर कष्ट से उद्धार करने का उपाय सोचा, जिससे कि मनुष्य मात्र को उद्धार करने की दृष्टि से व्रतादि नियमों का बनाया जिससे कि सुख शान्ति की अनुभूति हो सके।

सच तो यह है कि " न सायमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति" इस सूक्ति के अनुसार मानव के जीवन में कष्ट की अनुभूति अत्यधिक है, किन्तु उससे उन्मुक्त होकर समाहित मन से मनुष्य अपना शान्तिपथ उनन्तकाल के लिए प्रशस्त करने में सक्षम हो सकता है। यही कारण है ऋषि-महर्षियों ने अपने जीवन के मूल्य को अत्यधिक कल्याणेच्छु समझकर व्रतादि नियमों की परिधि में अनुशासिन्त होकर संसार के समक्ष महान सुख शान्ति का उत्स प्रवाहित कर दिया है, यदि इस शरीर मात्र के द्वारा पुण्य की स्वर्णराशि नहीं एकत्रित की गयी तो वह वस्तुतः दुःख के सागर में अनन्तकाल तक प्रवहित होता रहेगा।

अतएव अपना हित चाहने वाला मानव महान पुरुषों से निर्दिष्ट व्रतादि नियमों द्वारा अपने को संयमित कर सुख शान्ति का मधुर फल आस्वादित करे। अनुशासन मनुष्य को महान बनाता है और वह अनुशासन शास्त्रों द्वारा किया जाता है, क्योंकि 'शासनात् शास्त्रम्' इस व्युत्पत्ति से नियमों द्वारा शास्त्र मनुष्य मात्र को अनुशासित कर उसकी जीवनधारा को स्वच्छरूप से प्रवाहित कर उसे शान्तिमय सागर में सम्मिलित करना चाहता है। यही कारण है कि व्यास आदि ऋषियों ने पुराणों की रचना कर मानवमात्र को चेतना से मुखरित कर दिया है।

(1) व्रत शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ :-

'व्रियते स्वर्गो व्रजन्ति स्वर्गमनेन वा' जिससे स्वर्ग में गमन अथवा स्वर्ग का वरण होता है (पृषोदरादि) इस अर्थ में 'व्रत' शब्द की निष्पत्ति होती है।

'संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ॥'[1]

संकल्प है मूल जिसका ऐसा काम है अर्थात् इस कर्म से यह इष्टफल सिद्ध किया जाता है जिसके पीछे इस साधनता को करके निश्चय किए हुए उसमें इच्छा उत्पन्न होती है तब उसके लिए भी यत्न करता है, इस भांति यज्ञ भी संकल्प से उत्पन्न होता है और व्रतादि भी संकल्प से उत्पन्न कहे गये हैं।

व्रत से शरीर का निष्कर्षण या विकार का संशोधन होता है। यह निश्चितरूप से महान पुरुषों की अनुभूति है। इसी सूक्ष्मेक्षिका को दृष्टिकोण में रख कर पाणिनि ने 'व्रत' सूत्र की रचना कर उसका उदाहरण 'स्थण्डिले शायी' दिया।

1- मनुस्मृति अध्याय-2, श्लोक -3

है, अर्थात् स्थण्डिले शेते इस विग्रह से स्थण्डिले पद के चार उपपद रहने पर 'व्रते' सूत्र से 'शीङ् स्वप्ने' धातु से कर्ता अर्थ में णिनि प्रत्यय होने पर शायी पद की सिद्धि होती है अर्थात् स्थण्डिल जो वेदिका पर कुशास्तरण कर शयन नियमितरूप से ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसे स्थण्डिलशायी कहा जाता है जो कि एक महान ब्रह्मचर्य व्रत का परिचायक है। स्थण्डिल में सप्तमी विभक्ति का अलुक् 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्'[1] सूत्र से किया गया है। बाहुलकात् लुक् होने पर स्थण्डिलशायी भी प्रयोग सिद्ध होता है।

व्रत नियम पूर्वक आचरण के साथ मनः शुद्धि का संकल्प है। संकल्पित नियम का उल्लंघन करने पर व्रतका लोप हो जाता है। महाभाष्यकार पतंजलि व्रते सूत्र का भाष्य करते हुए व्याख्या करते हैं कि अश्राद्धभोजी का व्रत नियम लोप हो जाता है जब वह श्राद्धभोजी बन जाता है।

उसी प्रकार स्थायी पुरुष स्थण्डिल शायी नहीं होता है, जैसा कि महाभाष्यकार के कथन से स्पष्ट है —

व्रते किं मुदाहरणम्?[2] ॥अश्राद्धभोजी॥

किं नो श्राद्ध भुङ्क्ते सेऽश्राद्धभोजी॥ किं चातः यदा सावश्राद्ध भुङ्क्ते तदा स्य व्रत लोपस्यात्। तद् यदा स्थायी। यदा न तिष्ठति तदास्य व्रतलोपो भवति। यहां दो न कृत होने से श्राद्धभोजी का ही निर्देश किया गया है।

1- पाणिनिसूत्र, 6/3/14

2- महाभाष्य तृतीय आह्निक द्वितीय पाद।

कैयट ने व्याख्या करते हुए कहा है 'तया श्राद्ध भुङ्क्ते इत्यनेन श्राद्धभोजनं निषिध्यते यथा पञ्चनखाः भक्ष्याः' इति शशादि व्यतिरिक्त पंचनखभक्षणं निवर्त्यते तत्र कथं व्रत लोपः स्यात्" 'स्थण्डिलशायी' इत्युक्त स्थान विपरीत गमनाचरणे सति व्रत लोपः स्यात। उच्यते। अश्राद्ध मया भोक्तव्यमिति येन संकल्पः कृतः स यदा बुभुक्षायां सत्यां यस्मिन्नहन्य श्राद्ध न भुङ्क्ते तदा तस्य स्यादेव व्रत लोपः।[1]

नागेश ने भी "अश्राद्धभोजि शब्दस्यैव व्रत विषयत्वात्" कहकर इसकी विशेष पुष्टि की है जो कि एक विशेष नियम में अन्तर्भूत है। पंचनख वालों में यथा गोधा आदि पाँच नख वालों के भक्षण का विधान शास्त्र में विहित है किन्तु यदि इनके अतिरिक्त व्रती यदि पाँच नख वालों का भक्षण करता है तो शास्त्रमर्यादा का उल्लंघन कर प्रायश्चित्त का भागी बनता है। उसी प्रकार अश्राद्ध का अन्न ही मुझे खाना है ऐसा जिसने संकल्प कर लिया है तो वह यदि बुभुक्षा के जागृत होने पर श्राद्धभोजी हो जाता है तो उसके व्रत का लोप निश्चित रूप से कहा जा सकता है।[2] अतः नियमित सत्संग कल्प वह काम विशुद्धभाव से परिपूर्ण कर व्रत का वास्तविक रूप ग्रहण कर सकता है।

अमरकोशकार ने नियम और व्रत इन दो को व्रत की संज्ञा दी है। नियमो[3] व्रतमस्त्री स्थण्डिलशायी की व्याख्या करते हुए कोशकार प्रवचन करते हैं कि -

"यः स्थण्डिले व्रत वशाच्छेते स्थण्डिलशाय्यसौ"[4]

1-महाभाष्य कैयट व्याख्या।
2-महाभाष्य नागेश व्याख्या।
3-अमरकोश द्वितीयकाण्ड ब्रह्मवर्ग, पद्य 38
4- वही, पद्य 44

अर्थात् व्रत के वशीभूत होकर स्थण्डिल पर जो शयन करता है वह स्थण्डिलशायी होता है।

अग्निपुराण में शास्त्रोदित नियम को ही व्रत बताया गया है वही तप है। दम शमादि नियम भी व्रत की परिधि में समाहित होते हैं। व्रत करनेवाला सन्ताप का अनुभव करता है किन्तु व्यथित नहीं होता तो वही तप है। जैसा कि अग्निपुराण में व्यास ने परिभाषित किया है —

"शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम्।
नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः ॥[1]
व्रतं हि कर्तृसंतापात्तप इत्यभिधीयते।"

एवं व्रत को उपवासरूप में परिणत किया गया है जिसमें सभी प्रकार के भोगों से वर्जित रहने का निर्देश किया गया है।

"उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोग विवर्जितः।"[2]

गीता में भी निराहारी को सभी विषयों से उन्मुक्त बताया है जैसा कि भगवान कृष्ण ने अर्जुन को स्थित प्रश्न के प्रसंग में आख्यान किया है —

"विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः"[3]

नारद ने सनकमुनि से जिज्ञासा प्रवृत्ति एवं निवृत्ति कर्म के विषय में की जिसका विश्लेषण करते हुए सनक ने नारद से व्रत को कर्तव्यरूप में निर्णीत किया —

1- अग्निपुराण अध्याय 175 पद्य - 2
2- वही, पृ0 6
3- गीता अध्याय-2 पद्य 59

"प्रवृत्तं च निवृत्तं च यत्कर्म हरितोषणम्
तदाख्याहि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तोऽसि मानद॥"[1]

सनक ने नारद के इस लोकोपकारी प्रश्न का उत्तर नारद पुराण में यथोचित तथा विस्तृतरूप भगवान विष्णु को आह्लादित करने वालों के रूप में किया गया है।

व्रत का अपर नाम उपवास भी है जो मनुष्य की आन्तरिक शुद्धि का परिमार्जित तथा वैज्ञानिक मार्ग है –

"उपोषितोऽर्चयेत्सम्यङ् नरः श्रद्धासमन्वितः"[2]

इसी प्रकार व्रत की विविध व्याख्या दृष्टिगोचर होती है अतः कहा जा सकता है कि व्रत का पूर्वरूप एक संयमित नियम है और वही उपोषित होकर काम विशोधन का महान औषध है जिससे शरीर की कृशता होने पर भी अत्यन्त प्रकाशित करने वाले तेज की अभिवृद्धि होती है।

व्रत का दूसरा गौण अर्थ उपवास ठहरता है।(अर्थात् यजमान दर्श दृष्टि एवं पूर्णमास दृष्टि में गार्हपत्य तथा अन्य अग्नियों के पास रात्रि बिताता है और उपवास करता है तथा भोजन की मात्रा कम करता है) वह दर्श एवं पूर्णमास दृष्टियों में उपवास इसलिए करता है कि देवता लोग बिना व्रत में लगे हुए व्यक्ति की हवि को ग्रहण नहीं करते अतः वह उपवास करता है जिससे वे उसके यज्ञकर्म में भाग लें।[3]

1- नारदीयपुराण, अध्याय।7, पद्य-9 पूर्वभाग

2- वही, अध्याय।7 श्लोक-14 पूर्वभाग

3- ऐतरेय,ब्राह्मण, 6/2

पुराणों में व्रत की उत्पत्ति तथा अर्थ नहीं दर्शाया गया है केवल उसे कर्म विधान के द्वारा परिभाषित किया गया है। इन्द्रियों का दमन करता हुआ पुरूष नियमित जीवन को सन्तुलित रखता है तो वह भी व्रत का एक प्रशंसनीय पथ है। जैसा कि महाभारत में युधिष्ठिर से भीष्मपितामह ने कहा है —

"यो वै व्रतं यथोदिष्टं तथा सम्प्रतिपद्यते।
अखण्डं सम्यगारभ्य तस्य लोकाः सनातनाः ॥[1]

अखण्डरूप से व्रत का परिपालन करना ही नियम का एक प्रशस्त पथ है।

यद्यपि प्रकृति प्रत्यय विशिष्ट व्रत शब्द की परिभाषा पुराणों में निर्दिष्ट नहीं है किन्तु उसका विस्तृत रूप से विवेचन एवं मार्गदर्शन पुराणों में दर्शाया गया है।

(2) व्रत उत्सव एवं पर्व :—

पुराणों में व्रतों का विधान क्रमिक रूप से निर्णीत किया गया है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी आन्तरिक शुद्धि करके "देवो भूत्वा देवान भजे" की उक्ति को चरितार्थ करता हुआ उनके प्रति अपनी आस्था जागृत करे, अतएव नारदीय-पुराण में सर्वप्रथम मार्गशीर्ष मास से कार्तिक मास पर्यन्त वर्षभर का द्वादशी विधान

1- महाभारत, अनुशासनपर्व अध्याय 75 पद्य 8

2- नियमानां फलं राजन प्रत्यक्षमिह दृश्यते।"

— महाभारत अनु0पर्व, अध्याय 75, पद्य 9

बताया गया है जो केवल व्रत का रूप धारण करता है। उसी प्रकार मार्गशीर्ष पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा पर्यन्त लक्ष्मी नारायण व्रत की विधि निर्दिष्ट है। पूजा विधि से लेकर पाठ पर्यन्त उपवास रहकर व्रत की सफलता के लिए भगवान से प्रार्थना करने का संकेत है।

"पौर्णमास्यां निराहारः स्थित्वा देवतवाज्ञया।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽहनि शरणं भव ॥"[1]

ध्वजारोपण विधि के विषय में कार्तिक मास के शुक्लपक्ष दशमी तिथि को व्रत रहकर एकादशी को विष्णुमन्दिर में ले जाकर विधि-विधान से स्थापित करने का निर्देश है। हरिपंचक व्रत में एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त पंचक व्रत का विधान उप - वास के साथ बताया गया है। इसमें भी भगवान के प्रति अखण्ड आस्था होना आव - श्यक है।

(क)व्रत में भक्तिभाव —

व्रत या उपवास भी भगवान की भक्तिभाव से अर्पण करने का अपरि- हार्य विधान है और उनकी कृपा कटाक्ष की भी जिज्ञासा प्रतिबिम्बित है —

"पंचरात्रं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव।
त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन् ममाभीष्ट प्रदोभव॥"[2]

1- नारदीय पुराण 18/13 पूर्वभाग

2- वही, 21/10 पूर्वभाग

एकादशी से पौर्णमिसी पर्यन्त जागरण करता हुआ मानव वाह्याभ्यन्तर मत के दोष को दूर कर क्रुद्ध रहित होकर सद्भाव से उपवास करे।

"एकादश्यां पौर्णमास्यां कर्तव्यं जागरम् तथा।"[1]

अग्निपुराण में इसे भीष्मपंचक व्रत के नाम से इंगित किया गया है और इसमें कार्तिक के शुक्लपक्ष पूर्णिमा पर्यन्त उपवास का विधान है। उक्त पद्यों से ज्ञात किया जाता है कि —

"भीष्मपंचकमाख्यास्ये व्रतराजंतु सर्वदम्
कार्तिकस्यामले पक्ष एकादश्यां समाचरेत्
दिनानिपंच त्रिःस्नायी पंच व्रीहितिलैस्तथा।
तर्पयेद्देवापित्रादीन्मौनी सम्पूजयेद्हरिम्॥"[2]

स्नान से बाह्य शुद्ध तर्पणादि से देव पितृ को प्रसन्न करने वाला एवं मौनादि के द्वारा आभ्यन्तर शुद्ध करने का विधान मनुष्य जीवन को सर्वथा सन्तुलित करने की पद्धति दर्शायी गयी है।

(ख)व्रत का रूप पवित्रात्मा :—

तपरूप भगवान स्वयं है। इसलिए तपों का फल देने वाले भी है। एतदर्थ व्रत के द्वारा मनुष्य तप संचित कर पवित्रात्मा होकर भगवान को प्रसन्न करे। त्रिवर्ग से परे मोक्ष का साधन व्रत को एक महान श्रेयस्कर बताया है। व्रत

1- नारदीयपुराण, 21/13 पूर्वभाग

2- अग्निपुराण 205/1/1

की कठोर विधि एवं सरल विधि यथायोग्य मनुष्य को करने का निर्देश है। जिसमें समस्त पाप से मुक्त होकर मनुष्य परमानन्द की प्राप्ति का भागी बनता है। इसमें आषाढ़, सावन, भाद्रपद तथा आश्विनमास के शुक्लपक्ष से प्रारम्भ करने का विधान है। मन इन्द्रियों आदि को वश में करके पंचगव्य सेवन करना चाहिए। पाप का मूल क्रोध का वर्जन सर्वथा होना चाहिए।

"आषाढ़े श्रावणे वापि तथा भाद्रपदे पि च।
तथैवाश्विनके मासि कुर्यादेतद्व्रतं द्विज॥
ततः प्रातः समुत्थाय नित्यकर्म समाप्य च
श्रद्धया पूजयेद्विष्णु वशी क्रोध विवर्जितः ॥[1]

अग्निपुराण में इसे आश्विन मास से आरम्भ करके एक मास पर्यन्त तक करने का विधान संकेतित है। जैसा कि उक्त पद्य से ज्ञातव्य है —

"आश्विनस्यामले पक्ष एकादश्यामुपोषितः ।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशदिनानि तु॥
अद्य प्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव
अर्चये त्वामनश्नन्हि यावत्त्रिंशद्दिनानि तु॥"[2]

(ग) व्रत से मुक्ति :-

भगवान के सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, तथा सायुज्य इन चार प्रकार के मुक्ति की प्राप्ति का सोपान व्रत के रूप में वर्णित है। व्रत के द्वारा

1- नारदीयपुराण, 22/2/4 पूर्वभाग
2- अग्निपुराण 204/3/4

सब प्रकार से शुद्ध होकर आत्म निवेदन करता हुआ मनुष्य मोक्ष के द्वार को अनायास ही प्राप्त कर लेता है। श्रीमद्भागवत में निर्देश है कि सर्व प्रकार के साधन से सम्पन्न होता हुआ ब्राह्मण भी भगवान की भक्ति से विमुख है तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, क्योंकि उसने अपना मन, वचन, प्राण, कर्म और धन सब कुछ ईश्वर को अर्पित कर दिया है —

"मन्ये धनाभिजनरूप तपः श्रुतौज।
स्तेजः प्रभाव बल पौरुष बुद्धियोगाः।
नाराधनाय परस्य पुंसो भगवतोहि
भक्त्या तुतोष भगवान गजयूथ पाय॥"[1]

भगवान गजेन्द्र के भक्तिभाव से कमल पुष्प समर्पित करने से वैकुण्ठ त्यागकर उसके समीप आकर उसका उद्धार कर दिया अतः भक्तिमय कर्म ही ईश्वर को सर्वप्रिय है चाहे वह किसी भी योनि का हो -

"विप्रादद्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ,
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपंच वरिष्ठम्।
मन्येत्तदर्पित मनो वचने हितार्थ,
प्राणं पुनातिसकुलं न तु भूरिमानः॥[2]

1- श्रीमद्भागवत् सप्तम् स्कन्ध 9/9

2- वही, 9/10

(घ)व्रत में समर्पण :-

भगवान नरसिंह की भक्तिभाव से सम्पन्न होकर स्तुति करने के पश्चात् प्रहलाद विरल हृदय से शरणागत हो जाते हैं। भगवान ह्रार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अपनी प्रसन्नता एवं प्राप्ति का सुगम उपाय प्रहलाद को बतलाते हैं -

"प्रीणन्ति ह्यथमांधीशाः सर्वभावेन साधवः।

श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम्॥"[1]

भगवान समस्त सुखों के स्वामी हैं, चाहे वो भौतिक, स्वर्गिक या आध्यात्मिक हों, उनकी प्रसन्नता के बिना समस्त सुख व्यर्थ हैं, अतएव धीर पुरुष सब प्रकार से शुद्ध भावना से अनुप्राणित आत्मकल्याण का इच्छुक महाभाग्यशाली पुरुष ही दुर्लभ दर्शन प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं।

व्रत में समर्पण विधि ही सर्वप्रमुख है -

"मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममोभूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥"[2]

अध्यात्म भाव से फल की आशा त्यागकर उनके प्रति ममता न रखता हुआ मनुष्य यदि कर्म करता है तो निश्चय ही ज्वर के सन्ताप से मुक्त होता है।

(ड)ज्ञान प्राप्ति का साधन व्रत -

मानव अज्ञान के महान अन्धकार से आवृत्त होकर किसी भी प्रकार साक्षात्कार नहीं कर पाता और नहीं तमसावृत मोहबन्धन महान से महान पुरुष को पतनोन्मुख बना देता है।

1- श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध अध्याय 7/9/52

2- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 7/3/30

कहा गया है एकादशी को जो भोजन करता है वह नरक का भागी होता है। एकादशी के दोनों पक्षों से उपवास का विधान है —

"एकादश्यां न भुंजीत पक्षयोरुभयोरपि
यो भुंक्ते सोऽत्रपापीयान्परत्र नरकं व्रजेत्॥ "[1]

उपवास का फल चाहने वाले को चार समय भोजन का परित्याग करना चाहिए —

"उपवास फलं लिप्सुर्जह्याद् भुक्ति चतुष्टयम्।
पूर्वापरं दिने रात्रावहोरात्रं तु मध्यमे॥"[2]

अग्निपुराण में भी दोनों पक्षों में भोजन का वर्णन किया गया है—

"एकादश्यां न भुंजीत पक्षयोरुभयोरपि।
द्वादश्येकादशी यत्र तत्र संनिहितो हरिः ॥[3]

अनशन से परे कोई व्रत नहीं है क्योंकि विषय की निवृत्ति का यह परम साधन है, जिससे कि ज्ञानदीप से प्रकाशित हो, अन्तरात्मा परमात्मा के तत्व का विवेकपूर्ण परिचय प्राप्त कर ले। नारदीयपुराण में इसका महान वर्णन करते हुए महर्षि वेदव्यास उद्घोषित करते हैं —

"नास्ति गंगासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णु समं देवं तपो नानशनात्परम्॥'[4]

1- नारदीयपुराण, अध्याय 23/4 पूर्वभाग

2- वही, 23/5

3- अग्निपुराण अध्याय 187 पद्य-2

4- नारदीयपुराण 23/30 पूर्वभाग

इसी दृष्टि को लेकर वेदव्यास ने व्रत को आन्हिक कर्म का रूपदेते हुए प्रथम दिन प्रतिपद से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त प्रतिदिन के व्रत का विधान एवं महत्त्व तथा उ का अनन्त फल निर्णीत किया है। यद्यपि कलयुग में "कलावन्नगतप्राणाः" यह नियम निर्दिष्ट है और कुछ सीमा तक सत्य भी है। आज भी नर-नारी एकादशी व्रत गणेश चतुर्थी, अष्टमी, रामनवमी आदि व्रतों में उपोषण करते हुए शास्त्र की मर्यादा को प्रतिष्ठित करते चले आ रहे हैं। नवरात्र व्रत तो वर्ष में दो बार बहुधा नर-नारी उपवास धारण कर मन से करते हुए दिखाई देते हैं।

उत्सव :-

उत्सव शब्द पुल्लिंग है। उत उपसर्ग सू धातु से अच् प्रत्यय होकर उत्सव शब्द बनता है। शब्द कल्पद्रुम में इसका अर्थ नियत अह्लादजनक व्यापार कहा गया है।[1] अमरकोश के अनुसार "क्षणः, 2 उद्धवः, 3 उद्धर्षः, 4 महः, 5इत्यमरः के पर्याय माने गये हैं। मनुस्मृति श्लोक -

"तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥"[2]

मेदिनी कोश के अनुसार उत्सव के ये पर्याय भी माने गये हैं -

"उत्सेकः, इच्छाप्रसवः। कोपः। इति मेदिनी।उन्नतिः अभ्युदयः"

हितोपदेश में आया है -

'उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे"[3]

1- शब्दकल्पद्रुम पृ0228

2- मनुस्मृति श्लोक 3/59

3- हितोपदेश 1/164

व्रत की पूर्ति उत्सव में परिणित होती है, क्योंकि व्रत की उद्यापन विधि में अपने बन्धु-बान्धवों के साथ सम्मिलित होकर नृत्य गीतादि के द्वारा भगवान के समस्त किये हुए व्रतों को निवेदित करना है। नारदीय पुराण में व्रत की सफलता के लिए उद्यापन विधि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

रात्रि में जागरण कर धूप, दीप नैवेद्य, गन्ध आदि से पूजन कर गीत वाद्य, स्तोत्र आदि के द्वारा भगवान की पूजा का विधान बताया गया है -

"रात्रौ जागरणं कुर्यात्त्रिकालार्चन तत्परः ।
धूपदीपैश्च नैवेद्यगन्धैः पुष्पैर्मनोरमैः ॥
नृत्यैश्च गीतवाद्याद्यैः स्तोत्रैश्चाप्यर्चयेद्धरिम् ॥[1]

मार्गशीर्ष की शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को परमोत्सव के साथ उद्यापन का विधान नारद पुराण में विधि-विधान से वर्णित है। घर के आँगन में परम सुन्दर मण्डप बनाकर घण्टा, चँवर आदि सामग्रियों से सुशोभित किया जाये। ध्वजपताका एवं दीपमालाओं से सुशोभित किया जाना चाहिए। रंगे सर्वतोभद्र आदि चावलों से चौक बनाकर उस पर बारह घड़े की स्थापना कर यथाशक्ति भगवान की स्वर्ण की मूर्ति स्थापित करें और विधिवत पूजा करें।

"तन्मध्ये सर्वतोभद्रं कुर्यात्सम्यगलङ्कृतम्।
तस्योपरि न्यसेत्कुम्भान् द्वादशाम्बुप्रपूरितान्॥[2]

व्रत का समस्त फल प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करे —

1-नारदीयपुराण अध्याय 17/26/92/105 पूर्वभाग

2- वही,

"कुरुष्व सम्पूर्ण फलम् ममाद्य।

नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय॥"[1]

नारदीयपुराण में द्वादशी व्रत का विधान एवं उद्यापन विधि मार्गशीर्ष से कार्तिक मास तक के द्वादशी तिथि पर्यन्त तक निर्दिष्ट है, और अन्य द्वादशी का व्रत का विधान मदन द्वादशी के नाम से इंगित कर बताया है जिसको चैत्र मास से आरम्भ होकर फाल्गुन मास तक व्रत करने के विधान के साथ-साथ नृत्य गीत आदि आचरण के उत्सव की प्रक्रिया को सिद्ध किया गया है।

अग्निपुराण में केवल मदन द्वादशी का ही निर्देश है, जो चैत्र से आरम्भ होती है। जैसा कि निर्दिष्ट पद्य से ज्ञातव्य है —

"उपवासेन भैक्ष्येण चैव द्वादशिकव्रती।

चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां मदनं हरिम्॥[2]

नारदपुराण में वर्णित द्वादशी व्रत के प्रसंग में मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी 'साध्य व्रत' का अनुष्ठान कर्म बताया गया है। इसमें 12 साध्य गण बताये गये हैं, जिसमें चावलों से आवाहन कर विधि पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराने का विधान है। सभी द्वादशी व्रत में ब्राह्मणों को भोजन कराने का विधान है।[3]

1- नारदीयपुराण अध्याय 17/26/92/105 पूर्वभाग

2- अग्निपुराण 188/2

3- "मनोभवस्तथा प्राणो नरो पानश्चवीर्यवान्।

विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादशकीर्तिता॥"

— नारदीयपुराण पूर्वभाग 121/51

(क) पूर्णिमोत्सव :-

मार्गशीर्ष पूर्णिमा से आरम्भ होने वाला लक्ष्मी नारायण व्रत का उद्यापन एक उत्सव के रूप में किया जाता है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन आँगन में मण्डप बनाकर विविध पुष्प-लताओं, ध्वजों, दीपों आदि से सुसज्जित कर सर्वतोभद्र को मध्य पीठिका पर कलश के पूजन के साथ सुवर्णमयी विष्णु तथा लक्ष्मी की प्रतिमा का सविधि पूजन करे। यथानुरूप ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर एवं भोजन कराकर आचार्य को प्रतिमा का दान कर विविध सामग्री से उनकी सन्तुष्टि करे।

"आचार्याय प्रदातव्या प्रतिमा दक्षिणान्विता।

ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या विभवे सत्यवारितम्॥"[1]

नारदपुराण में ध्वजारोपण विधान में मांगलिक कृत्यों के साथ नृत्य वाद्य आदि का भी विधिवत विधान है, जो कि एक महान उत्सव के रूप में दृष्टिगोचर होता है। प्रातः उठकर गन्ध, पुष्पादि से ध्वजा की पूजा करके मांगलिक बाजे, सूत्र पाठ आदि के द्वारा ध्वजा को विष्णु मन्दिर में स्थापित करे।

"ततः प्रातः समुत्थापनित्यकर्म समाप्य च।

गन्ध पुष्पादिभिर्देवमर्चयेत्पूर्ववत क्रमात्॥

ततो मंगलवाद्यैश्च सूक्तपाठैश्च शोभनम्।

नृत्यैश्च स्तोत्र पठनैर्नयेद्विष्णु आलये ध्वजम्॥"[2]

1- नारदीयपुराण अध्याय 18 पद्य 29 पूर्वभाग

2- नारदीयपुराण अध्याय 19 पद्य 17/18 पूर्वभाग

इस प्रकार इसका परिणामहरि सादृय्य को प्राप्त करना है।[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मांगलिक कार्यों के विधान में उत्सव का विधान दृष्टिगोचर होता है, जो व्रत की पूर्णता एवं महत्ता का निर्देश करता है।

अग्निपुराण में यत्रन्तत्र व्रतों के विधान में उत्सव का भी समावेश देखा जाता है लेकिन नारदीय पुराण जैसा विस्तार नहीं है, किन्तु हवन पूजन के प्रसंग में दान का प्रसंग बड़ा मार्मिक तथा कल्याणकारी सिद्ध किया गया है। द्वितीया व्रत में घृत से होम करके ब्राह्मणों को शय्या देने का विधान है। वस्तुतः कल्याणकारी व्रतों को उत्सव का उत्सव रूप धारण करना मानव जीवन का अंग है और उसकी शुभेच्छा का आधारशिला है।

"घृतेन होमोनिवर्त च शय्यां दद्यादि्द्वजातये॥"[2]

पर्व —

पर्व शब्द पृ पालन पूरणार्थक धातु से वन प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न होता है अतः किसी भी व्रत का अन्तिम रूप पूरणार्थक पर्व कहा जा सकता है। हरि-तालिका व्रत स्त्रियों का सौभाग्यवृद्धि करने वाला महान कठिन व्रत है किन्तु यही एक महान पर्व के रूप में मनाया जाता है, जो आज भी अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है।

इसी प्रकार चतुर्थी का गणेश व्रत है, जो भाद्रपद एवं माघ की चतुर्थी में विशेष महत्वपूर्ण माना जाता है। गणेश का उत्सव भी मूर्ति स्थापित कर लगभग

1- "तावद्युग सहस्त्राणि हरि सादृय्यमश्नुते"- नारदीयपुराण अध्या0।9श्लोक 44

2- अग्निपुराण अ0।77 पद्य ।।

चतुर्दशी पर्यन्त नर-नारी बड़े ही सजावट के साथ धूमधाम से स्थापन, पूजन एवं विसर्जन आदि की प्रक्रिया को पूर्ण करते हैं।

नागपंचमी पर्व में यद्यपि लोगों का उपवास नहीं देखा जाता है, किन्तु इस दिन नागों की पूजा का विशेष महत्व है।

(क) पर्व की मान्यता :-

इस पर्व पर यत्र-तत्र मल्लयुद्ध की प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है और नाना प्रकार के आक्रीडन का भी समायोजन होता है।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी में भी भगवान कृष्ण के जन्म के विषय को लेकर हिन्दुओं का धार्मिक पर्व मनाया जाता है। समस्त भारतीय जनता कृष्ण के जन्मोप-रान्त अत्यन्त धूमधाम से उनका पूजन कीर्तन आदि करके अपने को कृतकृत्य मानती है। इस दिन प्रायः सभी नगरों एवं गांवों में झूला डाला जाता है। वृन्दावन में झूले का आयोजन देखने के लिए धार्मिक जनता भगवान की जन्मस्थली पर उमड़ पड़ती है। आज भी बड़े धूमधाम से लोग श्रद्धा एवं विश्वास के साथ पवित्र पर्व का आयो-जन कर अपने कामनाओं की पूर्ति के लिए पर्व की सार्थकता को सिद्ध करते हैं।

(ख) पर्व की पूर्णता :-

वस्तुतः मानव की दीर्घकालीन अंकुरित भावनाओं की पूर्ति करने के लिए व्रत एक पूर्णात्मक रूप धारण करके पर्व के रूप में मान्यता प्राप्त कर लेता है। मनुष्य मात्र इसे अपने श्रद्धा सुमन के द्वारा भावनाओं की पूर्ति के लिए हार्दिक हृदय से ईश्वर प्रार्थना करते हैं। पौराणिक अथवा शास्त्रीय मान्यताओं के द्वारा जनता अटूट विश्वास के साथ अपनी हार्दिक वेदना की बलि चढ़ाते हुए अत्यन्त सुख

शान्ति एवं कल्याण की भिक्षा याचती है। पर्व की यही पूर्णता व्रत का अन्तिम रूप है।

यद्यपि अग्नि एवं नारदीय पुराणों में व्रत की पर्व के रूप में मान्यता नहीं है; किन्तु जहाँ तक समाज की कल्पना या मान्यता कही जाये तो अत्युचित न होगी। आज भी दीवाली, होली एवं विजयादशमी पर्व भी इ ी व्रत के पूरणीक अंग कहे जाते हैं, यद्यपि इसमें व्रत का विधान नहीं है फिर भी लोग व्रत के रूप में न मानकर पर्व के रूप में मान्यता देते हैं। मनुष्य की आन्तरिक सद्भावों को जागृत कर उसे पूर्ण करना ही पर्व का वैशिष्ट्य है।

(3) व्रत एवं धर्म :-

पुराणों में वर्णित प्रायः सभी व्रत धर्म कर्म साधना एवं चतुवर्ग फल प्राप्ति के साधन को इंगित करते हैं जिससे मनुष्य अपनी संस्कृति एवं पुरातन रीति रिवाज का पालन सतर्कता से कर सके यही पुराणों का दृष्टिकोण है।

व्रतों में मन्त्रों के द्वारा देवों का आवाहन तथा पूजन एवं उपवास आदि की प्रक्रिया मानव एवं देवों के अन्तःकरण में घनिष्ट एवं प्रगाढ़ सम्बन्ध को जोड़ने का महान साधन है।

मनुष्य एवं देवताओं का कभी विघटित न होने वाला अटूट सम्बन्ध है। गीता में परस्पर भावनाओं के आदान प्रदान से इहलोक तथा परलोक का सम्बन्ध अक्षुण्ण बताया गया है। प्रजापति ने प्रजा की सृष्टि के साथ व्रत, यज्ञ, अनुष्ठान आदि का भी विधान किया, जिसके करने से मानव को इहलोक तथा परलोक दोनों में देवों से सम्बन्ध जोड़कर कल्याणकारी लाभ हो सकता है।

प्रत्येक व्रत अपना कोई न कोई विशिष्ट स्थान रखता है तथा किसी न किसी बात से सम्बन्ध रखता है। गरूड पुराण में कहा गया है यदि व्रतारम्भ के बाद मनुष्य क्रोध, मोह, लोभवश उसे अधूरा छोड़ दे तो तीन दिन अन्न का त्याग कर उसे पुनः करना चाहिए —

"क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभंगो भवेद्यदि।

दिन त्रयं न भुंजीत शिरसो मुण्डनं भवेत्॥"[1]

महाभारत में धर्म की बड़ी व्यापक एवं विशद कल्पना अंगीकृत की गयी है। इस विशाल विश्व के नाना विभिन्न अवयवों को एक सूत्र में बांधने वाला जो सार्वभौम तत्व है वही धर्म है। यदि धर्म का अस्तित्व इस जगत में न होतातो यह जगत कब का विश्रृंखलित होकर छिन्न-भिन्न हो गया होता। युधिष्ठिर के धर्म विषय प्रश्न के उत्तर में भीष्मपितामह का यह सर्वप्रथम कथन धर्म की महनीयता तथा व्यापकता का स्पष्ट संकेत प्रदान करता है —

"सर्वत्र विहितो धर्मः सत्यप्रेत्य तपः फलम्।

बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया।"[2]

धर्मशास्त्रों की आज्ञा है कि जो अपने वर्णाश्रम के आचार-विचार में रत रहते हों वही व्रत के अधिकारी होते हैं।

धर्म का अभिप्राय सत्य अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति है। धर्म प्रेम का पन्थ है। फिर घृणा कैसी, द्वेष कैसा, मिथ्याभिमान कैसा? मनुष्य एक ओर तो

1- गरूड़पुराण, अध्याय 128/19

2- शान्तिपर्व 174/2

ईश्वर की पूजा करे दूसरी ओर तिरस्कार करे, यह बात बनने लायक नहीं है — ।
— गाँधी जी

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि मानव जीवन का स्वास्थ्य धर्म के आचरण में है जो सकाम भाव से सम्पादित होने पर ऐहिक फलों को देता है और निष्काम भाव से अनुवृत्त होने पर आमुष्मिक फल मोक्ष की प्राप्ति कराता है। फलतः महान फल को भी देने वाले, परन्तु धर्म से विहीन कर्म का सम्पादन मेधावी पुरुष कभी न करे।

(4) मानव जीवन में व्रतों का महत्व :-

संसार रूपी वृक्ष के सुख एवं दुःख ये दो फल हैं जिसका मानव या प्राणिमात्र आस्वादन करता चला आ रहा है। सुख-दुःख की वासना से पूर्ण विषय की ओर प्रवृत्त होने वाला ही बद्ध कहा जाता है और उस ओर अपनी प्रवृत्ति को निवृत्त करने वाला ही मुक्ति पदवी पाता है अतः बद्ध और मुक्तरूप से जीव को दो संज्ञायें दी जा सकती हैं। ये दोनों यद्यपि संसार रूपी वृक्ष पर निवास करते हैं और दोनों समान हैं, आपस में मित्र हैं और दुःख के बन्धन में अविच्छिन्न पड़ा रहता है और दूसरा बिना फल खाये ही अत्यन्त बलशाली एवं तेजस्वी है।

इसी बल और तेजस्विता की प्राप्ति का उपाय शास्त्रों पुराणों आदि में वर्णित है। जिसके द्वारा मानव समस्त बन्धन से मुक्त होकर परमब्रह्म परमात्मा की पदवी को प्राप्त कर लेता है। भागवत में इसे रूपक के रूप में दर्शाया है—

1- व्रत परिचय , पृ0 9

"सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ
यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नम्
अन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान्॥"[1]

(क)अभीष्ट प्राप्ति :-

नारदीय पुराण में जो व्रतों की विधि बतायी गयी है, वह मानव केइहलौकिक तथा पारलौकिक कल्याण का मार्ग ही प्रशस्त करती है। सर्वप्रथम नारदीयपुराण में अगहन से कार्तिक पर्यन्त द्वादशी व्रत का विधान विविध महत्व की ओर इंगित करता है। मार्गशीर्ष की द्वादशी अभीष्ट वस्तु को देने वाली है -

"केशवः केशिहा देवः सर्वसम्पत्प्रदायकः।
परमान्नप्रदानेन मम स्यादिष्टदायकः॥"[2]

पौष की द्वादशी आठ अग्निष्टोम यज्ञों के समान फल देने वाली, माघ की द्वादशी सौ वाजपेय यज्ञ का पुण्य प्रदान करती, फाल्गुन की द्वादशी समस्त पापों से मुक्तदायिनी है। चैत्रमास की द्वादशी को चार सेर चावल दान करने से भगवान प्रसन्न होते हैं जैसा कि प्रार्थना में वर्णित है -

"प्राणरूपी महाविष्णुः प्राणदः सर्ववल्लभः।
तण्डुलाढक दानेन प्रीयतां मे जनार्दनः॥"[3]

1- श्रीमद्भागवत, 11/11/6

2- नारदीयपुराण, 17/21 पूर्वभाग

अन्त में द्वादशी व्रत का महत्व दर्शाते हुए महर्षि वेदव्यास ने कहा है कि जो मनुष्य इस व्रत को करता है, वह सभी कामनाओं को प्राप्त कर इक्कीस पीढ़ियों के साथ विष्णु लोक में जाता है –

"इत्येवं कुरुते यस्तु मनुजो द्वादशीव्रतम्।

सर्वान् कामान्सि आप्नोति परत्रेह च नारद।।

त्रिसप्त कुल संयुक्तः सर्व पापविवर्जितः

प्रयाति विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति।।[1]

अग्निपुराण में आयु आरोग्य की प्राप्ति बतायी गयी है।[2]

(ख) विष्णुलोकगमन :–

मार्गशीर्ष पूर्णिमा के व्रत से कार्तिक पूर्णिमा व्रत पर्यन्त मनुष्य उपोषण करता हुआ विधि-विधान से सम्यक् पूजन करता है तो वह महान भोगों को प्राप्त कर पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न सब पापों से मुक्त होकर योगियों के लिए दुर्लभ विष्णु लोक को प्राप्त करता है –

"एवं कृत्वा नरः सम्यक् लक्ष्मी नारायणव्रतम्

इह भुक्त्वा महान् भोगान पुत्र पौत्र समन्वितः।

सर्वपाप विनिर्मुक्तः कुलायुतसमन्वितः

प्रयाति विष्णुभवनं योगिनामपि दुर्लभम्।।[3]

1-नारदीयपुराण 17/47 पूर्वभाग,

2- वही, 17/112

3- सप्तजन्मसु वैकल्यं व्रतानां सफलं कृते।

आयुआरोग्य सौभाग्य राज्य भोगादिमाप्नुयात्।— अग्निपु0 189/6

मार्गशीर्ष एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त व्रत का महत्व करोड़ों गायों के दान के समान है —

"गवां कोटि सहस्राणि दत्वायत्फलमाप्नुयात्
तत फलं लभ्यते पुम्भिरेतस्मादुपवासतः ॥[1]

मासोपवास व्रत के प्रसंग में कहा गया है कि इसके प्रभाव से गृहस्थ वानप्रस्थ व्रती भिक्षुक मूर्ख एवं पण्डित भी मोक्ष के भागी बनते हैं।[2]

अग्निपुराण में भी धर्मार्थ मोक्ष की प्राप्ति भी इसी व्रत से बताई गयी है — "धर्मार्थकाम मोक्षश्च प्राप्नुयात कौमुदव्रती
सर्वम् लभेद् हरिं प्राप्यं मासोपवासिकः व्रती।"[3]

नारदीय एवं अग्निपुराण में प्रतिपद से आरम्भ होकर पूर्णिमा पर्यन्त व्रतों का विधान एवं महत्व वर्णित है जिससे हम निम्नलिखित रूप से परिचित हो सकते हैं —

व्रत	नारदीय पुराण	महत्व
प्रतिपद	—	भोग एवं मोक्षदायक
द्वितीया	—	आरोग्य एवं धनधान्यप्रद
तृतीया	—	अभीष्ट सिद्धि
चतुर्थी	—	समृद्धिप्रद
पंचमी	—	मनोवांछित फलदायक
षष्ठी	—	शिवस्वरूप प्राप्ति

1- नारदीयपुराण, अध्याय 21-27 पूर्वभाग

2- गृहस्थो वानप्रस्थो वा व्रती वा भिक्षुरेव वा
मूर्खो वा पण्डितो वापि श्रुत्वैतत्मोक्षभाग्भवेत्॥ नारदीयपु0अ022/27

3- अग्निपुराण, 198/15

व्रत	नारदीयपुराण	महत्व
सप्तमी	–	समस्त कामनापूर्ति
अष्टमी	–	ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न
नवमी	–	विष्णुलोकगमन
दशमी	–	देवदुर्लभ भोगप्राप्ति
एकादशी	–	मोक्ष की प्राप्ति
द्वादशी	–	संसार बन्धन मोचन
त्रयोदशी	–	आनन्दप्रद
चतुर्दशी	–	सुख-प्राप्ति
पूर्णिमा	–	सभी लोकों की प्राप्ति
अमावस्या	–	समस्तफल दायक

पुराणों में तिथियों की सफलता व्रत के रूप में दर्शायी गयी है जो मानव जीवन पद्धति को स्वच्छ बनाने की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। मनुष्य के जीवन का क्षण-क्षण अमूल्य है अतः समय की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए पूर्वजों ने पुराणों के माध्यम से प्रतिदिन की सफलता की कड़ी मानव जीवन की सार्थकता के साथ जोड़ दी है।

अग्निपुराण में क्रमिक वर्णन यत्र-तत्र संक्षिप्तरूप से किया गया है, जिसको हम निर्दिष्ट संकेत से ज्ञात कर सकते हैं।

व्रत	अग्निपुराण	महत्व
प्रतिपद	–	भू एवं स्वर्गलोक सुख प्राप्ति
द्वितीया	–	भुक्ति-मुक्तिदायक
तृतीया	–	सौभाग्य एवं स्वर्गप्रद

व्रत	अग्निपुराण	महत्व
चतुर्थी	–	मोक्षदायक
पंचमी	–	आयु आरोग्य प्राप्ति
षष्ठी	–	भुक्ति-मुक्तिप्रदा
सप्तमी	–	पाप प्रणाशक
अष्टमी	–	चतुर्वर्गप्राप्ति
नवमी	–	भुक्तिमुक्तिप्रदा
दशमी	–	धनकामप्रद
एकादशी	–	विष्णुलोकप्रद
द्वादशी	–	सकुलस्वर्गप्राप्ति
त्रयोदशी	–	सर्वाभीष्टप्रद
चतुर्दशी	–	सौभाग्य आरोग्यदायक
पूर्णिमा	–	भुक्ति-मुक्ति सौभाग्यप्रद
वारव्रत	–	सर्वसुखप्रद
नक्षत्रव्रत	–	अर्थप्रद
मासव्रत	–	सर्वसुखप्रद
ऋतुव्रत	–	भुक्तिमुक्तिप्रद
दीपदानव्रत	–	समस्तफलदायक

इसी प्रकार सभी व्रतों का महत्व मानव जीवन को सफल बनाने के लिए किया गया है, जो पुरुषार्थ का अन्तिम लक्ष्य है। यही अमूल्य जीवन की सर्वाधिक सार्थकता है।

(5) व्रतों की वैज्ञानिकता :-

व्रत मनुष्य के बाह्य एवं आन्तरिक शोधन के प्रभावकारी साधन हैं। व्रतों में देवताओं के साथ-साथ मानव का जीवन जोड़ा गया है, अतएव अपनी शक्ति के साथ-साथ उनकी शक्ति का भी सहयोग लेकर मानव दैवी गुणों से सम्पन्न होकर संसार के कल्याण के साथ-साथ आत्मकल्याण करने में भी सक्षम हो सकता है। 'परोक्षप्रियाः हि देवाः' के अनुसार अप्रत्यक्ष रूप से उनके अनुष्ठान या व्रत उनकी आन्तरिक शक्ति को प्रेरित करते हैं और वे मानव शक्ति श्रद्धा एवं विश्वास के समक्ष अपना सामर्थ्य प्रदान करते हैं। मानव की शक्ति एवं देवताओं की शक्ति मिलने से दुर्लभ से दुर्लभ कार्य भी सुलभ हो जाते हैं।

ईश्वर एवं देवों की कृपा परोक्षरूप से सहायक होकर मनुष्य की आन्तरिक शक्ति को प्रेरित करती है। देवों अथवा ईश्वर की कृपा के बिना उसका आत्मकल्याण दुःसाध्य है, अतः कठोपनिषद में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भगवत्कृपा के बिना उसकी विद्या, बुद्धि सर्वथा व्यर्थ है —

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुधा श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूस्वाम्।"[1]

कठोपनिषद् में कहा गया है कि ईश्वर उपासनीय है।[2]

मानव का जीवन एक वैज्ञानिक यन्त्र है, जिसका संचालन एक अद्भुत महान शक्ति करती है।

1- कठोपनिषद, 1/2/3

2- तद्धनमिति उपासितव्यम्" (केनोपनिषद)

वह शक्ति अप्रत्यक्षरूप से दृष्टिगोचर नहीं होती किन्तु उसके कार्यकलाप से उसकी गतिविधि का सम्यक् परिचय प्राप्त कर सकते हैं। वह मुझे संकेत भी करता रहता है जैसा कि गीता में लिखा है —

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।[1]

शरीर एक महान विज्ञानमय यन्त्र है, जिसमें नाड़ी तन्तुओं के ताने बाने बुने गये हैं। इसके कारण सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर के भेद से तीन रूप प्राप्त होते हैं। स्थूल शरीर पंचमहाभूतों से निर्मित है जिसके अन्दर सूक्ष्म शरीर अस्तित्व रखते हैं।

पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश मानव जीवन के दैनिक उपयोग में निरन्तर कार्यकारी प्रभाव डालते हैं, अतएव इनके बिना जीवन धारा बन्द हो जाती है। जीवन 'प्राणिनां प्रियः' के अनुसार जीवन का रसमय प्रणिन करने वाले जब मानव की आन्तरिक एवं बाह्य कार्य कलापों से सम्पादित करता है। इसी प्रकार तेज एवं वायु प्राणशक्ति का संचालन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और शरीर की सारी प्रक्रिया को अपनी शक्ति से संचालित करते हैं। स्थूल शरीर से आवृत्त सूक्ष्म शरीर, बुद्धि, कर्मेन्द्रिय, प्राणपंच, मन और ज्ञानेन्द्रिय से निर्मित हैं। इन सभी में एक एक करके देवता अध्यक्ष पद पर आसीन होकर इनका देखरेख करते हैं। ये यद्यपि अदृश्य हैं किन्तु इन्हें अपनी ओर कल्याणकारी दृष्टि अग्रसर करने के लिए मानव को उपकरणों की आवश्यकता होती है, जिनका निर्देशन हमारे शास्त्र पुराण सतत रूप से करते चले आ रहे हैं। व्रत आदि उपाय

1- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 18 पद्य 61

ही इस शरीर रूपी यन्त्र को संचालित करने के लिए प्रेरित करते हैं अतः व्रत में उपवास की प्रक्रिया इन्द्रियों के वाह्य मल एवं आभ्यन्तरिक दूषित मल को दूर करके शुद्ध भावना से ओत-प्रोत होकर दैव शक्ति सम्पन्नता प्राप्त कराती है।

अतएव व्रतों में उपवास के साथ-साथ हवन पूजन की सामग्री की शुद्धि की दृष्टि रखनी पड़ती है, जिसके द्वारा वायुमण्डल की दूषित प्रक्रियायें जीवनधारा को प्रदूषण से आवृत्त न करें इसलिए गंगाजल, तीर्थों एवं समुद्रों के जलों की आवश्यकता पर व्रत में जोर दिया जाता है एवं कई स्थलों जैसे गजशाला वाजिशाला एवं गोशाला आदि की मिट्टियों के महत्व पर भी विशेषरूप से ध्यान दिया जाता है। ये सभी व्रत यज्ञ रूप में प्रतिष्ठित होकर देवों को प्रेरित करते हैं जो इस यन्त्र रूपी शरीर के संचालन में सहयोग प्रदान करते हैं।

****

द्वितीय अध्याय

नारदीय एवं अग्निपुराण का सामान्य परिचय

****

द्वितीय अध्याय

नारदीय एवं अग्निपुराण का सामान्य परिचय

वेद यद्यपि धर्म के मूलस्रोत हैं, किन्तु वे अप्रत्यक्षरूप से हमारे सान्निध्य में नहीं आ पाते अतएव पुराण अपने को प्रत्यक्षरूप से हमारे समक्ष हमारी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को मुखरित करते चले आ रहे हैं। वेदशास्त्रों का अध्ययन करना मानव जीवन में जितना कठिन है, उतना ही पुराणों का अनुशीलन करना सरल है। इसी नाते मानवीय गुणों को साधारणीकरण करते हुए पुराण, धर्म, व्रत नियम आदि सभी कार्यकलापों का सरल से सरलतम उपाय बताते हुए मानव जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा देते हैं।

पुराणशब्द का अर्थ है 'प्राचीन'आपस्ततंब के बहुत पहले से 'पुराण' नामक शब्द ऐसे ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त होता था जिसमें प्राचीन गाथाएँ आदि रहती थीं निघण्टु ने पुराण के अर्थ में छः वैदिक शब्द दिये हैं यथा —'प्रत्नम''प्रदिवः' प्रवय :, 'सनेमि' 'पूर्व्यम्''अह्नाय'।[1] 'पुराण'बीच वाले 'पुरा अण' द्वारा 'पुरातन' का अति प्रचीनरूप हो सकता है।

पुराण शब्द की व्याख्या पाणिनि के अनुसार पुराभवम् इस अर्थ में की गयी है। "सायंचिरंप्राह्णेप्रगे व्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट च"[2] इस सूत्र से ट्यु प्रत्यय करने पर तथा तुट के आगमन होने से पुरातन शब्द की निष्पत्ति बताई गयी है।

1- निघण्टु, 3/27

2- अष्टाध्यायी 4/3/23

पाणिनि ने तो दो सूत्रों 'पूर्वकालैकसर्वजरत् पुराणे नव केवलाः समानाधिकरणेन"[1] तथा पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु[2] पुराण शब्द प्रयुक्त किया है, जिसमें तुट का का निपातन से अभाव किया गया है। वायु पुराण में 'पुरा अनति'[3] अर्थात् जो प्राचीन काल में जीवित था। पद्मपुराण के अनुसार 'पुरा परम्परां वष्टि कामयते' अर्थात् जो प्राचीनता या परम्परा की कामना करता है वह पुराण कहलाता है।[4]

ब्रह्माण्ड पुराण की व्याख्या इससे कुछ भिन्न प्रकार की है, 'पुरा एतद् अभूत' अर्थात् प्राचीनकाल में ऐसा हुआ। इस प्रकार व्युत्पत्तियों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पुराणों में प्राचीनकाल से सम्बद्ध घटनाओं का निष्पक्ष वर्णन किया गया है।

पुराणों की संख्या अठारह बताई गयी है जिसका उल्लेख देवी भागवत के निम्नपद्य में किया गया है —

'मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्-पृथक्।'[5]

मकरादि से दो पुराण मत्स्य तथा मार्कण्डेय, भकरादि से दो पुराण भागवत तथा भविष्य, ब्रत्रयम् से ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त तथा ब्रह्माण्ड, वचतुष्टयम् से वामन, विष्णु, वायु तथा वाराह, अ से अग्नि, न से नारद, प से पद्म, लि से लिंग, ग से गरुड़, कू से कूर्म तथा स्क से स्कन्द पुराण की गणना की गयी। इनमें

---

1 व 2:— अष्टाध्यायी, 2/1/49

3- वायुपुराण, 1/203

4- पद्मपुराण, 5/2/53

5- ब्रह्माण्डपुराण, 1/1/173

भी पुराणों के वर्गीकरण तामस, राजस् एवं सात्विक भेद से तत्तद् देवताओं के वैशिष्ट्य की स्थापना की गयी है। पद्म पुराण के अनुसार मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, एवं अग्नि ये पुराण तामस हैं। ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन ये राजस हैं एवं विष्णु, नारद, पद्म, भागवत, गरुड़, वाराह ये सात्विक पुराणों में गिने गये हैं।[1]

पुराणों को कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। यथा —

(1) ज्ञानकोशीय — अग्नि, गरुड़, एवं नारदीय

(2) विशेषतः तीर्थ से सम्बन्धित — पद्म, स्कन्द एवं भविष्य

(3) साम्प्रदायिक — लिंग, वामन, मार्कण्डेय

(4) ऐतिहासिक — वायु एवं ब्रह्माण्ड।

सम्भवतः वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य तथा विष्णु विद्यमान पुराणों में सबसे प्राचीन है, यद्यपि उनमें भी समय-समय पर प्रभूत वृद्धियाँ होती रही हैं।

अठारह विषयों में नारदीय पुराण अनेक विषयों से परिपूर्ण है। समस्त तीर्थों में जैसे — गंगा, पुरियों में वाराणसी एवं व्रतों में एकादशी श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी पुराणों में नारदीय पुराण अतिउत्तम है। इसमें मानव के कल्याण एवं सर्वसाधारण में अप्रसिद्ध तथा विलक्षण विषय का प्रतिपादन किया गया है। नारदीय पुराण का परम तात्पर्य परमानन्दघन भगवान के उत्तम से उत्तम गुणों का संकीर्तन करना है जो मानव के जीवन के लिए सर्वथा कल्याणमय एवं पथप्रदर्शक है।

नारदीय पुराण का सामान्य परिचय

नारदोक्त पुराण ही 'नारदीय पुराण' के नाम से विख्यात है। नारदीय पुराण के विषय में अन्य पुराणों में लिखा है —

"यत्राह नारदो धर्मान् वृहत्कल्पाश्रयाणि च।
पंचविंश सहस्त्राणि नारदीय तदुच्यते॥"[1]

नारदीय पुराण में दो भाग हैं। पूर्वभाग के अध्यायों की संख्या 125 है तथा उत्तरभाग में 82 अध्याय हैं। सम्पूर्ण श्लोकों की संख्या 25हजार है। इस ग्रन्थ के पूर्वभाग में वर्ण और आश्रम के आचार, श्राद्ध, प्रायश्चित आदि का विस्तृत वर्णन है, इसके पश्चात् व्याकरण, निरूक्त, छन्द ज्योतिष आदि शास्त्रों का विवेचन किया गया है। अनेक अध्यायों में विष्णु राम, हनुमान आदि देवताओं के मन्त्रों का विधिवत् निरूपण किया गया है। विष्णु भक्ति को ही मुक्ति का परम साधन सिद्ध किया गया है।

नारदीय पुराण का एक श्लोक 'किरातार्जुनीय'[2] के श्लोक से मिलता है और घोषणा करता है कि यदि कोई ब्राह्मण महान विपत्ति में भी बौद्ध मन्दिर में प्रवेश करता है तो वह सैकड़ों प्रायश्चित्तों के उपरान्त भी इस पाप से छुटकारा नहीं पा सकता क्योंकि बौद्ध पाखण्डी और वेदनिन्दक हैं।[3]

1- मत्स्य पुराण अध्याय 53/पद्य 23

2- अविवेको हि सर्वाषामापदां परमं पदम्।
सहसा विदधीत् न क्रियाम विवेकः परमापदांपदम्॥— किरात02/30

3- बौद्धालयं विशेद्यस्तु महापद्यापि वै द्विजः
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि
बौद्धाः पाखण्डिनः प्रोक्ताः यतो वेदाविनिन्दकाः ॥
— नारदीय, 1/15/50/52

महापुराणों में नारदीय पुराण की और उपपुराणों में नारदोक्त पुराण की एवं औपपुराणों में बृहन्नारदीय पुराण की गणना पुराण साहित्य में की गयी है। इसका तात्पर्य इतना ही है कि कृति की उत्कृष्टता और मान्यता के तार तम्य से महापुराण, उपपुराण और औपपुराणों के रूपों में रखकर साहित्य का पौराणिक वर्गीकरण किया गया है। वस्तुतः नारदीय पुराण व्यास की उत्कृष्ट कृति होने के कारण महापुराण की कोटि में गण्य है।

अग्निपुराण का सामान्य परिचय

इस पुराण को मनीषियों ने भारतीय विद्याओं का कोश कहा है। इसका उद्देश्य जनसाधारण में ज्ञातव्य विद्याओं का प्रचार करना है। अग्निपुराण के 383 अध्यायों में नाना प्रकार के विषयों का सन्निवेश किया गया है। अवतार की कथाओं का संक्षेप में वर्णन के साथ रामायण एवं महाभारत की कथा का विस्तृत वर्णन किया है। मन्दिर निर्माण की कला एवं देव प्रतिष्ठापूजन आदि का विवेचन विधिवत् किया गया है। छन्द शास्त्र का निरूपण आठ अध्यायों में मिलता है, अलंकार शास्त्र की विवेचन प्रक्रिया बड़े ही मार्मिक ढंग से की गयी है जैसा कि निम्न पद्य से ज्ञात होता है —

"काव्यस्य नाटकादेश्च अलंकारान्वदाम्यथ
ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्येद्वाङ्मयमतम्॥"[1]

अग्निदेव काव्य नाटक आदि के अलंकारों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य वाङ्मय कहलाता है।

1- अग्निपुराण अध्याय, 337/1

अभिधा की प्रधानता से काव्य दो प्रकार का होता है —

"अभिधायाः प्रधानत्वात्काव्यं ताभ्यां निभिद्यते।"[1]

व्याकरण विषय को लेकर शब्दों के भेद एवं उच्चारण की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, जैसा कि इसका कुछ रूप पाणिनि की शिक्षा में दृष्टि - गोचर होता है। कोश विषयक अनुशीलन भी दृष्टव्य है। योग शास्त्र के यम नियम आदि आठों अंगों का संक्षेप में वर्णन है, अन्त में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का सार संकलित है। इसीलिए इस पुराण के अन्त में कहा गया है —

'आग्नेये ह पुराणे स्मिन् सर्वाविद्याः प्रदर्शिताः।'[2]

रचयिता एवं रचनाकाल

रचयिता :—

पुराणों की रचना के विषय में वेदव्यास एवं कृष्ण द्वैपायन का नाम ऐतिहासिक ग्रन्थों में वर्णित है। पुराण संहिता के रचयिता महर्षि व्यास की पारिवारिक परम्परा भी पुराणों में दृष्टिगोचर होती है। प्रख्यात पद्य निर्दिष्ट परम्परा को देख सकते हैं —

"व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्॥"[3]

व्यास जी वशिष्ठ के प्रपौत्र, शक्ति के पौत्र, पराशर के पुत्र तथा शुकदेव के पिता थे। वशिष्ठ जी ब्रह्मा के मानसपुत्र थे जिनकी परम्परा इस प्रकार है —

1- अग्निपुराण, 337/2

2- अग्निपुराण, 383 पद्य 5।

3- पुराण विमर्श, 62/2

ब्रह्मा
।
वशिष्ठ
।
शक्ति, पराशर – व्यास – शुकदेव

विष्णुपुराण में श्री पराशर जी ने मैत्रेय से वेद विभाजन के प्रसंग में कृष्णद्वैपायन का नाम निर्देश किया है, उन्होंने वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन को साक्षात् नारायण का अवतार बताया है। इसमें इसका निर्देश प्राप्त होता है।[1] देवी भागवत में भी इसका निर्देश स्पष्ट है —

"द्वापरे-द्वापरे विष्णु व्यासरूपेण सर्वदा
वेदमेकं सबहुधा कुरुते हितकाम्यया।"[2]

'अतः वेदान व्यस्यति विभाजयति' इस व्युत्पत्ति के अनुसार कोई अवतारी पुरुष ही अपौरुषेय वेद का विभाजन कर सकता है।

व्यास या वेदव्यास एक पदवी या उपाधि का नाम कहा जाता है। जब भी जिन ऋषियों या मुनियों ने वेद संहिताओं का विभाजन या पुराणों का संक्षेप में सम्पादन या प्रतिसंस्करण किया नहीं, उस समय व्यास या वेदव्यास के नाम से विख्यात हुआ और उसे यह उपाधि दी गयी। कलयुग में अल्पायु एवं अल्पबुद्धि वाले मनुष्यों को जानकर उनके हितार्थ वेदों का और पुराण संहिता का विभाजन किया गया है —

"वीर्यं तेजो बलं चाल्पं मनुष्याणामवेक्ष्य च।
हिताय सर्वभूतानां वेद भेदान् करोति सः ॥"[3]

1- द्वापरे-द्वापरे विष्णु व्यासरूपी महामुने।
वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः।— विष्णुपुराण 3/3/5

2- देवीभागवत, 1/3/19

3- विष्णुपुराण, 3/3/6

देवीभागवत में ब्राह्मणों की अल्पबुद्धि की चर्चा की गयी है। यद्यपि ब्रह्मा से लेकर द्वापर के कृष्ण द्वैपायन पर्यन्त व्यासों की परम्परा 28 बताई गयी है। श्रीमद्भागवत में भी पराशर से उत्पन्न वेदव्यास के वेद विभाजन का प्रसंग आता है और शिष्यों प्रशिष्यों में उनका प्रचार प्रसंग भी है –

"पराशरात् सत्यवत्यामंशांश कलया विभुः
अवतीर्णो महाभाग वेद चक्रेचतुर्विधम्॥"[1]

शुकदेव ने पुराण संहिता का अध्ययन अपने पिता से किया था। इसका भी प्रसंग भागवत में है –

"वेद गुप्तो मुनिः कृष्णो यतो भिवमध्यगाम्
शिष्या स्वाध्यान पैलादीन भगवानवादरायणः॥"[2]

वेदव्यास एवं द्वैपायन की सार्थकता

वेदव्यास के लोकविश्रुत आख्यान से यही दृढ़निश्चय होता है कि द्वापर में अवतरित वेदव्यास ने वेद का विभाजन और पुराणों का प्रणयन किया। ये निषाद-राज की पुत्री सत्यवती के गर्भ से पराशर से जायमान थे। यमुना के द्वीप में जन्म होने के कारण 'द्वीपेभवः द्वैपायन" के नाम से विख्यात हुए। कृष्ण वर्ण का कलेवर होने से इन्हें कृष्ण मुनि या कृष्ण द्वैपायन कहा गया। वेद का विभाजन करने से वेदव्यास कहा गया।

1- श्रीमद्भागवत, 12/6/49

2- वही, 9/22/22

वैशिष्ट्य :-

ऐतिहासिक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार समस्त वेदों के मन्त्र अपनी मूलावस्था में अविभक्तरूप से मिले जुले थे उसी प्रकार पुराण संहिता भी अविभक्तरूप में स्थित थी, किन्तु अधिक विस्तृत होने के कारण मनुष्यों की बुद्धि से ग्राह्य न हो सकेगा। अतएव अलग-अलग अठारह खण्डों में विभाजन कर पंचम वेद के नाम से इसे संबोधित किया गया —

"ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः।
इतिहासं पुराणं च पंचमो वेद उच्यते।"[1]

इतिहास से महाभारत का नाम विख्यात है। इस प्रकार वेदव्यास की प्रतिभा एवं विलक्षण बुद्धि का वैभव किसी अवतारी पुरुष में ही दृष्टिगोचर हो सकता है। उनकी अजस्र प्रवाहित लेखनी ने इस वर्तमान युग के प्राणियों की जितनी कल्याणकारी भावना को जागृत किया है वैसा शायद किसी युग[2] के महापुरुष ने न किया हो। वेदव्यास की कृति उनकी कल्याणप्रद भावनाओं का उत्स प्रवाहित करती रहेगी।

व्यास की प्रशस्ति वायुपुराण एवं महाभारत में देखने को प्राप्त होती है जैसा कि वायुपुराण में इंगित है —

"जयति पराशरसूनुः / सत्यवती हृदयनन्दनो व्यासः
यस्यास्य कमलकोशे / वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥"[3]

1- पुराणविमर्श, 64

2- संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 221

3- वायुपुराण, 1/2

महाभारत के आदिपर्व में बिना चार मुख के ब्रह्मा, दो बाहु वाले हरि, भाल पर लोचन रहित शम्भु के रूप में व्यास को बताया है –

'अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः
अभाल लोचनो शम्भुभगवान बादरायणः ॥'[1]

व्यास की विशाल बुद्धि का विवेचन भी मार्मिक ढंग से किया गया है। वस्तुतः ज्ञान का प्रकाश प्रकाशित करने वाले व्यास जी हमारे परम प्रातः स्मरणीय भाजन हैं, इनकी प्रशंसा जितनी भी की जाय वह कम है। इनका मानव जगत के कल्याण के लिए अवतार हुआ था। आजीवन परोपकार की भावना से अपना जीवन तपस्या में व्यतीत करते हुए महान मंगलकारी कृतियों की रचना की यही कारण है कि आठवें मनु में सप्तर्षियों की गणना की में स्थान प्राप्त कर लिया है।

नारदीय पुराण का रचनाकाल

पुराणों के रचयिता वेदव्यास की स्थिति द्वापर के अन्त तक देखी जाती है। इसी के मध्य में नारद के कथानुसार सरस्वती के पावन तट पर महर्षि व्यास ने पुराणों का प्रणयन किया। पुराणों में रचनाकाल का निर्देशन कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है। इतिहासविदों ने आभ्यान्तर साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य का अवलम्बन लेकर काल की परिधि में इन पुराणों को निबद्ध करने का उद्यम किया है।

नारदीय पुराण का एक पद्य किरातार्जुनीयम् के एक प्रख्यातपद्य से सादृश्य रखता है। इसी से इसके रचनाकाल का अनुमान इतिहासविदों ने किया है।

1- महाभारत आदिपर्व

नारदीयपुराण बौद्धों की तीव्र आलोचना करता है। बौद्धों के प्रति यह आलोचना का भाव सप्तमशती के धार्मिक वातावरण का स्पष्टसूचक है, अतः इसका रचनाकाल भारवि तथा कुमारिल भट्ट के मीमांसा ग्रन्थों की बौद्धों की आलोचना से 600 से 900 ईसवीय के मध्य प्रतीत होता है।[1]

प्रथमभाग में वैष्णवागम तथा पंचरात्र विधि का वर्णन है। स्मृति च0 ने नारदीय से एकादशी तथा मोहनी गाथा के विषय में कई श्लोक उद्धृत किये हैं। अपरार्क ने एकादशी के उपवास में दो श्लोक उद्धृत किये हैं। उपर्युक्त दशाओं से यह स्पष्ट होता है कि आज का नारदीय पुराण 700 एवं 1000 ई0 के बीच संगृहीत हुआ।[2]

इस पुराण का उल्लेख प्रसिद्ध पर्यटक अलबरूनी तथा 12 वीं शती के निबन्धकार बल्लालसेन ने 'दानसागर' में किया अतः इसकी रचना 10वीं शती के पूर्व मानना ही उचित है।[3]

अग्निपुराण का रचनाकाल :-

प्रत्येक पुराण का रचनाकाल इतना विवादास्पद है कि भूमिका में इस पर विचार करना असंभव है, क्योंकि बल्लालसेन(ईसवीय 12वीं सती का मध्य) को प्रचलित अग्निपुराण ज्ञात था अतः यह पुराण उनसे कई शताब्दियों पहले रचित हुआ। आधुनिक विद्वानों का मान है कि अग्निपुराण का रचनाकाल सप्तम शताब्दी के बाद हुआ है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह नवम शताब्दी में रचित हुआ था।[4]

1- संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 231   2— धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ0415

3- पुराण समीक्षा, पृ0 58

4- दृष्टव्य — पी0वी0काणे, कृत हिस्ट्री आफ संस्कृत पोयटिक्स, पृ0 9

यह पुराणलोक शिक्षण के लिए उपयोगी क्रियाओं का संग्रह प्रस्तुत करता है अतएव यह पौराणिक विश्वकोश के नाम से प्रख्यात है। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ पूर्णतया सफल हुआ है। शास्त्रीय विषयों के संकलन के साथ-साथ वैज्ञानिक विषयों का भी संग्रह है। इसमें आयुर्वेद, वास्तुविद्या, प्रतिमा लक्षण, राजधर्म काव्य आदि का विवेचन वर्णित है।

इन्हीं विद्याओं के विवरण से अग्निपुराण का निर्माणकाल निश्चित किया जा सकता है। अग्निपुराण भोजराज के सरस्वती कण्ठाभरण का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ है, अतएव एकादश शतक के प्राचीन इसका काल होना चाहिए, अन्य इतिहासकार दण्डी के काव्यादर्श के अनुसार इसका रचनाकाल सप्तम शताब्दी के आसपास का होना चाहिए, किन्तु यह कथन कहाँ तक सत्य है बताया नहीं जा सकता। इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर अग्निपुराण का रचनाकाल सप्तम नवम शती के मध्य मानना उचित होगा।[1]

डॉ0हाजरा ने पुराण साहित्य पर शोधपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने ऐतिहासिक तथ्य पर काफी प्रभाव डाला है, उनके मतानुसार अग्निपुराण का रचनाकाल 800 ई0 का है। इसकी कुछ सामग्री इससे पहले की और कुछ बाद की भी देखी जाती है। वर्तमान अग्निपुराण विभिन्न शताब्दियों से प्राचीन ग्रन्थों के सार से संग्रहीत हुआ है, अतः इसे वन्हिपुराण के नाम से जाना जाता है।[2]

निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि अग्निपुराण नवमी शताब्दी के प्रारम्भ में ही अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त कर चुका था।

1- पुराण विमर्श, पृ0 552

2- संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ 0 230

आलोच्य पुराणों के संस्करण, अध्याय एवं श्लोक संख्या

नारदीय पुराण - संस्करण :-

(1)वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, सन् 1910

(2)मनसुखराय मोर 5 क्लाइव रोड कलकत्ता सन् 1952

(3)ऋषि ट्रस्ट, लाहौर, सन् 1918

(4)पंडित पुस्तकालय काशी, सम्वत् 1998 वि0

(5)प्राच्य विद्या निकेतन, मलिन स्ट्रीट, कलकत्ता सन् 1916

(6)बृहन्नारदीय पुराण, बिब्लोथिका इंडिका, कलकत्ता में प्रकाशित
पंचानन तर्करत्न, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता बं0सं0 1316

(7)बृहन्नारदीय पुराण - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सन् 1989

(8)खेमराज श्रीकृष्ण दास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई।

अग्निपुराण : संस्करण :-

(1)वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई सन् 1908

(2)मनसुखराय मोर, 5 क्लाइव रोड कलकत्ता सन् 1952

(3)पंडित पुस्तकालय, काशी संवत् 1996 वि0

(4)गीता प्रेस गोरखपुर, सन् 1958

(5)पंडित पुस्तकालय, काशी सं0 2003 वि0

(6)कलकत्ता राजधानी कलुटोला स्थित 34/1 बंगवासी स्टीम, श्री अरुणोदय राय
द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित संवत् 1944

(7)आर0मित्र द्वारा सम्पादित, बिब्लोथिका इण्डिका कलकत्ता सन् 1873/79

(8)आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना सन् 1900 ई0

(9)हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सन् 1986

(10)चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, सन् 1966 पृ0सं0 2023

अध्याय :-

नारदीयपुराण - पूर्वखण्ड में 125 अध्याय, उत्तरखण्ड में 82 अध्याय हैं। इसमें 25000 श्लोक हैं।

अग्निपुराण - इसमें 383 अध्याय हैं। 15000 श्लोक हैं।

आलोच्य पुराणों की अन्य पुराणों के अनुसार श्लोक संख्या

पुराणों के अनुसार	नारदीयपु0श्लोक संख्या	अग्निपुराण श्लोक संख्या
अग्निपुराण	25000	12000
अग्निपुराण आनन्दाश्रम संस्करण	—	11457
भागवत	25000	154000
देवीभागवत	25000	16000
नारदीयपुराण	25000	15000
मत्स्यपुराण	25000	16000
अग्निपुराण में दूसरे स्थल पर		15000

नारदीय पुराण : विषय-वस्तु

नारदीय पुराण में दो भाग हैं। प्रथम भाग में सिद्धाश्रम में शौन - कादि महर्षियों का सूत से प्रश्न तथा सूत जी के द्वारा नारदीय पुराण की महिमा और विष्णु भक्ति के माहात्म्य का वर्णन है। नारद के द्वारा विष्णु की स्तुति सृष्टिक्रम का संक्षिप्त वर्णन द्वीप, समुद्र और भारतवर्ष के वर्णन के साथ-साथ सत्कर्मानुष्ठान की महत्ता अनुप्रतिपादित, वर्णाश्रमोचित आचार तथा सत्संग की महिमा वर्णित है। मृकण्डु मुनि की तपस्या से संतुष्ट होकर भगवान का दर्शन देना, मार्कण्डेय जी को पिता का उपदेश, मार्कण्डेय द्वारा भगवान की स्तुति तथा भगवान का भगवद्भक्तों का लक्षण बताकर वरदान देना। जैसा कि —

" तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र सुशीलो भव सर्वदा।
सर्वभूताश्रयो दान्तो मैत्रो धर्मपरायणः ॥[1]

विप्रेन्द्र! तुम भी सर्वदा सुशील रहो। सब प्राणियों के हितचिन्तक उदार मित्र और धर्मपरायण रहो।

इसके अनन्तर गंगा यमुना संगम प्रयाग एवं काशी की महिमा वर्णित है। असूया के कारण राजा बाहु की अवनति तथा उनकी मृत्यु के पश्चात् रानी का मुनि के आश्रम में निवास, सगर का जन्म उनके पुत्रों का विनाश, भगीरथ के द्वारा गंगा से उद्धार बलि के द्वारा देवताओं का पराजय तथा अदिति की तपस्या और भगवद्दर्शन वर प्राप्ति और वामनावतार, बलि के द्वारा तीन पग पृथ्वी का दान देना, बलि का रसातल जाना, ब्राह्मण को जीविका दान का माहात्म्य एवं तड़ाग

1- नारदीयपुराण, 5/77

निर्माण जनित पुण्य के विषय में वीरभद्र की कथा वर्णित है। तड़ाग तुलसी आदि की महिमा, भगवान विष्णु और शिव के पूजन का महत्व एवं देवमन्दिर में सेवा का महत्व, विविध प्रायश्चित्त आदि का वर्णन तथा श्राद्ध तर्पण आदि का विवेचन किया गया है।

नरक यातनाओं का वर्णन भगीरथ का भृगु के आश्रम में सत्संगलाभ मार्गशीर्ष मास से कार्तिक पर्यन्त शुक्लपक्ष की द्वादशी तक वर्णित है।

मार्गशीर्ष द्वादशी को साध्यव्रत का विधान है। इस रोज बारह साध्यगणों का चावल पर आवाहन करना चाहिए। इसको द्वादशादित्य व्रत भी कहते हैं।[1]

चारों वर्णों के सामान्य धर्म का निरूपण, संस्कारों का नियतकाल, विवाह के योग्य कन्या तथा विवाह के आठ भेद का निरूपण है। गृहस्थ वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम के धर्म, श्राद्धविधि व्रत दानादि का वर्णन, यमलोक में पापात्मा के कष्ट तथा पुण्यात्मा के सुख का वर्णन, पापियों के स्थावर आदि योनियों में जन्म लेने से दुखादि का प्रसंग वर्णित है।

भगवान के चरणों से व्यास का उद्गार, इन्द्र और सुधर्म का संवाद, विभिन्न मन्वन्तरों के इन्द्रादि का वर्णन एवं चारों युगों की स्थिति तथा यतिधर्म का निरूपण किया गया है।

सृष्टितत्व के साथ-साथ उत्तम लोक एवं ध्यान योग का वर्णन, पंच - शिख राजा का जनक को उपदेश, खाण्डिक्य और केशिध्वज की कथा, अविद्या के बीज का प्रतिपादन एवं जड़भरत की कथा का प्रसंग है। इसके पश्चात् शिक्षा, व्याकरण,

---

1- द्वादश्यां मार्गशुक्लायां साध्यव्रतमनुत्तमम्। '— नारदीयपु0। 2। /5। पूर्वभाग

निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि के वर्णन के साथ शुकदेव की कथा तथा व्यास जी से भागवत अध्ययन का प्रसंग निहित है।

शैव दर्शन तथा शिक्षा के महत्व के साथ मन्त्र के सम्बन्ध में ज्ञातव्य दोष तथा उत्तम आचार्य एवं शिष्य के लक्षण, मन्त्र शोधन, दीक्षा विधि, पंचदेव पूजा एवं आत्मचिन्तन का विधान बताया गया है। गौडाचार स्नान, सन्ध्या तर्पण आदि का वर्णन, विष्णु सम्बन्धी अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर आदि विभिन्न मन्त्रों के अ अनुष्ठान की विधि के साथ श्रीकृष्ण के अनुष्ठान का विधान वर्णित है।

नारद सनातन संवाद, ब्रह्मा जी का मरीचि को ब्रह्मपुराण का विषयपाठ श्रवण का फल दर्शाया गया है, इसके अनन्तर सभी पुराणों की अनुक्रमणिका तथा उनके पाठ श्रवण एवं दान का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

इस प्रकार पूर्वभाग के अन्त में बारह मासों की प्रतिपद व्रत की विधि एवं कृत्यों से लेकर पूर्णिमा एवं अमावस्या पर्यन्त सम्बन्ध रखने वाले समस्त व्रतों एवं सत्कर्मों का वर्णन विस्तार से किया गया है।

नारदीय पुराण ने दशमी से संयुक्त एकादशी की निन्दा की है। गान्धारी ने दशमी से संयुक्त एकादशी को उपवास किया अतः उसके सौ पुत्र महाभारत में मारे गये। नारदीय पुराण ने एकादशी एवं द्वादशी का विवेचन किया है।

"द्वादश्यां तु कलायां वा यदि लभ्येत पारणा।
तदानीं दशमी विद्धाप्युपोष्यैकादशीः तिथिः।"[1]

1- नारदीयपुराण पूर्वार्ध, अ029 श्लोक 44

यदि द्वादशी में कलामात्र भी एकादशी की प्रतीति हो और द्वादशी में त्रयोदशी कलामात्र संयुक्त हो तो वह परा कही गयी है।

उत्तरभारत में एकादशी व्रत को लेकर राजा रुक्मांगद की कथा से विस्तार से वर्णन किया गया है। एकादशी व्रत के प्रभाव से रुक्मांगद के राज्य में सभी वैकुण्ठ गमन ब्रह्मा से कष्ट निवेदन, ब्रह्मा जी का भगवान तथा भक्तों की श्रेष्ठता का वर्णन जैसा कि इस पद्य में द्रष्टव्य है —

"एको हि कृष्णस्य कृतप्रणामो

दशाश्वमेधावभृथेनतुल्यः

दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म

कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥"[1]

अर्थात् कृष्ण को एक बार प्रणाम करने से दश अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है और दश अश्वमेधयज्ञ करने वाला पुनः जन्म लेता है, परन्तु कृष्ण के प्रणामी का पुनर्जन्म नहीं होता है।

भक्तरुक्मांगद का वैराग्य, रुक्मांगद धर्मांगद संवाद, रुक्मांगद का रानी सन्ध्यावली से वार्तालाप, राजा का वामदेव के आश्रम पर प्रस्थान तथा 'अशून्य-शयन' व्रत के प्रभाव को बताना, राजा का मोहनी के विवाह के साथ राजधानीकी ओर प्रस्थान, घोड़े की टाप से कुचली हुई छिपकली की राजा द्वारा सेवा, छिपकली की आत्मकथा तथा राजा का पुण्यदान से उद्धार तथा मोहनी के साथ वैदिश नगर को प्रस्थान करना, मोहनी से कार्तिक मास की महिमा तथा चातुर्मास्य विधि का

1- नारदीय पुराण का 6/3 उत्तरभाग

वर्णन किया गया है। रानी सन्ध्यावली का कृच्छ्रव्रत करना, मोहनी का एकादशी में भोजन आग्रह किन्तु राजा की अस्वीकृत, राजा रुक्मांगद का मोहनी के आक्षेपों का खण्डन एकादशी व्रत की वैदिकता मोहनी का रुष्ट होकर जाना तथा धर्मांगद का उसे लौटाकर लाना, रुक्मांगद का एकादशी को भोजन न करने का निश्चय, रानी सन्ध्यावली तथा मोहनी संवाद, मोहनी का सन्ध्यावली से उसके पुत्र का मस्तक माँगना, पुत्र को वध के लिए उद्यत देखकर मोहनी का मूर्छित होना एवं पत्नी पुत्र सहित राजा रुक्मांगद का भगवान के शरीर में प्रवेश करना आदि प्रसंग वर्णित है। तत्पश्चात् यमराज का ब्रह्मा जी से कष्ट निवेदन, मोहनी का ब्राह्मण के शाप से भस्म होना तथा पुत्र शरीर की प्राप्ति एवं गंगा के माहात्म्य का वर्णन है।

'त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः प्रभुः ।
गंगेत्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमो नमः ॥'[1]

अर्थात् तुम ही मूल प्रकृति तथा नारायण प्रभु हो। गंगे, तुमपरमात्मा तथा शिव हो तुम्हें नमस्कार है।

इसी प्रकार गंगा को मूल प्रकृति नारायण तथा शिव के रूप में चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त गया तीर्थ में पिण्डदान की महिमा काशीपुरी का माहात्म्य, शिवलिंग पूजन महत्व प्रतिपादित है।

उत्कल देश के पुरुषोत्तम क्षेत्र में इन्द्रद्युम्न के मोक्षप्राप्ति एवं वर प्राप्ति के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा का महत्व वर्णित है। समुद्र स्नान की महिमा, प्रयाग माहात्म्य के प्रसंग में माघ मकर स्नान का महत्व, बदरिका आश्रम

1- नारदीयपुराण 43/84 उत्तरभाग

कामाख्या, गौतमाश्रम, नर्मदा के तीर्थ अवन्ती मथुरा वृन्दावन आदि तीर्थों का धार्मिक विवेचन है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उत्तरभाग के तीर्थों के महत्व का वर्णन करने में कम महत्वपूर्ण नहीं है।

अग्निपुराण : विषयवस्तु

अग्निपुराण में अग्निदेव ने महर्षि वशिष्ठ से ईशानकल्प का वर्णन किया, इसमें अनेक प्रकार के चरित्र निबद्ध हैं, अतएव यह पुराणअद्भुत विषयका प्रतिपादन करता है। सर्वप्रथम पुराण विषयक प्रश्न के साथ अवतार की कथा बताई है। कूर्मावतार तथा वाराहावतार के साथ रामायण के आदिकाण्ड के साथ उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है –

"अवतारक्रिया दुष्टनष्टैः सत्यपालनाय हि"[1]

विष्णु के अवतार लेने का काम दुष्टों का नाश करने एवं सज्जनों का उद्धार करने के लिए होता है।

बुद्ध एवं कल्कि अवतार कथा एवं अठारहवें में स्वायंभुव मनु के वंशजों के नाम तथा कश्यप के वंशजों के नाम कहे गये हैं। प्रह्लाद[2] को दानवाधिप कहा गया है, यद्यपि जातितः प्रह्लाद दैत्य हैं। गीता में उचित ही कहा गया है "प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानाम्।"

जगत सृष्टि विष्णु पूजा, स्नानविधि पूजा विविध , अग्निकार्यादि मन्त्र प्रदर्शन, अभिषेक विधि, दशावतार प्रतिमा लक्षण, देवी प्रतिमा लिंग लक्षण मान आदि का विशेष वर्णन है।

1- अग्निपुराण, 2/2

2- अग्निपुराण में प्रह्लाद के । एकारमुद्रित पाठ है, यह पाठ अन्यत्र भी मिलता है।

इसके पश्चात् दशदिक्पाल याग, कलशादि स्तवन, ध्वजारोपण, कूपवापी, तड़ागादि प्रतिष्ठा कथन, सूर्यपूजा, अग्नि स्थापनादि विधि, शिव शेष चण्ड पूजन विधि तथा संस्कारदीक्षा विधि का वर्णन है।

निवृत्ति कला प्रतिष्ठा, शान्तिकला, शोधन विद्या, कला निर्वाण दीक्षा एक तत्व दीक्षा नाना मन्त्र प्रतिष्ठा, वास्तु पूजा शिला विन्यास, प्रतिष्ठोपकरण, प्रासादि आदि प्रतिष्ठा के साथ ध्वजारोहण जीर्णोद्धार क्रिया सामान्य प्रासादि लक्षण, गृहादि वास्तु कथन नगरादि वास्तु कथन चर्चित है। प्रयाग काशी नर्मदा, गयादि माहात्म्य के प्रसंग में विविध विषय का वर्णन किया गया है। नर्मदा माहात्म्य के बारे में कहा गया है।

"सद्यः पुनाति गांगेयं दर्शनाद्वारि नार्मदम्।।[1]

गंगा जल (स्पर्श से) ही सद्यः पवित्र कर देता है किन्तु नर्मदा का जल तो दर्शनमात्र से ही पवित्र कर देता है।

श्राद्धकल्प, जम्बूद्वीप वर्णन, ब्रह्माण्ड वर्णन के अतिरिक्त काल - गणना, विविध योग नाना चक्र, नक्षत्र निर्णय, सेवाचक्र के साथ नाना फल का कथन हुआ है। त्रैलोक्य विजय विद्या, संग्राम विजय, नक्षत्र चक्र षट्कर्म, षष्ठि संवत्सर कुब्जिका पूजा, त्वरितादि पूजा, विजय विवाद आचार, द्रव्यशुद्धि शौचकथन, वान-प्रस्थयति एवं धर्मशास्त्र आदि का निरूपण किया गया है।

नाना धर्म, वर्ण धर्म, महापातक, रहस्यादि प्रायश्चित्त पापनाशक स्तोत्र पूजा लोप में प्रायश्चित के साथ व्रत की परिभाषा का विवेचन किया गया है, जिसमें प्रतिपद से आरम्भ कर पूर्णिमा तथा अमावस तक सभी तिथियों के व्रत का

1- अग्निपुराण, अध्याय 113/1

विधान वर्णित है।

शिवरात्रि व्रत की विधिवर्णित है, तथा बताया गया है कि पूर्वकाल में सुन्दरसेन नामक पापी व्याध ने इस व्रत के प्रभाव से सद्गति को प्राप्त कर लिया था।'[1]

दिव्य कथन, सीमा विवाद, श्री सूक्त, देवपूजादि का विधान निर्दिष्ट है। दिक्पाल विनायक महेश्वर स्नान, नीराजन इत्यादि मन्त्र, विष्णुपञ्जरस्त्व, वेद शाखादि ...न माहात्म्य के साथ, सूर्य वंश तथा यदुवंश का वर्णन प्राप्त होता है।

राजाओं के द्वादश संग्राम का वर्णन अत्यन्त उपादेय है। सिद्धयोग मृत्युञ्जय कल्प, हस्त चिकित्सा, अश्व चिकित्सा, लक्षण अश्व, गज, गो शान्ति के साथ मन्त्र की परिभाषा दर्शायी गयी है।

छन्दशास्त्र में सर्वप्रथम गायत्री छन्द तथा उसके भेद के निरूपण के साथ छन्दजाति का निरूपण, वैदिक लौकिक छन्द भेद, विषम, अर्धसम, सम्वृत्त आदि का विवेचन है, तदुपरान्त प्रस्तारनिरूपण शिक्षा निर्देश, काव्यादि लक्षण, नाट्य रस आदि का निरूपण किया गया है जो साहित्य मर्मज्ञों के लिए नितान्त उपादेय है।

अलंकार शास्त्र का विवेचन भी विद्वानों के लिए उपजीव्य है जिसमें शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्दार्थालंकार के कथन के साथ काव्य के गुण पर विचार किया गया है। जैसे —

'शब्दमाश्रयते काव्यं शरीरं यः स तद्गुणः
श्लेषो लालित्यगाम्भीर्ये सौकुमार्यमुदारता।"[2]

1- लुब्धकः प्राप्तवान्पुण्यं पापी सुन्दरसेनकः ' — अग्निपुराण, अ० 193/6

2- अग्निपुराण, 346/5

जो काव्य के शरीर रूप शब्द के आश्रित रहता है उसे शब्द गुण कहते हैं। इसके सात भेद हैं — श्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सुकुमारता, उदारता।

काव्यदोष का भी निरूपण किया गया है, जिसमें कवि नियमनिबद्ध होकर काव्य को सुचारू रूप दे सके। इसके अतिरिक्त एकाक्षर व्याकरण, सन्धि, स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग, कारक, समास, तद्धित, उण्डादि कृदन्त अव्यय, भूमि वनौषधि मनुष्य ब्रह्म, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, वर्ण का निरूपण कर शब्दकोश का अभिधान है। इसके अतिरिक्त सामान्य लिंग के साथ, नित्य, नैमित्तिक प्राकृत तथा आत्यन्तिक प्रलय का विवेचन है।

अन्त में मोक्ष को प्रदान करने वाला ब्रह्मज्ञान, अद्वैत ब्रह्म विज्ञान गीतासार, यमगीता निरूपण के साथ आग्नेय पुराण का माहात्म्य वर्णित है।

इस प्रकार अग्निपुराण हमारे समक्ष मानव के समस्त लौकिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान की निधि लेकर उपस्थित है, जिसके लिए हम सभी चिरऋणी रहेंगे।

पुराण लक्षणों की दृष्टि से आलोच्य पुराण

पुराण का लक्षण –

पुराण का पंचलक्षण प्रायः प्रत्येक पुराणों में प्राप्त होता है। अग्निपुराण के प्रथम अध्याय में पुराण के पंचलक्षणों का उल्लेख किया गया है –

"सर्गस्य प्रतिसर्गस्य वंशमन्वन्तरस्य च।
वंशानुचरितस्यैव मत्स्यकूर्मादिरूपधृक्॥"[1]

1- अग्निपुराण का 1/14

पुराण में सर्ग(ईश्वरकृति सृष्टि) प्रतिसर्ग(कार्यसृष्टि और लय)वंश (देवताओं और पितरों की वंशावली) मन्वन्तर(अर्थात् किस मनु का कब तक अधिकार रहा) तथा वंशानुचरित (सूर्य चन्द्र प्रभृति राजवंशों में उत्पन्न होने वालेराजाओं का संक्षिप्त वर्णन) मत्स्य तथा कूर्म आदि रूपों को धारण करने वाले भगवान विष्णु का वर्णन है। इसके अनुरूप विष्णु पुराण में भी लक्षण प्राप्त होता है, उसमें बताया गया है कि सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित में ही पुराण के पंच लक्षण हैं।[1]

अमरकोश ने इतिहास को पुरावृत्त एवं पुराण को 'पंचलक्षण' माना है, निःसन्देह यह ठीक है कि कुछ पुराण 'पुराण' को पंचलक्षण कहते हैं और उन पाँच लक्षणों को यों कहते हैं — सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित।[2]

श्रीमद्भागवत में पुराण के दश लक्षण निर्दिष्ट हैं और बारहवें स्कन्ध में दशलक्षणों के साथ महदल्प व्यवस्था से पंचलक्षण भी पुराण मान्य होता है। बारहवें स्कन्ध में दोनों लक्षणों की प्रतिष्ठा की गयी है —

"सर्गो स्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च।
वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदोविदुः
केचित्पंचविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया।[3]

1- सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पंचलक्षणम्।। — विष्णुपुराण 3/6/24

2- धर्मशास्त्र का इतिहास चतुर्थ भाग, अ022 पृ0

3- श्रीमद्भागवत, 12/7/9/10

भागवत के दश विषय हैं — सर्ग(सृष्टि) विसर्ग(नाश के उपरान्त विलयन या सृष्टि) वृत्ति(शास्त्र द्वारा व्यवस्थित या स्वाभाविक जीवन वृत्तियाँ अर्थात् जीने के साधन) रक्षा(जो लोग वेदों से घृणा करते हैं उनका अवतारी देवता नाश करते हैं) मन्वन्तर(वंश वंशानुचरित संस्था(लय के चार प्रकार) हेतु(सृष्टि का कारण यथा आत्मा जो अविद्या के वश में होकर कर्म एकत्र करता है) एवं अपाश्रय(आत्माओं का आश्रय अर्थात् ब्रह्म) ये ही दश लक्षण हैं।

विद्यमान पुराणों में पाँच से अधिक विषय पाये जाते हैं, केवल कुछ पुराण ही पाँच लक्षणों पर प्रभूत प्रकाश डालते हैं। सभी पुराणों में केवल विष्णु पुराण ही पंचलक्षण परिभाषा के अनुसार सम्यक् ठहरता है, किन्तु इसमें कुछ अन्य विषय भी उल्लिखित हैं।[1]

सर्ग :—

जगत की तथा नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति या सर्जन सृष्टि के नाम से कही जाती है —

"अव्याकृत गुणक्षोभात् महतस्त्रिवृतोऽहम्।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते।"[2]

इस लक्षण के अनुसार नारदीय पुराण में सृष्टितत्व के वर्णन के विषय में नारद जी ने सनन्दन जी से पूँछा और भरद्वाज ने भृगु से एतत् विषयक प्रश्न किया। भृगु ने उत्तर देते हुए कहा कि जिन पूर्व पुरुष को मानस नाम से जाना

1- धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० अ० 22 पृ० 389

2- श्रीमद्भागवत, 12/7/11

और सुना जाता है, वे आदि अन्त से रहित देव अव्यक्त नाम से विख्यात हैं। वे अव्यक्त पुरुष शाश्वत, अक्षर एवं अविनाशी हैं। उन्हीं से उत्पन्न होकर सम्पूर्ण भूत प्राणी जन्म और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। उन भगवान नारायण ने अपनी नाभि से तेजोमय दिव्य कमल प्रकट किया, उस कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और त्रिगुणात्मक सृष्टि की रचना की।

जीव के विषय में व्याख्यान करते हुए भृगु ने बताया कि पांच महाभूतों से निर्मित एक मात्र अन्तरात्मा धारण करता है। वही गन्ध, स्पर्श, शब्द, रस तथा अन्य गुणों का अनुभव करता है। इसी प्रसंग में सत्य की महत्ता बताते हुए कहा है कि सत्य ही प्रजा की सृष्टि करता है और सत्य से ही यह लोक धारण किया जाता है। असत्य तमोगुण का स्वरूप है —

"सत्यं व्रतं तपः शौचं सत्यं विसृजते प्रजाः।
सत्येन धार्यते लोकः सत्येनैव गच्छति॥"[1]

सत्य, व्रत और पवित्रता से ही प्रजा की सृष्टि हुई है। सत्य से ही यह लोक टिका हुआ है। सत्य से ही स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। इसी प्रसंग में अध्यात्म तत्व का विवेचन किया गया है जिसे समस्त प्राणियों के लिए हितकारी बताया गया है।

अग्निपुराण में भी सृष्टितत्व का विवेचन विस्तार से बताया गया है। इसमें भी ब्रह्म को अव्यक्त रूप में निर्दिष्ट किया गया है। सर्ग के आदि में महत्तत्व की उत्पत्ति हुई, तदनु अहंकार वैकारिक तेजस और तामस की उत्पत्ति हुई। उसी

1- नारदीयपुराण, 43/8। पूर्वभाग

अहंकार से पंचतन्मात्राएँ एवं तामस, राजस, सात्विक इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। इसी प्रसंग में जल की सृष्टि प्राथमिक सिद्ध की गयी है और वही जीव का प्राणाधायक तत्व है। नारायण का वह चिरस्थायी निवास है अतएव उसे नारायण कहा जाता है। नार को ही जल कहा गया है। नाना प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छा वाले भगवान स्वयम्भू ने सर्वप्रथम जल की सृष्टि की और उसमें अपने वीर्य को निहित कर दिया।[1]

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥[2]

इसी प्रकार महत्तत्व से ब्रह्मा की मानसी सृष्टि पर्यन्त एक अध्याय में सृष्टि क्रम का क्रमिक विकासात्मक, जगत्प्रक्रिया का वर्णन किया गया है--

'मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं मानसान्सप्त ब्रह्मणानिति निश्चितम्॥[3]

ब्रह्मा जी ने मन से मरीचि अत्रि अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ नामक सप्त ऋषियों को उत्पन्न किया।

1- ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधा प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥ अग्निपुराण 17/6

2- अग्निपुराण 17/7

3- अग्निपुराण अ0 17/15

<u>प्रतिसर्ग :-</u>

सर्ग अर्थात् सृष्टि के पश्चात् उसकी अन्त में समाप्ति जिन कारणों से होती है और सर्ग के बाद अन्य सृष्टि का जो क्रम है वह प्रतिसर्ग के नाम से अभिहत किया जाता है। अतएव सृष्टि के प्रलय का वर्णन मुख्य रूप से किया जाता है —

"नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिकोऽस्यमः।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः ॥[1]

नारदीय पुराण में मार्कण्डेय को उनके पिता ने समय का प्रभाव बताते हुए कहा है कि एक सप्तति अर्थात् 71 बार चारों युगों के व्यतीत होने पर एक इन्द्र और मनु का परिवर्तन होता है। इस प्रकार ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु और चौदह इन्द्र अपने कालानुसार संसार की स्थिति को नियमित करने के लिए समय का उपभोग करते हैं। तत्पश्चात् प्रलय का समय ब्रह्मा के दिन के पश्चात् रात्रि आने पर होता है, उस समय समस्त संसार जल में निमग्न हो जाता है।

"दैवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्मः कल्पौ तु तौ नृणाम्।
एक सप्ततिसंख्यातैर्दिव्यैर्मन्वन्तरं युगैः ॥
चतुर्दशभिरेतैश्च ब्रह्मणो दिवसं मुने।
यावत्प्रमाणं दिवसं तावद्रात्रिः प्रकीर्तिता
नाशमायाति विप्रेन्द्र तस्मिन्काले जगत्त्रयम् ॥[2]

चार हजार दैवयुग काल में मनुष्यों के दो कल्प होते हैं और इकहत्तर चतुर्युगों का एक मन्वन्तर होता है। चौदह मन्वन्तरों का ब्रह्मा का एक दिन होता

1- श्रीमद्भागवत 12/7/17

2- नारदीयपुराण, 5/27/28

है। जितने समय परिमाण का उतने की रात्रि होती है। विप्रेन्द्र रात्रिकाल में त्रिलोकी का नाश होता है। इसे नैमित्तिक प्रलय भी कहते हैं। ब्रह्मा की 100 वर्ष की आयु इस गणना से पूर्ण हो जाने पर द्विपरार्ध के अतिक्रान्त होने पर प्राकृतिक प्रलय का दृश्य उपस्थित होता है जिसमें प्रकृति कृत सृष्टि का लय हो जाता है वही विष्णु का दिनमान बताया गया है –

"परार्धद्वय कालस्तु तन्मतेन भवेद्द्विजः
विष्णोरहस्तु विज्ञेयं तावद्रात्रिः प्रकीर्तिता।"[1]

अर्थात् द्विजों इस मत से दो परार्धकाल होता है। द्विपरार्धकाल विष्णु का एक दिन और उतने ही काल की उनकी रात्रि होती है।

इसी प्रकार नित्य प्रलय का वर्णन जो प्रतिदिन होता है, किया गया है आत्यन्तिक प्रलय उसे कहते हैं जब जीव अहंकार आदि उपाधियों को छोड़कर अच्युत अनन्त का आश्रय लेकर निरुपाधि हो जाता है वही जीव का मोक्ष स्थान है।

अग्निपुराण का प्रतिसर्ग निरूपण प्रायः श्रीमद्भागवत के सदृश है इसमें 339 एवं 340 अध्यायों में विस्तृत रूप से नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक एवं आत्यन्तिक प्रलय का वर्णन किया गया है।

वंश निरूपण एवं मन्वन्तर निरूपण :–

"अन्वयः राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिको" ब्रह्मा जी के द्वारा जितने राजाओं की सृष्टि हुई उनकी भूत, भविष्य तथा वर्तमानकालिक परम्परा को 'वंश' के नाम से जाना जाता है, किन्तु उपलक्षण के द्वारा ऋषियों की वंशपरम्परा का भी संकेत किया गया है।

1- नारदीयपुराण, 5/3।

"स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं तत स्वारोचिषस्तथा।

उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा।

भौत्य चतुर्दशः प्रोक्त ऐते हि मनवस्तथा।"[1]

इसी प्रकार 24 वें अध्याय में इन्द्रादि देवों का वर्णन है। ये सभी ब्रह्मा के एक सहस्त्रयुगी दिन में अपनी अवधि पर्यन्त स्थित रहते हैं।[2]

राजाओं में सगरवंश, बलि, जनक, जडभरत, मान्धाता, रुक्मांगद आदि राजवंशीय चरित्र की चर्चा का निर्देश किया गया है।

"सूर्यवंशं सोमवंशं राज्ञां वंशं वदामि ते।

हरेर्ब्रह्मा पद्मगो भून्मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः।[3]

अग्निपुराण में सूर्यवंश, चन्द्रवंश, सोमवंश का वर्णन विशेषरूप से किया गया है। भगवान विष्णु से कमलासिन ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।

इस सूर्यवंश की उत्पत्ति मरीचि के पुत्र कश्यप और विवस्वान(सूर्य) पुत्र से हुई। अतएव इस वंश का नाम सूर्यवंश हुआ।

चन्द्रवंश के मूल पुरूष ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और उनसे चन्द्रमा हुए जिससे चन्द्रवंश का विस्तार हुआ –

"सोमवंशं प्रवक्ष्यामि पठितं पापनाशनम्।

विष्णुनाभ्यज(ब्ज)तो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रो त्रिरत्रितः ॥[4]

चन्द्रवंश के वर्णन का पाठ करने से सभी पापों का नाश हो जाता है। विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा से अत्रि और अत्रि से सोम

1- नारदीयपुराण 42/20/23 उत्तरभाग

2- वही, 24/35 उत्तरभाग

3- अग्निपुराण, 273/1

4- अग्निपुराण 273/2

की उत्पत्ति हुई।

इसी प्रकार मनु के पुत्र प्रियव्रत उत्तानपाद के वंशजों के वर्णन से मानवी सृष्टि का वर्णन किया गया है।

"प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवात् सुतौ।
अजीजनत सुतां रम्यां शतरूपा तपोऽन्वितः ॥[1]

स्वायम्भुव मनु ने तपस्विनी भार्या शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या को उत्पन्न किया।

इस भांति दोनों पुराणों में भी कुछ समानता एवं विषमता का वर्णन क्रम से प्राप्त होता है। अग्निपुराण में सृष्टि तत्व एवं राजवंश का वर्णन जैसा उप - लब्ध है, वैसा नारदीय पुराण में नहीं है: फिर भी पुराण की दृष्टि से दोनों पुराणों के लक्षण समन्वित हैं।

वंशानुचरित :-

राजाओं एवं मनुष्य वंश में प्रसूत वंशधरों के मूलपुरुषों का विशिष्ट विवरण ही 'वंशानुचरित' कहलाता है। नारदीय पुराण के 7वें अध्याय में राजा बाहु का चरित्र, नवें में सौदास चरित, बीसवें में सुमति विभाण्डक ऋषियों का चरित्र वैशिष्ट्य, 37 वें अध्याय में उतंक 39वें में जयध्वज, 40वें में सुधर्मा आदि का चरित्र वैशिष्ट्य वर्णित है।

"देवतागणः संकीर्णः सुधर्म निलयं ययौ।
समागतं देवपतिं बृहस्पतिसमन्वितम्॥
दृष्ट्वा यथार्ह देवर्षे पूजयामास सादरम्।"[2]

1- अग्निपुराण, 18/1

2- नारदीयपुराण, 40/10/11 पूर्वभाग

गुरुदेव की बातों को सुनकर इन्द्र गुरुदेव और देवताओं को साथ लेकर सुदर्मा के घर गया। देवर्षि नारद ने इन्द्र को बृहस्पति के साथ आया हुआ देखकर यथायोग्य सबकी पूजा की।

अग्निपुराण के 18 वें अध्याय से 20 वें अध्याय पर्यन्त स्वायम्भुव कश्यप,भृगु आदि ~~भृगु आदि~~ पूर्व पुरुषों के मूलभूत होने से उनसे की गयी पूजा की सृष्टि का क्रमिक विकासात्मक वर्णन है। स्वायम्भुव मनु के वंश में आदि राजाग्रणी राजा पृथु प्रादुर्भूत हुए –

"प्रजार्थमृषयोऽथास्य ममन्थुर्दक्षिणं करम्।
वेणस्य मथिते पाणौ सम्बभूव पृथुर्नृपः ॥
तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत्॥"[1]

प्रजा की रक्षा के लिए उसके दाहिने हाथ को मथना प्रारम्भ किया वेण का हाथ मथने पर उससे राजा पृथु उत्पन्न हुआ। उसको देखकर ऋषियों ने कहा –' यह राजा अवश्य अपने न्यायाचरण से प्रजाओं को सुखी बनाकर महान यश प्राप्त करेगा।

इसी वंश में महादानी बलि ने अपना जन्म ग्रहण किया और इन्हीं के पुत्र बाणासुर हुए जिसने भगवान शिव को प्रसन्न कर अमोघ वर प्राप्त किये।

"विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्
बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाण ज्येष्ठं महामुने॥

1- अग्निपुराण, 18/12/13

पुराकल्पे हि बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं प्राप्त ईश्वरात्॥[1]

प्रह्लाद का पुत्र विरोचन , विरोचन का पुत्र बलि था। हे मुनिश्रेष्ठ, बलि के सौ पुत्र थे जिनमें बाण सबसे ज्येष्ठ थे। पूर्वकल्प में बाण ने भगवान शंकर को अपनी तपस्या से प्रसन्न करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि ' मैं आपके पास ही विचरण करता रहूँगा।

लक्षणान्तर —

कौटिल्य अर्थशास्त्र की व्याख्या में जयमंगला के किसी प्राचीनग्रन्थ से व यह पद्य उद्धृत किया है —

'सृष्टि प्रवृत्ति संहार धर्म मोक्ष प्रयोजनम्।
ब्रह्माभि विविधैः प्रोक्तं पुराण पंचलक्षणम्॥[2]

इसमें धर्म पुराण का एक अविभाज्य अंग स्वीकृत किया गयाहै। आधु - निक विद्वानों को यही मत मान्य है। इस लक्षणानुसार भी नारदीय पुराण एवं अग्निपुराण दोनों धर्म वैशिष्ट्य से ओतप्रोत हैं। सृष्टि प्रवृत्ति, संहार आदि का विवेचन यथोचित रूप से किया है। नारद सनक से सृष्टि विषयक प्रश्न करते हैं —

कथं ससर्जब्रह्मादीनादिदेवः पुरा विभुः
तन्ममाख्याहिसनकसर्वज्ञोऽसितयते भवान्॥[3]

सृष्टि के आदि में विभु आद देव ने किस प्रकार ब्रह्मा आदि को उत्पन्न किया।

1- अग्निपुराण 19/9/10
2- पुराण विमर्श, पृ0 127
3- नारदीय पुराण 3/1 पूर्वभाग

"स देवः परमः शुद्धः सत्वादिगुणभेदतः।

मूर्तित्रयं समापन्नः सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्॥[1]

वह परम शुद्धदेव सत्व, रज और तम भेद से तीनों रूपों में अपने को विभक्त कर देता और इस प्रकार पृथक-पृथक रूप-रूप रूप से सृष्टि स्थिति और प्रलय करता है।

इसी प्रकार व्रतों के विधान में मानवीय लाभकारी धर्म का निरूपण विशेषरूप से किया गया है।

"व्रतमेतत्तुयः कुर्याद्द्वारपञ्चकसीञ्जनम्।

न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन॥[2]

द्वारपञ्चक नामक व्रत का जो अनुष्ठान करता है वह कभी भी ब्रह्म लोक से वापस नहीं लौटता है।

इसी प्रकार मासोपवासादि व्रतों का विधान एवं उनका अमोघ फल का निर्देश प्रायः दोनों ग्रन्थों में किया गया है।

पुराण के दश लक्षण :-

श्रीमद्भागवत में पुराण के दश लक्षण लक्षित हैं, जिन लक्षणों के अन्तर्गत कुछ महापुराणों की गणना की जा सकती है — श्रीमद्भागवत के द्वितीय एवं बारहवें स्कन्ध में लक्षण का वर्णन इस प्रकार से किया गया है —

"अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।

मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥

1- अग्निपुराण 3/24 पूर्वभाग

2- नारदीय पुराण 21/25 पूर्वभाग

द्वादश स्कन्ध के अनुसार दश लक्षण -

"सर्गश्च विसर्गश्च वृती रक्षान्तराणि च
वंशो वंशानुचरित हेतुरपाश्रयः।"

(1) सर्ग   सृष्टि से सम्बद्ध है।

(2) विसर्ग -   महत्तत्व से चराचर, शरीरात्मक उपाधि से जीव की सृष्टि ही विसर्ग है।

(3) वृत्ति -   मानव या प्राणियों की जीवनाधायक वस्तु का निर्माण ही वृत्ति कही कही जाती है।

(4) अवतार -   अवतार के अन्तर्गत भगवान का अंशरूप रूप से देव, मनुष्य, ऋषि आदि में जन्म लेना ही आता है।

(5) हेतु -   जीव मनुष्य, ऋषि आदि में जन्म लेना ही आता है। जीव जिस अविद्या के कारण जन्म मरण का कारण बनता है वही हेतु है।

अपाश्रय -   ब्रह्म जो जीव की तीन जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं में साक्षी रूप से चैतन्य होकर रहता है वही अपाश्रय के नाम से विख्यात है।

इस भांति पंचलक्षण तथा दशलक्षणों के विवेचन से प्रतीत होता है कि नारदीय पुराण एवं अग्निपुराण दोनों पुराणों की विशिष्ट कोटि में गण्य है। प्राय: पंचलक्षण के अन्तर्गत दशों लक्षणों का समावेश रहता है, अतः यह दोनों पुराण महापुराण की महनीय संज्ञा प्राप्त करने में सक्षम है।

अग्निपुराण में जगतसृष्टि मनु से मानवीय सृष्टि भृगु से ऋषि वंश की उत्पत्ति एवं कश्यप से देव दानवों की क्रमिक सृष्टि का वर्णन किया गया है। जैसा कि 17 वें अध्याय में द्रष्टव्य है -

"जगत्सर्गादिकां क्रीड़ां विष्णोर्वक्ष्येऽधुना शृणु।

स्वर्गादिकृत्स सर्गादिः सृष्ट्यादिः सगुणो गुण।।"[1]

इसी प्रकार प्रलय से विनाश लीला जगत की दिखाई गयी है, जिसका वर्णन चारों नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यान्तिक प्रलयोंके द्वारा किया गया है।

इसी प्रकार चारों वर्णों एवं आश्रमों के दैनिक अनिवार्यरूप से धर्मों का विशेषरूप से निरूपण किया गया है –

'अहिंसा सत्य वचनं दया भूतेष्वनुग्रहः।

तीर्थानुसरणं दानं ब्रह्मचर्यममत्सरः॥'[2]

अहिंसा, सत्य, दया, प्राणियों पर अनुग्रह, तीर्थाटन, दान, ब्रह्मचर्य, अमत्सर इन सार्ववर्णिक धर्मों के निरूपण के पश्चात् विप्रादि वर्णों के धर्मों का विवेचन भी द्रष्टव्य है। यजन, याजन, दान, वेदादि अध्ययन, अध्यापन और प्रतिग्रह ये ब्राह्मणों के धर्म हैं। क्षत्रिय और वैश्य का सामान्य धर्म है दान, अध्ययन और यथाविधि यजन।[3]

व्रतोंके क्रमिक वर्णन में उनके अमोघ फलों का अन्तिम तथ्य मोक्ष प्राप्त करना ही है, जिसको पुराणों ने बड़े ही प्रभावकारी शब्दों से उद्घोषित किया गया है। वारव्रत के प्रसंग में द्रष्टव्य है –

'वार व्रतानि वक्ष्यामि भुक्ति मुक्ति प्रदानि हि।

करः पुनर्वसुः सूर्ये स्नानि सर्वौषधी शुभा।'[4]

भुक्ति मुक्ति प्रदान करने वाले व्रतों में हस्त तथा पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त रविवार के दिन 'सर्वौषधि' से स्नान करना चाहिए।

1-अग्निपुराण, 17/1

2- वही, 151/3

3- यजनं याजनं दानं वेदाद्यध्यापन क्रिया
प्रतिग्रहं चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत। –151/6

4- अग्निपुराण 195/1

तृतीय अध्याय

आलोच्य पुराणों में व्रत

तृतीय अध्याय

आलोच्य पुराणों में व्रत

व्रतों के प्रभाव से आत्मा शुद्ध होती है। संकल्प शक्ति बढ़ती है। बुद्धि, विवेक एवं ज्ञानतन्तु विकसित होते हैं। शरीर के अन्तस्थल में परमात्मा के प्रति श्रद्धा और तल्लीनता का संचार होता है। मनुष्य जीवन को सफल करने में व्रत की बड़ी महिमा मानी गयी है। 'देवल' का कथन है कि व्रत और उपवास के नियम पालन से शरीर को तपाना ही तप है। व्रत अनेक हैं, यहाँ उनका उल्लेख किया जा रहा है। पुराणों में व्रतों के विविध प्रकार हैं तथा उनके करने की भी पृथक-पृथक पद्धति है। यहाँ पर आलोच्य पुराण (अग्नि एवं नारदीय पुराण) का आधार लेकर व्रतों की सूची प्रस्तुत की जा रही है, साथ ही इन पुराणों में प्रतिपा - दित व्रतों का तुलनात्मक अध्ययन भी यथा सम्भव किया जायेगा।

नारदीय पुराण में व्रत-सूची —

नारदीय पुराण में व्रतों की संख्या लगभग 25 है, जिसमें सर्वप्रथम मार्गशीर्ष से कार्तिक मास पर्यन्त उद्यापन के साथ शुक्लपक्ष की द्वादशी व्रत का वर्णन है। तत्पश्चात् मार्गशीर्ष पूर्णिमा से प्रारम्भ होने वाले लक्ष्मी नारायण-व्रत की उद्यापन सहित विधि और महिमा का वर्णन विहित है। व्रतों की सूची निम्न तालिका से ज्ञात किया जा सकता है —

(1) मार्गशीर्ष से लेकर कार्तिक मास पर्यन्त 12 महीने उद्यापनसहित शुक्लपक्ष द्वादशी व्रत का वर्णन है।

(2) मार्गशीर्ष-पूर्णिमा से आरम्भ होने वाले लक्ष्मी-नारायण व्रत का उद्यापन सहित विधि और महिमा।

(3)विष्णुमन्दिर में ध्वजारोपण व्रत की विधि और महिमा।

(4)हरिपंचक व्रत की विधि और माहात्म्य।

(5)मासोपवास व्रत की विधि और महिमा

(6)एकादशी व्रत की विधि और महिमा।

(7)बारह मासों की प्रतिपदा के व्रत एवं आवश्यक कृत्यों का वर्णन

(8)बारह मासों के द्वितीया सम्बन्धी व्रत।

(9)बारह मासों के तृतीया सम्बन्धी व्रत।

(10)चतुर्थी व्रत।

(11)पंचमी तिथियों के व्रत।

(12)षष्ठी व्रत।

(13)बारह मासों के सप्तमी व्रत।

(14)अष्टमी व्रत।

(15)नवमी व्रत की विधि

(16)दशमी व्रत का विधान

(17)एकादशी व्रत।

(18)द्वादशी व्रत।

(19)त्रयोदशी व्रत।

(20)चतुर्दशी व्रत।

(21)बारहों मास के पूर्णिमा व्रत।

(22)अमावस्या व्रत एवं सत्कर्म।

(23)अशून्यशयन व्रत।

इस प्रकार बारहों महीने के सभी तिथियों के अन्तर्गत कई प्रकार के व्रतों के भेद निरूपित हैं —

(1)प्रतिपद व्रत में

(क)वैश्वानरव्रत (ख)विद्याव्रत(ग)तिलकव्रत (घ) श्रावण शुक्ल प्रतिपद में रोटक व्रत(ङ)मौनव्रत (च)अशोकव्रत (छ)नवरात्र व्रत(ज)धनव्रत है।

(2)द्वितीया व्रत में — बालेन्दु व्रत का नेम व्रत गण्य है।

(3)तृतीया व्रत में —

(क) अक्षय तृतीया व्रत (ख) रम्भा तृतीया (ग)स्वर्ण गौरी व्रत (घ)हारितालिका व्रत (ङ)बृहद् गौरी व्रत (च) विष्णु गौरी व्रत (छ)हर गौरी व्रत (ज)ब्रह्मगौरी व्रत (झ)कुल सौभाग्यदा तृतीया व्रत माने जाते हैं।

(4)चतुर्थी व्रत में —

(क)सतीव्रत (ख) कल्याणकारी व्रत (ग)बहुला गणेश व्रत(घ)सिद्धि विनायक व्रत (ङ)करवा चौथ व्रत(च)वर व्रत(छ)संकष्ट व्रत(ज)उत्तम गौरी व्रत (झ)दुण्ढिराजव्रत आदि की गणना की गयी है।

(5)पंचमी व्रत में —

(क)श्री पंचमी व्रत (ख)पृथ्वी व्रत, शान्तिव्रत(ग)चान्द्रव्रत (घ)हयग्रीव व्रत(ङ)अन्न व्रत (च)उपांगललिता व्रत(छ)कार्तिक शुक्ला पंचमी में जयाव्रत आदि हैं।

(6) षष्ठी व्रतों के भेद — चैत्र शुक्ला षष्ठी को कुमार (कार्तिकेय) व्रत होता है। इसी प्रकार स्कन्दव्रत, ललिता व्रत, कपिला षष्ठी व्रत, कात्यायनी व्रत, वरुण षष्ठी व्रत की गणना है।

(7) सप्तमी तिथियों के व्रतों के भेद — गंगा व्रत, कमल व्रत, निम्ब सप्तमीव्रत शर्करा सप्तमी व्रत, श्रावण शुक्ल को अव्यंगव्रत, आमुक्ताभरण व्रत, शुभ सप्तमी व्रत, शाक सप्तमी व्रत, मित्र व्रत, मार्तण्ड व्रत, सर्वाप्ति व्रत, अचला व्रत, पुत्र दायक व्रत, अर्कपुट व्रत आदि गण्य हैं।

(8) अष्टमी व्रतों की गणना —

चैत्र शुक्ला अष्टमी को महाष्टमी व्रत कहा जाता है। इसके पश्चात् अपराजिता व्रत, दशाफल व्रत, कृष्ण जन्माष्टमी व्रत, राधा व्रत, दूर्वाष्टमीव्रत कलाष्टमी व्रत, आश्विन शुक्ला महाष्टमी व्रत, गोपाष्टमी व्रत, अनघाष्टमी व्रत आदि व्रतों की गणना की गयी है।

(9) नवमी व्रतों के भेद — रामनवमी व्रत, ज्येष्ठ शुक्ला को उमाव्रत, कौमारी - व्रत, भाद्रपद नवमी को नन्दा नवमी व्रत, अक्षयनवमी व्रत, नन्दिनी नवमी व्रत, महानन्दा व्रत, आनन्दा नवमी व्रत आदि हैं।

(10) दशमी व्रतों के भेद :— दशहरा व्रत, श्रावण शुक्ला को व्रतव्रत, दशावतार व्रत, विजया दशमी व्रत, कार्तिक शुक्ला को सार्वभौम व्रत, आरोग्य व्रत आदि दृष्टव्य हैं।

(11) एकादशी व्रतों की गणना :— चैत्र शुक्ला को कामदा एकादशी व्रत, वरूथनी व्रत, मोहनी व्रत, अपरा, ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को निर्जला, योगिनी व्रत, शयनी व्रत, कामिका व्रत, पुत्रदाव्रत, अजा व्रत, पद्माव्रत, इन्दिराव्रत, पापांकुशाव्रत

रमा एकादशी व्रत, कार्तिक शुक्ला को प्रबोधिनी व्रत, उत्पन्न व्रत, मोक्षदा व्रत, सकल व्रत, पुत्रदाव्रत, माघकृष्णा को षड्तिला व्रत, जया व्रत, विजया एका - दशी व्रत, आमलकी व्रत, पापमोचनी व्रतों की गणना की गयी है जो एक वर्ष में 24 एकादशी के नाम से ये व्रत विख्यात हैं। इन व्रतों की संख्या सभी व्रतों से अधिक है।

(12) द्वादशी व्रतों की गणना :-

चैत्र शुक्ला को मदन व्रत, भर्तृद्वादशी व्रत, कार्तिक शुक्ल को गो- वत्स द्वादशी व्रत, साध्यव्रत, द्वादशादित्य व्रत, अखण्ड व्रत, पौष कृष्ण को रूप व्रत आदि हैं।

(13) त्रयोदशी व्रतों के भेद :-

चैत्र कृष्णपक्ष को महावारुणी व्रत, वैशाख शुक्ला को श्री नृसिंह व्रत [illegible] दौर्भाग्य शमन व्रत, गोत्रिरात्र व्रत, माघस्नानव्रत धनद व्रत आदि बताये गये हैं।

(14) चतुर्दशी व्रतों के प्रकार

चैत्र शुक्ला को दमनक व्रत, वैशाख शुक्ला को श्री नृसिंह व्रत, लिंग व्रत, रूद्रव्रत, भाद्रपद, शुक्ल को अनन्त व्रत, पाशुपत व्रत, ब्रह्मकूर्च व्रत, पाषाण व्रत, विरूपाक्ष व्रत, फाल्गुण कृष्णा को शिवरात्रि व्रत आदि की गणना की गयी है।

(15) पूर्णिमा व्रतों की गणना :-

वैशाख की पूर्णिमा को धर्मराज व्रत, ज्येष्ठ पूर्णिमा को वटसावित्री व्रत, गोपयव्रत, श्रावणमास की पूर्णिमा को उपाकर्म व्रत, उमामहेश्वर व्रत, आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को जागर व्रत, दरिद्रनाशक व्रत, फाल्गुन पूर्णिमा को कामदेव

बाह व्रत आदि की गणना की जाती है।

(16)अमावस्या व्रत के भेद :—

ज्येष्ठ अमावस्या को ब्रह्म सावित्री व्रत, सोमवती अमावस्या व्रत आदि बताये गये हैं।

(17)अशून्यशयन व्रत श्रावण मास की द्वितीया को किया जाता है। इसमें चार पारण करने का विधान है।

(18)चातुर्मास्य व्रत — इस व्रत में केवल कृत व्रत रहकर आंवले से स्नान का विधान बताया गया है।

(19)कृच्छव्रत —

इस व्रत में एक दिन अथवा तीन रात्रि तक या दश दिन या पन्द्रह दिन अथवा एक माह का उपवास रहा जाता है। इसके भेद नक्तव्रत, एक भुक्त और अयाचित व्रत कहे गये हैं।

इन व्रतों के अतिरिक्त गंगार्चन व्रत भी विधि विधान से वर्णित है। इस व्रत में प्रत्येक मास की पूर्णिमा तथा अमावस्या को प्रातःकाल गंगा के पूजन का विधान है। इस प्रकार विविध तिथियों को निमित्त मानकर विविध व्रतों का विधान मानव जीवन के दैनिक शुद्धि का सरलतम मार्ग है, किन्तु कुछ ऐसे महत्व-पूर्ण व्रत हैं जिसको शायद ही मानव को अपने जीवन में उपयोग करने का अवसर प्राप्त होता है। सत्य का पालन करना, सत्य वचन बोलना और उसे व्यवहार में उतारना मनुष्य के लिए महान दुष्कर कार्य है। प्रायः सभी वेदों, स्मृतियों एवं पुराणों

आदि में सत्य की महिमा का असीम वर्णन है। सत्य को ही नारायण का स्व - रूप कहा गया है।

सत्य को ही आधार मानकर सत्यनारायण व्रत की कथा सामान्य मनुष्यों में उपादेय मानी गयी है। "सत्यान्नास्ति परोधर्मः" 'सत्यमेव जयते' आदि निश्चित रूप से मानव को चैतन्यता से जागृत करते चले आ रहे हैं। महाराजा हरिश्चन्द्र को सत्य पालन करने पर ही सत्य हरिश्चन्द्र कहा गया। युधिष्ठिर आदि की कथा भी इस विषय में प्रख्यात है।

अहिंसा व्रत भी बड़ा कठोर एवं दुष्कर व्रत है। मन, वाणी और कर्म से करना ही वास्तविक अहिंसा का स्वरूप कहा जा सकता है। इसी प्रकार मौन व्रत आदि भी मानव जीवन के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुए हैं, अतः व्रतों के विधान में इन सत्य, अहिंसा एवं मौन व्रतों का भी पालन अनिवार्य रूप से करने पर व्रतों के फलों की सीमा विवर्धित की जा सकती है।

अग्निपुराण में व्रत सूची

प्रतिपद व्रत से आरम्भ होकर सामान्य व्रत पर्यन्त इस पुराण में लगभग 30 व्रतों का विधान एवं महत्व मार्मिक वर्णन से परिपूर्ण है। इसका विवरण इस प्रकार हम जान सकते हैं —

(1) व्रत परिभाषा
(2) प्रतिपदा व्रत
(3) द्वितीया व्रत
(4) तृतीया व्रत
(5) चतुर्थी व्रत
(6) पंचमी व्रत
(7) षष्ठी व्रत
(8) सप्तमी व्रत
(9) अष्टमी व्रत
(10) नवमी व्रत

(11) दशमी व्रत	(21) मासव्रत
(12) एकादशी व्रत	(22) दीपदान व्रत
(13) द्वादशी व्रत	(23) मासोपवास व्रत
(14) त्रयोदशी व्रत	(24) भीष्मपंचक व्रत
(15) चतुर्दशी व्रत	(25) कौमुद व्रत
(16) पूर्णिमा व्रत	(26) सामान्यव्रत
(17) शिवरात्रि व्रत	(27) श्रवणाद्वादशी व्रत
(18) वारव्रत	(28) अखण्ड द्वादशी व्रत
(19) नक्षत्र व्रत	(29) जयन्त्यष्टमी व्रत
(20) दिवस व्रत	(30) ऋतु व्रत

1 से 23 व्रतों का विवरण 175 अध्याय से 200 अध्याय पर्यन्त प्राप्त होता है। 204 अध्याय में मासोपवास व्रत, 205 में भीष्मपंचक व्रत, 206 में कौमुद व्रत तथा 208 अध्याय में सामान्य व्रत का परिचय प्राप्त होता है।

इन व्रतों का विधान स्त्री पुरुष दोनों के लिए बताया गया है। तिथि, वार, नक्षत्र, मास आदि व्रतों का विधान यथोचित यथाकाल के अनुसार वर्णित है। जैसा कि अग्नि ने स्वयं कहा है —

"तिथिवारर्क्ष दिवसमासत्वब्दार्क संक्रमे।
नृस्त्री व्रतादि वक्ष्यामि वसिष्ठ शृणु तत्क्रमात्।"[1]

1- अग्निपुराण, 175/1

इस प्रकार अग्निपुराण में नारदीय पुराण की भांति व्रतों के भेद का निरूपण नहीं किया गया है। प्रायः छोटे-छोटे अध्यायों में ही व्रतों का संक्षिप्त विधान है। प्रतिपदा व्रत का वर्णन केवल 6 पद्य में ही किया गया है। पंचमी व्रत का वर्णन केवल 2 पद्य में ही है। अतः व्रतों का भेद ग्रन्थानुसार संक्षेप में दिया गया है—

(1) प्रतिपदा व्रत को धन्य व्रत कहा गया है।

(2) द्वितीया व्रत को अशून्यशयन व्रत के नाम से अभिहित किया गया है। विष्णु व्रत भी यह है।

(3) तृतीया के भेद में मूल गौरी व्रत सौभाग्य व्रत दमनक आदि व्रत आते हैं।

(4) चतुर्थी व्रत के भेद न के बराबर हैं।

(5) पंचमी व्रत केवल नाग पंचमी के नाम से इंगित है।

(6) षष्ठी व्रत स्कन्द षष्ठी एवं कृष्ण षष्ठी के भेद से अभिहित है।

(7) सप्तमी व्रत विशोका, सर्वावाप्ति नन्दा, अपराजिता के नाम से विख्यात है।

'(8) अष्टमी व्रतों में जयन्त्यष्टमी, श्रीकृष्णाष्टमी, बुधाष्टमी आदि व्रतों की गणना की गयी है।

(9) नवमी व्रतों में पिष्टका नवमी व्रत, अर्चना सर्वदा नवमी व्रतों का विधान है।

(10) दशमी व्रत का एक पद्य मात्र में वर्णन है।

(11) एकादशी व्रत का वर्णन भी 9 श्लोकों में किया गया है। इसमें विजया तिथि के आने से विजया एकादशी का संकेत मात्र है।

(12) द्वादशी व्रत के प्रकार से मदन द्वादशी, माघशुक्ल की भीम द्वादशी, फाल्गुन में गोविन्द द्वादशी, आश्विन में विशोक द्वादशी एवं भाद्रपद में गोवत्स द्वादशी आदि है।

(13) त्रयोदशी व्रत में अनंगत्रयोदशी का केवल उल्लेख है।

(14) चतुर्दशी व्रत को शिव चतुर्दशी के नाम से कहा गया है। इसे शिवरात्रि व्रत भी कहते हैं।

(15) पूर्णिमा व्रत को अशोक पूर्णिमा, वट सावित्री व्रत के नाम से पुकारा जाता है।

(16) वार व्रत में सभी वारों में तत्तद वाराधिपति की पूजा का विधान है।

(17) नक्षत्र व्रत के विषय में तत्तद नक्षत्रों में हरि के सर्वांग पूजन का विधि बताई गयी है।

(18) मास व्रत में चातुर्मास्य व्रत का निर्देश है और सभी मासों में वस्तुओं के त्याग पर बल दिया गया है। जैसा कि निम्न पद्य से ज्ञात होता है —

"वैशाखे पुष्पलवणं त्यक्त्वा गोदो नृपो भवेत्।
गोदो मासोपवासी च भीमव्रत करो हरिः ॥[1]

केवल उनका संक्षेप में विधान एवं महत्व निर्दिष्ट है।

व्रतों का वर्गीकरण

नारदीय पुराण में व्रतों का वर्गीकरण —

व्रतों का वर्गीकरण देवताओं की अर्चना पूजन के अनुक्रम हेतु किया जा सकता है। कामनाओं को प्रदान करने वाले देवों की प्रमुखता को उद्देश्य मान कर तन्निमित्त व्रतों का अभिधान है। इन व्रतों के अधिष्ठाता देव तथा देवियाँ हैं, जो मानवीय भावनाओं से आवृत्त होकर भावनानुसार उनकी कामनाओं की पूर्ति करने

1- अग्निपुराण, 198/2

में सक्षम होते हैं। सर्वप्रथम इन सभी व्रतों में प्रायः विष्णु की प्रधानता दृष्टिगोचर हो रही है, किन्तु तत्तद देव और देवियाँ उन्हीं के स्वरूप हैं अतएव उनमें तादात्म्य स्वरूप अभेद की प्रतिष्ठा करके अंगांगी रूप में वर्णन किया गया है।

इस प्रकार विष्णु शिव, शक्ति स्वरूप दुर्गा, शिवा, कात्यायनी तथा अन्य देवी तथा देवों के भेद से व्रतों का वर्गीकरण कर सकते हैं।

(1)विष्णुपरक व्रत :-

(1)मार्गशीर्ष से आरम्भ होकर एक वर्ष तक द्वादशी व्रत, इसी में वामन द्वादशी का भी नाम अभिहित है -

"वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यस्थो वामनः सदा।
वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमो नमः ॥[1]

इसमें गोविन्द, कृष्ण लक्ष्मी आदि के साथ सभी सांग निरूपित हैं।

(2)मार्गशीर्ष पूर्णिमा व्रत

(3)ध्वजारोपण व्रत

(4)हरिपंचक व्रत में उपवास का विशेष महत्व है।

"पंचरात्रं निराहारो ह्यद्य प्रभृति केशव।
त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन ममाभीष्टप्रदोभव॥[2]

(5)मासोपवास व्रत, (6)प्रतिपद व्रत में विद्याव्रत, तिलक, रोटक व्रत, धन व्रत(7)अक्षय तृतीया व्रत। रम्भा तृतीया मित्र व्रत, जन्माष्टमी व्रत, रामनवमी व्रत

1- नारदीयपुराण ।7/6। पूर्वभाग

2- नारदीयपुराण 21/10 पूर्वभाग

दशावतार व्रत, एकादशी व्रत, द्वादशी व्रत, गोभिराम व्रत, गोपद्मव्रत, कोजागर व्रत, अशून्य शयन व्रत, चातुर्मास्य व्रत, कृच्छ व्रत आदि में विष्णुपूजा का विधान निहित है।

(2) शिवपरक व्रतों का वर्गीकरण —

इसी तृतीया तिथि में होने वाले व्रतों में शिव और गौरी के पूजन का विधान है। अतः इन व्रतों में चैत्र शुक्ला तृतीया, हरितालिका व्रत, मार्गशीर्ष शुक्ला को हरगौरी व्रत, पंचमी शुक्ला में शुभाशुभ निदर्शन व्रत, अन्न व्रत, ज्येष्ठमास का कृष्णपक्ष को अष्टमी को त्रिलोचनाष्टमी दूर्वाष्टमी, आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी व्रत, शिव अलौकिक व्रत, चैत्र शुक्ला चतुर्दशी व्रत, रूद्रव्रत, पाशुपत व्रत, ब्रह्मकूर्च व्रत, मार्गशीर्ष शुक्ला की चतुर्दशी व्रत, विरूपाक्ष व्रत, फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को शिवरात्रि व्रत भाद्रपद पूर्णिमा को उमा महेश्वर व्रत, आदि भगवान शिव को उद्देश्य करके पूजा का विधान अभिहित है।

(3) गणेश व्रतों का वर्गीकरण :—

चैत्र मास की शुक्ला की चतुर्थी व्रत, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ मास को कल्याणकारी व्रत, भाद्रपद चतुर्थी को बहुला गणेश व्रत, सिद्धिविनायक व्रत, कर्का चतुर्थी को करवाचौथ व्रत, माघ कृष्ण चतुर्थी को संकष्ट व्रत, फाल्गुन मास की चतुर्थी को ढुण्ढिराज व्रत आदि का विधान किया गया है। संकष्ट व्रत में अर्घ्यदान का विशेष महत्व है —

"गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणी पते।

गृहाणार्घ्यमयादत्तं गणेश प्रतिरूपक।।[1]

कार्तिकेय व्रत :-

भगवान कार्तिकेय षडानन की पूजा एवं उपासना का विधान षष्ठी तिथि में विशेषरूप से वर्णित है। चैत्र शुक्ला षष्ठी को कुमार व्रत का निर्देश है। आषाढ़ षष्ठी को स्कन्द व्रत, श्रावण षष्ठी को अभीष्ट फल व्रत, कार्तिक षष्ठी को अनुपम व्रत, मार्गशीर्ष षष्ठी को चम्पा षष्ठी व्रत आदि का निरूपण किया गया है।

सौर्यव्रत :-

सूर्य सम्बद्ध व्रतों का निरूपण सम्पूर्ण माह के विशेष तिथियों में किया गया है। पौष शुक्ला प्रतिपद को एकभुक्त व्रत का विधान है। माघ शुक्ल द्वितीया में सूर्यव्रत की विधि है। भाद्रपद शुक्ल षष्ठी को कपिला षष्ठ व्रत, चैत्र शुक्ल सप्तमी को पुण्यसौख्य व्रत, वैशाख शुक्ल सप्तमी को कमल व्रत, ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी तथा आषाढ़ शुक्ल सप्तमी को विवस्वान व्रत, श्रावण शुक्ल सप्तमी को अव्यंग व्रत पौष शुक्ल सप्तमी में अभय व्रत या मार्तण्ड व्रत, माघमास कृष्ण सप्तमी को 'सर्वाप्ति व्रत' माघ शुक्ल सप्तमी को 'रथ सप्तमी व्रत' फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को 'अर्कपुट व्रत' मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी को 'द्वादशादित्य व्रत' का विधान है। द्वादशादित्य के नाम इस प्रकार हैं —

1- नारदीयपुराण ।।3/77पूर्वभाग

"धाता मित्रोऽर्यमा पूजा शक्रो शी वरुणो भगः।

त्वष्टा विवस्वान सविता विष्णु द्वादश ईरितः॥[1]

इस प्रकार व्रतों में सूर्य देव की प्रत्यक्ष महिमा बताई गयी है।

ब्राह्म व्रत :—

ब्रह्मा की पूजा का उद्देश्य लेकर कुछ-कुछ तिथियों में व्रत का विधान संक्षेप में है, जैसे प्रतिपद चैत्र शुक्ला को विद्‌व्रत, चैत्र शुक्ल द्वितीया को ब्राह्म व्रत या नेम व्रत, श्रावण कृष्ण द्वितीया को अशून्यशयन व्रत, भाद्रपद द्वितीया को ब्रह्म व्रत आदि का संक्षेप में वर्णन है।

शाक्त व्रत :—

देवी की अनन्त शक्तियाँ हैं। उनकी कलाओं से सम्भूत शक्तियों की उपासना विभिन्न तिथियों में बताई गयी है। देवी की शक्तियों में मुख्यतः महाकाली महालक्ष्मी, महासरस्वती हैं जो दुर्गा की ही शक्ति मानी जाती है। इनके व्रतों में मुख्यतः नवरात्र व्रत है, जो चैत्र शुक्ल प्रतिपद से प्रारम्भ होता और नवमी पर्यन्त चलता है, अतः इसे - 'नवरात्र व्रत' कहते हैं। इस प्रकार चैत्र शुक्ला को सौभाग्य देने वाला 'गौरी व्रत' ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया को 'रम्भा व्रत' श्रावणी शुक्ल तृतीया को 'स्वर्ण गौरी व्रत' आश्विन शुक्ल तृतीया को 'विष्णु गौरी व्रत' ज्येष्ठ चतुर्थी को 'रम्भा व्रत' श्रावण शुक्ल तृतीया को 'स्वर्ण गौरी व्रत' आश्विन शुक्ल तृतीया को 'विष्णुगौरी व्रत' ज्येष्ठ चतुर्थी को 'सती व्रत' चैत्र शुक्ल पंचमी को 'पृथ्वीव्रत' श्रावण शुक्ल पंचमी को 'इन्द्राणी व्रत' आश्विन शुक्ल पंचमी में 'उपांगललिता व्रत'

1- नारदीयपु० 121/55

कार्तिक शुक्ल पंचमी को जया व्रत' भाद्रपद कृष्ण पक्ष की षष्ठी को 'ललिता व्रत' का विधान है। जैसी कि प्रार्थना है —

'गंगा द्वारे कुशावर्ते बिल्वके नील पर्वते।
स्नात्वा कनखले देवि हर लब्धवती पतिम्।
ललिते सुभगे देवि सुख सौभाग्यदायिनी।
अनन्तं देहि सौभाग्य मह्यं तुभ्यं नमो नमः ॥'[1]

इसके अतिरिक्त भाद्रपद शुक्लपक्ष की षष्ठी में 'चन्दनषष्ठी व्रत' आश्विन शुक्ल षष्ठी को 'कात्यायनी व्रत' चैत्र मास शुक्ल अष्टमी को 'महाष्टमी व्रत' भाद्रपद शुक्ल अष्टमी 'राधा व्रत' इस अष्टमी से प्रारम्भ होकर आश्विनकृष्ण अष्टमी तक 'महालक्ष्मी व्रत' का विधान है। आश्विन शुक्ल अष्टमी को 'महाष्टमी व्रत' कार्तिक कृष्ण अष्टमी में कर्काष्टमी व्रत' माघ मास कृष्ण अष्टमी में 'भद्रकाली अष्टमी व्रत' फाल्गुन अष्टमी को भीमाष्टमी व्रतों का विधान है।

इसी प्रकार नवमी में चण्डिका पूजन व्रत, उमाव्रत, इन्द्राणी व्रत नन्दा नवमी व्रत, नन्दिनी नवमी व्रत, अन्नदानवमी व्रत, महानन्दव्रत प्रमुख हैं।

दशमी तिथि में गंगा दशहरा प्रमुख है। ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को वट सावित्री व्रत, आश्विनी शुक्ल पूर्णिमा को जागर व्रत आदि वर्णित है।

इसी प्रकार देवों और देवियों की पूजा के निमित्त अन्य व्रतों का विधान है, जैसे मार्गशीर्ष शुक्ल व्रत को प्रतिपद को धन व्रत' में अग्निपूजा, चैत्र शुक्ल पंचमी को 'मत्स्य जयन्ती व्रत' में मत्स्यावतार की पूजा, वैशाख शुक्ल पंचमी को 'शेषनाग पूजा' आषाढ़ शुक्ल पंचमी को 'दिग्पाल पूजा' श्रावण शुक्ल पंचमी का

1- नारदीयपु० पूर्व० ।।5/13/15

को नागपचमी पूजा' भाद्रपद की पचमी को भी नागपूजा का विधान है।

माघ शुक्ल षष्ठी में वरुण षष्ठी को वरुण की पूजा करनी चाहिए कार्तिक शुक्ल अष्टमी को गोपाष्टमी व्रत का विधान है, इसमें गायो की पूजा की जाती है। मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी को काल भैरवाष्टमी व्रत का विधान है।

भाद्रपद शुक्ल दशमी को 'दशावतार ' व्रत में दसों अवतारो की पूजा का विधान है। माघ शुक्ल दशमी को आंगिरस व्रत में आत्मा, आयु, मन, प्राण आदि दश अंगिराओं के पूजन की विधि है। फाल्गुन शुक्ल दशमी को चतुर्दश यम व्रत भाद्र शुक्ल त्रयोदशी को गोभिराम व्रत में गौओं की पूजा का विशेष विधान है।

इसी प्रकार शुक्ल पक्ष त्रयोदशी में प्रत्येक मास के कुबेर पूजा का विधान है, अतः व्रतों का विधान प्रायः सभी देवों तथा देवताओं के लिए तिथियों में विशेष रूप से विहित है।

गंगार्चन व्रत :-

नारदीय पुराण 'गंगार्चन व्रत' की विधि विशेष रूप से निर्दिष्ट करता है। एक वर्ष पर्यन्त गंगा के अर्चन में और- पुआ, लड्डू, सुवर्ण, चांदी, चन्दन अगरू, कपूर आदि उपकरणों का उपयोग करता हुआ प्रत्येक मास की पूर्णिमा और अमावस्या को प्रातःकाल एकाग्रचित्त होकर गंगा की पूजा जो मनुष्य करता है: उसे गंगा देवी साक्षात् दर्शन देकर के उसकी समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देती हैं।

इस व्रत को सांवत्सर व्रत के नाम से भी अभिहित किया गया है, जिसमें भगवान लक्ष्मीपति की सन्तुष्टि और परिणाम स्वरूप मोक्षप्रद भी बताया गया है।

नक्तव्रत –

गंगार्चन व्रत के प्रसंग में नक्त व्रत का भी विधान विहित है। इस व्रत में रात को भोजन करने वाले नक्तव्रती को स्नान, सविष्य भोजन, सत्यभाषण, स्वल्पा - हार, अग्निहोम तथा भूमि शयन ये छः कर्म करने चाहिए। विशेष रूप से माघ मास में गंगा तट पर शिव के पूजन का भी विधान है। दोनों पक्षों की चतुर्दशी को उप- वास करके पूर्णिमा के दिन शुद्ध होकर गंगा जल से तथा दूध, दही आदि पदार्थों से भगवान शिव की अर्चना करनी चाहिए।

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को भी दूध भात का रात में भोजन करके पूर्णिमा को उपवास व्रत का संकल्प लेकर रात में जागरण करना चाहिए। इसमें भी शिव पूजा की विधि है।

गंगा दशहरा :–

गंगा दशहरा में दस पदार्थों के द्वारा गंगा पूजन की विधि वर्णित है। इसमें ज्येष्ठ मास शुक्ल दशमी को हस्त नक्षत्र के योग होने पर रात्रि में जाग - रण करके दस प्रकार के गन्ध, पुष्प, दीप, ताम्बूल, नैवेद्य आदि से गंगा की पूजा करनी चाहिए। दश बार स्नान करके दश बार काला तिल और घी छोड़ना चाहिए।

उनके स्वरूप का ध्यान करता हुआ व्रती, प्रतिमा का पूजन विधि विधान से करे। पूजा मंत्र में 'ॐ नमो दशहरायै नारायण्यै गंगायै नमः' इस मन्त्र का पांच हजार बार जप करे।

भगवान नारायण, शिव, ब्रह्मा, सूर्य आदि देवों की विधिपूर्वक स्थापना के साथ पूजा करनी चाहिए, तत्पश्चात् गंगा की प्रार्थना भक्तिपूर्वक करनी चाहिए।

"त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः प्रभुः
गंगे त्वं परमात्मा च शिव तुभ्यं नमो नमः॥[1]

इस प्रकार गंगा को मूल प्रकृति नारयण एवं शिव के रूप में चित्रित किया गया है।

अग्निपुराण में केवल गंगा माहात्म्य का 6 पद्यों में संकेत किया गया है। इसमें गंगा के अर्चन की विधि नहीं बताई गयी है, केवल गंगा के एक मास सेवन का माहात्म्य है।

"गंगा मासं तु संसेव्य सर्वयज्ञफलं लभेत्।
सकलाघहरी देवी स्वर्ग लोक प्रदायिनी॥[2]

इस प्रकार गंगा को समस्त यज्ञों की फलदात्री, समस्त पापों का नाश करने वाली एवं स्वर्ग लोक प्रदात्री कहा गया है।

अग्निपुराण में व्रतों का वर्गीकरण :-

अग्निपुराण में नारदीय पुराण की भांति व्रतों के नाम निर्दिष्ट नहीं है, केवल यत्र-तत्र देवों के नामों का संकेत मिलता है। अधिकतर प्रायः विष्णु की

1- नारदीयपुराण, 43/84
2- अग्निपुराण, 110/

प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। इसमें भी हम विष्णु शिव, शाक्त आदि के द्वारा व्रतों का वर्गीकरण कर सकते हैं —

विष्णुपरक व्रत :—

चैत्र मास से आरम्भ करके फाल्गुन तक के अष्टमी व्रत में कृष्ण की पूजा का वर्णन है। इसी में जन्माष्टमी का वर्णन है —

"कृष्णो जातो यतस्तस्यां जयन्ती स्यात्ततोऽष्टमी
सप्तजन्म कृतात्पापान्मुच्यते चोपवासतः ॥[1]

भाद्रपद की अष्टमीमें अर्धरात्रि के समय कृष्ण अवतरित हुए थे। द्वादशी व्रत में मदन द्वादशी गोवत्स द्वादशी, विशोक द्वादशी, कान्तिव्रत सुजन्म द्वादशी, पितृविसर्जनी अमावस्या आदि सभी में विष्णु की पूजा की जाती है।

शिवपरक व्रतों का वर्गीकरण :—

त्रयोदशी में शिव की पूजा का विधान है। इसमें अनंग त्रयोदशी, काम त्रयोदशी आदि हैं। कार्तिक की चतुर्दशी में निराहार रहकर शिव की पूजा करनी चाहिए —

"वर्षं भोगधनायुष्मान्कुर्वन्शिवचतुर्दशीम्।"[2]

एक वर्ष तक शिव चतुर्दशी व्रत करने से भोगधन आयु की प्राप्ति होती है। इसी में शिवरात्रि व्रत का विधान भी बताया गया है।

1- अग्निपुराण, 183/ 2

2- वही, 192/2

गणेशपरक व्रत :-

चतुर्थी तिथि में गणेश की पूजा का विधान है। फाल्गुन की चतुर्थी का नाम अविघ्ना है। चतुर्थी में गणपति की पूजा करने से सभी बाधायें दूर हो जाती है।

सौर्यव्रत :-

अग्निपुराण में षष्ठी एवं सप्तमी में सूर्य की पूजा का वर्णन है। कार्तिक, भादों, मार्गशीर्ष में स्कन्द भगवान की पूजा का विधान है। भादों में अक्षय स्कन्द षष्ठी वर्णित है।

"कृष्णपक्षे तु माघस्य सर्वावाप्तिस्तु सप्तमी।"[1]

माघकृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य की पूजा करने से सभी अभिलाषायें पूर्ण हो जाती है। इसी प्रकार माघ, भादों पूष सभी में सूर्य की पूजा की जाती है। फाल्गुन की सप्तमी का नाम नन्दा तथा मार्गशीर्ष की सप्तमी का नाम अपराजिता है।

ब्राह्मव्रत :-

इसमें प्रतिपदा व्रत में ब्रह्मा की पूजा का वर्णन है क्योंकि प्रतिपदा ब्रह्मा की तिथि मानी है। आश्विन, कार्तिक, चैत्र सभी में ब्रह्मा की पूजा की जाती है। मार्गशीर्ष की प्रतिपदा में धन्य व्रत किया जाता है।

शाक्तपरक व्रत :-

देवी के अनेक रूप है। सभी शक्तियों में दुर्गा का रूप माना गया है। ललिता व्रत, मूल गौरी व्रत, दमनक तृतीया, आत्मतृतीया आदि व्रतों में गौरी

1- अग्निपुराण, 182/3

के पूजन का विशेष रूप से विधान निहित है —

"गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्तिः सरस्वती।

वैष्णवी लक्ष्मीः प्रकृतिः शिवा नारायणी क्रमात्।"[1]

नवमी व्रतों में गौरी व्रत, पिष्टका व्रत आदि का विधान है जिसमें नव दुर्गाओं की पूजा विधि है। सभी नवमी में श्रेष्ठतम नवमी व्रत है जिसे अघार्दना कहते हैं। इसी में नवरात्र व्रत भी किया जाता है।

सर्पपरक —

पंचमी में श्रावण मास से लेकर कार्तिक तक वासुकि, तक्षक, कालीय और धनंजय सर्पों की पूजा का वर्णन है।

दिवसव्रत, मास व्रत, ऋतु व्रत, भीष्मपंचक सभी विष्णुपरक हैं। इसी प्रकार विष्णु, शिव, गौरी, गणेश, कार्तिकेय, सूर्य आदि को उद्देश्य मानकर तत्तद व्रतों का विधान है।

समीक्षा :—

नारदीय पुराण एवं अग्निपुराण दोनों व्रतों की विविध दैनिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करते हैं। इन व्रतों के विधानानुसार सीमित अनुष्ठान करने पर मानव की मानसिक एवं शारीरिक स्थिति निश्चित रूप से सन्तुलित हो सकती है। इसी दृष्टिकोण को अभिलाषित करके मानो महर्षियों ने व्रतों का दैनिक तिथियों में विधान करके मानवीय गुणों को विकसित होने का साधन उपस्थित कर दिया है।

1- अग्निपुराण, 178/28

यद्यपि अग्निपुराण में व्रतों के सन्दर्भ में अधिक संख्याओं में व्रतों की गणना की है, किन्तु नारदीय पुराण व्रतों की विविध धाराओं का सम्यक् विश्लेषण करता है। प्रत्येक तिथियों के व्रतों के अनेकों भेदों का निरूपण करता हुआ उसके विधान का भी प्रतिपादन करता है। एकादशी व्रत को सर्वश्रेष्ठ बताता हुआ नारदीय पुराण चौबीसों एकादशी में विविध प्रकार की पूजा कर विधान निर्दिष्ट करता है। इसके महत्व को बताते हुए राजा रुक्मांगद की रोचक कथा का सविस्तार वर्णन किया गया है एवं उसके व्रत के प्रभाव का भी निर्देशन किया है। यहाँ तक कि एकादशी व्रत के प्रभाव से रुक्मांगद राजा के राज्य में सभी का वैकुण्ठ प्रस्थान होने लगता है। यमराज का लोक शून्य हो जाता है और वे चिन्तित होकर ब्रह्मा के समीप अपना दुख सुनाने के लिए जाते हैं। एतदर्थ अनेकों प्रयत्न करने पर भी रुक्मांगद के समक्ष अधिक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं, किन्तु अन्त में रुक्मांगद विजयी होकर वरदान के भागी होते हैं।

नारदीय पुराण की एक विलक्षणता यह भी है कि वह गंगार्चन व्रत के एक वर्ष की विधि का सम्यक् विवेचन करता है, जो अग्निपुराण में किंचिद्मात्र निर्दिष्ट है। गंगा को अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। पृथ्वी पर स्थित होने से अथवा पृथुल जलराशि धारण करने से गंगा का नाम पृथ्वी है।

शिव कल्याणमय अमृत जल है अतएव गंगा को 'शिवामृता' भी कहा गया है। रजोगुण रहित निर्मल स्वरूप होने से गंगा को 'विरजा' नाम से अभिहित किया गया है। पर ऊपर 'स्वर्गलोक' और नीचे 'पाताल लोक' होने से 'परावर गता' नाम से भी विख्यात है। गंगा, शिवा, विष्णु रूपा एवं शिवदा है। सर्वदेव स्वरूपा है[2] इसका जल भेषज है। समस्त व्याधियों की अमोघ दवा है।

"नमः शिवायै गंगायै शिवदायै नमोऽस्तुते।
नमोऽस्तु विष्णु रूपिण्यै गंगायै ते नमो नमः।
सर्वदेव स्वरूपिण्यै नमो भेषज मूर्तये।
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठे नमोऽस्तुते॥[1]

इस प्रकार जीवनदायिनी गंगा का जल सत्यमेव 'औषधं जाह्नवी तोयं' के अनुसार स्नान पान के लिए सब प्रकार से श्रेयस्कर है। गंगा की महिमा की गाथा सचमुच में विश्व में विख्यात है। अतः नारदीय पुराण इस दृष्टि से अग्निपुराण से अपना कुछ अलग वैशिष्ट्य रखता है। अग्निपुराण में किसी न किसी व्रत का अल्प - मात्रा में वर्णन है, इसलिए दोनों की विशेषता कुछ भिन्न भी है।

1- नारदीय पुराण, 43/69-70

****

चतुर्थ अध्याय

विवेच्य पुराणों में व्रत तिथि एवं विधि

****

चतुर्थ अध्याय

विवेच्य पुराणों में व्रत तिथि एवं विधि

यद्यपि वेदव्यास ने अपने अष्टादश पुराणों में विविध व्रतों के सन्दर्भ में अपनी विशिष्ट विवेचना प्रस्तुत की है, यद्यपि भारतीय सांस्कृतिक जीवन में प्राचीनकाल से ही व्रतों एवं तीर्थों का महत्व रहा है परन्तु इस महामनीषी ने व्रतों की वास्तविक संरचना स्पष्ट की है। वैसे तो किसी न किसी रूप में प्रायः सभी पुराणों में व्रतों का वर्णन किया गया है, परन्तु नारदीय एवं अग्निपुराण में व्रतों की तिथि एवं उनकी विधि का विधान अत्यन्त विस्तार के साथ निर्णयात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इन दो पुराणों में व्रतों के समय एवं विधान का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी विशद रूप में हुआ है जो आधुनिक भारतीय मनीषा के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

तिथि एवं काल निर्णय :-

मनुष्यों के हित के लिए तपोधन महर्षियों ने अनेक साधन नियत किए हैं उनमें एक साधन व्रत भी है। सूर्योदय की तिथि यदि दोपहर तक न रहे तो वह खण्डा[1] होती है उसमें व्रत का आरम्भ एवं समाप्ति दोनों वर्जित हैं।

1- उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद् दिनमध्यगा।

सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भ समापनम्॥

(हेमाद्रिव्रत खण्ड सत्यव्रत)व्रतपरिचय, पृ0 7

सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त रहने वाली तिथि अखण्डा होती है[1] यदि गुरु एवं शुक्र अस्त न हुए हों तो उसमें व्रत का आरम्भ अच्छा है। व्रत सम्बन्धी कर्म के लिए शास्त्रों में जो समय नियत है उस समय यदि व्रत की तिथि हो तो उसी दिन उस तिथि के द्वारा व्रत सम्बन्धी कार्य उसी समय पर करना चाहिए।

'या तिथिर्ऋक्षसंयुता या च योगेन नारद
मुहूर्तत्रयमात्रापि सापि सर्वा प्रशस्यते॥'[2]

जो तिथि व्रत के लिए आवश्यक नक्षत्र एवं योग से युक्त हो वह यदि तीन मुहूर्त हो तो वह भी श्रेष्ठ होती है।

भारतवर्ष में दो प्रकार की तिथियाँ काम में आती हैं। सौर तिथि एवं चान्द्र तिथि। सभी धार्मिक कार्य चान्द्र तिथि में ही किये जाते हैं। प्रतिपदा, द्वितीया तृतीया आदि के नाम से जिनको हम पहिचानते हैं वे ही चान्द्र तिथियाँ हैं।

नारदीयपुराण में वार्षिक प्रतिपदा व्रत के कृत्य :-

इस व्रत को चैत्र शुक्ला प्रतिपद से आरम्भ करके फाल्गुन शुक्ल प्रतिपद पर्यन्त करना चाहिए। चैत्र में ब्रह्मा की पूजा के साथ सभी देवताओं की पूजा करनी चाहिए।

'दक्षिणां वेद विदुषे व्रतसंपूर्ति हेतवे।
एवं पूजा विशेषेण व्रतं स्यात्सौरिसत्क्रमम्॥'[3]

1- अखण्ड व्यापिमार्तण्डा यद्यखण्डा भवेत् तिथिः।
व्रत प्रारम्भणं तस्यां मनस्तगुरु शुक्रयुक्॥ — हेमाद्रिवृद्ध वासिष्ठ पृ0

2- व्रतपरिचय से, पृ0 7

3- नारदीयपुराण अध्याय 110/12

व्रत की पूजा के लिए वस्तु सहित दक्षिणा ब्राह्मण को देनी चाहिए इसे सौरि या विद्या व्रत कहते हैं।

वैशाख प्रतिपद में विष्णु पूजा करके ब्राह्मण को भोजन कराने का विधान है –

"देवोद्यानभवं हृद्यं करवीरं समर्चयेत।
रक्ततन्तुपरीधानं गंधधूपविलेपनैः ॥"[1]

ज्येष्ठमास में देव मन्दिर की वाटिका में कनेर वृक्ष की पूजा करें। वृक्ष में लाल डोरा लपेटकर गन्ध, चन्दन, धूप, चढ़ाकर सप्तधान्य के अंकुर, बिजौरा नींबू आदि से उसकी पूजा करे।

आषाढ़ शुक्ल प्रतिपद में ब्रह्मा तथा विष्णु की पूजा करके ब्राह्मण को भोजन कराने का विधान है।

श्रावण शुक्ल प्रतिपद में शिव की पूजा करनी चाहिए। इसे रोटक व्रत भी कहते हैं। इसका विधान साढ़े तीन मास तक करने का भी है। श्रावण के प्रथम सोम से लेकर कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी पर्यन्त बिल्वपत्र से भगवान शिव का पूजन करे एवं बांस के पात्र में सुवर्ण सहित देवप्रिय वाहन ब्राह्मण को दें।

'भाद्रशुक्ल प्रतिपादिव्रतं नाम्ना महत्तमम्।
व्रतं मौनाह्वयं केचित्प्राहुरत्र शिवोर्च्यते॥'[2]

1- नारदीयपुराण, 110/15

2- वही, 110/23

भाद्रपद शुक्ल प्रतिपद को महत्तम व्रत या मौन व्रत भी कहते हैं। इसमें मौन रहकर भगवान शंकर की पूजा का विधान है। अड़तालिस पुआ तैयार करके सोलह, ब्राह्मण को, सोलह देवता को तथा सोलह अपने उपयोग में लाने की विधि है। शिव की पूजा और धेनु का दान आचार्य को दें। इसे चौदह वर्ष तक करने की विधि है। इसी माह में नवरात्र व्रत भी प्रारम्भ होता है।

"आश्विन सितपक्षाद्यां कृत्वाशोकव्रतं नरः।
अशोको जायते विप्र धनधान्यसमन्वितः।[1]

आश्विन शुक्ल प्रतिपद को अशोक व्रत कहा गया है। इसमें अशोक वृक्ष की पूजा करनी चाहिए एवं धन धान्य ब्राह्मण को देना चाहिए। इसे बारह वर्ष पर्यन्त करने के बाद अशोक वृक्ष की सुवर्ण मूर्ति बनाकर गुरु को समर्पित करने का निर्देश है।

कार्तिक शुक्ल प्रतिपद में अन्नकूट के द्वारा गोवर्धन की पूजा का विधान है। इसमें सब प्रकार के पाक एवं गोरस का संग्रह करने का विधान है।

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपद को धन व्रत कहा गया है। रात्रि में विष्णु का पूजन औरहोम करके अग्निदेव की सुवर्णमयी प्रतिमा दो लाल वस्त्रों में आच्छादित कर ब्राह्मण को दान देनी चाहिए।

1- नारदीयपुराण 110/27

2- अथ मार्गसितादृयायां धनव्रतमनुत्तमम्।
नक्तं विष्णुवर्चनं होमं, तोजर्णो हुतभुक्तनुम्॥
रक्तवस्त्रयुगाच्छन्नां द्विजाय प्रतिपादयेत्॥ (नारदीपु0 110/38)

पौष शुक्ल प्रतिपद सूर्यदेव की पूजन की विधि है –

"माघशुक्लाद्यदिवसे वाह्नि आवाम्महेश्वरम्।" [1]

माघ शुक्ल प्रतिपद को महेश्वर कीपूजा करनी चाहिए। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपद को भी भगवान शिव की पूजा करनी चाहिए।

अग्निपुराण में वार्षिक प्रतिपदा व्रत के कृत्य :–

अग्निपुराण में आश्विन, कार्तिक चैत्र मास से आरम्भ करने का विधान है। इसमें भी 'तत्सब्रह्मणे नमः' मन्त्र से ब्रह्मा की सुवर्णमयी मूर्ति की पूजा का विधान है ।

'पंचदश्यां निराहारः प्रतिपद्यर्चयेदजम्।
ओंतत्सद् ब्रह्मणे नमो गायत्र्या वाऽब्दमेककम्॥
अक्षमालां स्रुवं दक्षे वामे स्रुच (च)कमण्डलुम्॥
लम्बकूर्चं च जटिलं हैमं ब्रह्माणमर्चयेत्।" [2]

इसमें व्रत करने के लिए पूर्णिमा तथा अमावस्या को उपवास कर प्रतिपदा के दिन ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए। ब्रह्मा की ऐसी सुवर्णमयी प्रतिमा बनानी चाहिए जिसके दाहिने हाथ में रुद्राक्ष की माला तथा स्रुव और बायें हाथ में स्रुक तथा कमण्डलु हो जिसकी दाढ़ी लम्बी तथा जटाओं से युक्त हो।

'अग्नये नम इत्यग्निं प्राप्याब्दं सर्वभाग्भवेत्।
प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिला प्रदः ॥ [3]

1- नारदीयपुराण 110/41
2- अग्निपुराण अध्याय, 176/2/3
3- अग्निपुराण 176/6

मार्गशीर्ष प्रतिपदा को दिन में उपवास करके रात्रि में 'अग्नये नमः' कहकर अग्नि की पूजा तथा हवन करना चाहिए और व्रत की समाप्तितक कपिला गाय का दान करना चाहिए।

समीक्षा :-

भारत के उन भागों में जहाँ वर्ष का आरम्भ चैत्र से होता है, प्रतिपदा तिथि को लोग धार्मिक कृत्यों एवं शुभ आयोजनों द्वारा मानते हैं। ब्रह्मपुराण में आया है कि ब्रह्मा ने चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय संसार का निर्माण किया, उसी दिन से काल गणना का शुभारम्भ हुआ। उस दिन सब पापों का नाश करने वाली महाशक्ति का कृत्य किया जाना चाहिए।

नारदीय पुराण में द्वितीया व्रतों की विधि :-

इस द्वितीया व्रत को भी चैत्र शुक्ल द्वितीया से आरम्भ करना चाहिए। ब्राह्मी शक्ति के साथ ब्रह्मा बालचन्द्र, अश्विनी कुमारों की पूजा करके ब्राह्मण को सोने एवं चाँदी के पात्रों का दान करे। इसे नेत्रव्रत भी कहते हैं। बारह वर्षों तक करने का विधान है।

वैशाख शुक्ल द्वितीया में सप्तधान्य युक्त कलश के ऊपर ब्रह्मा की पूजा करने की विधि निर्दिष्ट है।

"राधशुक्लद्वितीयायां ब्रह्माणं विष्णुरूपिणम्।
समर्च्य सप्तधान्याढ्यकुम्भोपरि विधानतः ॥"[1]

1- नारदीयपुराण, 111/7

ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया को भगवान भास्कर की पूजा करके ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए।

आषाढ़ मास की द्वितीया में पुष्य नक्षत्र से युक्त रहने पर सुभद्रा देवी के साथ बलराम एवं कृष्ण को रथ पर बिठाकर ब्राह्मण के साथ नगर में भ्रमण करावे। जलाशय के पास उत्सव मनावें तत्पश्चात् देव विग्रहों को मन्दिर में प्रतिष्ठित कर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।[1]

श्रावण शुक्ल द्वितीया को चतुर्मुख ब्रह्मा के पूजन का विधान है एवं सायंकाल चन्द्रमा को अर्घ्यदान भी आवश्यक बताया गया है।

भाद्रपद शुक्ल द्वितीया को इन्द्ररूपधारी भगवान की पूजा के विधान से सभी फलों की प्राप्ति बतायी गयी है।

'भाद्रशुक्लद्वितीयायां शक्ररूपं जगद्विभुम्।
पूजयित्वा विधानेन सर्वक्रतु फलं लभेत्॥[2]

आश्विन की द्वितीया में पूजन एवं दान का अनन्त फल है। कार्तिक शुक्ल द्वितीया को यम द्वितीया कहते हैं इस दिन यमराज को यमुना जी ने अपने घर भोजन कराया था, अतएव बहन के घर भोजन कर बहन को वस्त्राभूषण देने चाहिए।

'भोजितः स्वगृहे तेन द्वितीयेयमायमाख्यया।
पुष्टिप्रवर्द्धनं चात्र भागन्या भोजनं गृहे॥[2]

1- आषाढ़मासिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता।
तस्यां रथं समारोप्य रामं सह सुभद्रया॥' ना०पु० 111/10

2- नारदीयपुराण, 111/16

3- वही, पृ० 111/19

मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया को श्राद्ध द्वारा पितरों के पूजन का विधान है।[1]

पौष शुक्ल द्वितीया में गाय के सींग में जल लेकर मार्जन करने और अर्घ्यदान के पश्चात् घृत सहित पुष्पादि से पूजन करने एवं हविष्यान्न खाने की विधि निर्दिष्ट है।[2]

माघ शुक्ल द्वितीया को सूर्य की पूजा की विधि बताई गयी है। इसमें लाल चन्दन और रक्त पुष्प से पूजन कर यथाशक्ति सोने की मूर्ति बनाकर तांबे के पात्र में गेहूँ या चावल भर मूर्ति समेत ब्राह्मण को देना चाहिए।

"माघ शुक्ल द्वितीयायां भानुरूपं प्रजापतिम्।

समभ्यर्च्य यथान्यायं पूजयेद्रक्तपुष्पकैः ॥

रक्तगन्धैस्तथा स्वर्णमूर्तिं निर्माय शक्तितः।

ततः पूर्णं ताम्रपात्रं गोधूमैर्वापि तण्डुलैः ॥[3]

माघ शुक्ल द्वितीया में यथाशक्ति रक्तपुष्पों एवं रक्तगन्धों से भानु - रूप प्रजापति की स्वर्णमयी मूर्ति की पूजा करनी चाहिए। अनन्तर एक ताम्रपात्र को चावल या गेहूँ से भरकर भक्तिपूर्वक मूर्ति सहित वह पात्र ब्राह्मण को दे दे।

फाल्गुन शुक्ल द्वितीया में श्वेत पुष्प से पूजन करके फूलों से चंदोवा बनाकर पुष्पमय आभूषण से उनका श्रृंगार करे और धूप, दीप, नैवेद्य आदि के

1- मार्गशुक्ल द्वितीयायां श्राद्धेन पितृपूजनम्" — पा0पु0 111/22

2- पौष शुक्ल द्वितीयायां गोश्रृंगोदकमार्जनम्।
यो‍र्घ्यदानेन बालेन्दु हविष्याशी जितेन्द्रियः ॥ (वही, 111/23/24)

3- वही, 111/25/26

द्वारा पूजन के पश्चात् भगवान शिव को साष्टांग प्रणाम करे। इस प्रकार कृष्ण पक्ष की द्वितीया में भी पूजन आदि का विधान है।

"अथ फाल्गुन शुक्लायां द्वितीयायां द्विजोत्तमः।

पुष्पै शिवं समभ्यर्च्य सुरवैतैश्च सुगंधिभिः॥

पुष्पैर्वितानकं कृत्वा पुष्पालंकरणैः शुभैः॥"[1]

इस प्रकार सभी मासों की द्वितीया में नानारूपधारी अग्नि ही ब्रह्मचर्य आदि नियमों के साथ पूजे जाते हैं।

अग्निपुराण में द्वितीया व्रतों की विधि :-

इसमें पृथक-पृथक सभी मासों की द्वितीया का निर्देश नहीं है केवल कुछ ही महीनों की द्वितीया मेंपूजन का विधान इंगित है, शायद उसी के अनुसार वार्षिक द्वितीया के पूजन का निर्देश है। सर्वप्रथम आश्विन मास में अश्विनी कुमारों के पूजन की विधि है।

कार्तिक शुक्ल में यम की पूजा करनी चाहिए। एक वर्ष उपवास रह कर ऐसा करने से व्रती स्वर्ग को जाता है, नरक को नहीं।

'कार्तिके शुक्ल पक्षस्य द्वितीयायां यमं यजेत्।

अब्दमुपोषितः स्वर्गगच्छेन्न नरकं व्रती॥'[2]

श्रावण शुक्ल कृष्ण द्वितीया को अशून्य शयन व्रत कहा गया है, इसमें लक्ष्मी और विष्णु की पूजा वर्ष भर करने की विधि है। शय्या और फल देना

1- नारदीयपुराण, अध्याय 111/3

2- अग्निपुराण 177/2

चाहिए तथा प्रतिमास चन्द्रमा को अर्घ्य देना चाहिए।

'लक्ष्मीं विष्णु यजेदब्दं दद्याच्छय्यां फलानि च।

प्रतिमासं च सोमाय दद्यादर्घ्यं समन्त्रकम्।'[1]

कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया में कान्तिव्रत होता है। इसी में इसका अनुष्ठान करना चाहिए उस दिन केवल रात्रि में भोजन कर कृष्ण तथा बलभद्र की पूजा करनी चाहिए।[2]

पौष शुक्ल द्वितीया में चार दिन पर्यन्त काले तिल, सर्वौषधि, वच शैलेय, रजनीगन्धा, चम्पकयुक्त आदि से अनन्त देव की पूजा का विधान है —

पौष शुक्ल द्वितीयादि कृत्वा दिन चतुष्टयम्।

पूर्वसिद्धार्थकैः स्नानं ततः कृष्णतिलैः स्मृतम्।

वचया च तृतीयेऽह्नि सर्वौषध्या चतुर्थके।'[3]

इस प्रकार 20 पद्यों में कुछ ही द्वितीया का संकेत है, जिसके द्वारा अन्य द्वितीया व्रतों का भी संकेत समझना चाहिए। नारदीय पुराण की भांति इसमें तनद द्वितीया व्रतों के भेदों का संकेत नहीं है अतएव कहीं साम्य एवं वैषम्य अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

समीक्षा :—

शरदऋतु रोगों की माता कही गयी है — 'रोगाणां शारदी माता' और उसमें भी कार्तिक मास का अन्तिम भाग 'यमदंष्ट्रा' कहा जाता है। द्वितीया का दिन इसलिए रखा गया है कि द्वितीया यात्रा, व्रतारम्भ, तथा मंगल कार्यों के

1- अग्निपुराण, 177/8

2- कान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि कार्तिकस्य सितेचरेत्।
नक्तभोजी द्वितीयायां पूजयेत्तद्बलकेशवौ। (अग्निपुराण 177/13

3- अग्निपुराण, 177/16

लिए विशेषरूप से विहित है और इस दिन यमुना की यात्रा, व्रत तथा सम्पूजन ही किये जाते हैं। प्रतिपदा के दिन लिखने पढ़ने का सब कार्य बन्द रहता है, द्वितीया के दिन कलम आदि के पूजन के अनन्तर फिर आरम्भ होता है।

<u>नारदीयपुराण में तृतीया व्रतों की विधि :—</u>

'चैत्र शुक्ल तृतीयायां गौरीं कृत्वा सभर्तृकम्।
सौवर्णीं राजतीं वापि ताम्रीं वा मृण्मयीं द्विज॥'[1]

चैत्र शुक्ल तृतीया को उपवास करके गौरी तथा शंकर की मूर्ति सुवर्णमयी चांदी, तांबे अथवा मिट्टी की बनाकर ब्राह्मण को दे। सधवा ब्राह्मण पत्नियों अथवा सुलक्षणा ब्राह्मण कन्याओं को सिन्दूर, कज्जल और आभूषणों से सुशोभित करे, तत्पश्चात् प्रतिमा का जलाशय में विसर्जन करे।

वैशाख शुक्ल तृतीया को अक्षय तृतीया कहते हैं। इस रोज त्रेतायुग का प्रवेश हुआ था। इसमें लक्ष्मी सहित विष्णु की पूजा और गंगा में स्नान करने का विधान है।[2]

अथ ज्येष्ठ तृतीयायां तु शुक्लां रम्भेतिनामतः
तस्यां उमादिं विधिवत्पूजयेद्ब्राह्मणोत्तमम्।[3]

ज्येष्ठ मास की तृतीया में सपत्नीक श्रेष्ठ ब्राह्मण की विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए। इसे रम्भा तृतीया भी कहते हैं।

1- नारदीयपुराण अध्याय 112/2

2- राधा शुक्ल तृतीयायां साक्षया परिकीर्तिता।
   तिथिस्त्रेतायुगाद्या सा कृतस्याक्षयकारिणी।' ना0पु0 112/10

3- नारदीयपुराण 112/16

आषाढ़ शुक्ल तृतीया को भगवान की भावना से ब्राह्मण का पूजन कर धेनुदान करनी चाहिए।

नभः शुक्ल तृतीयायां स्वर्णगौरीव्रतं चरेत्।

उपचारै षोडशाभिर्भवानीमभिपूजयेत्॥[1]

श्रावण शुक्ल तृतीया को सुवर्णगौरी व्रत कहा गया है। इस तृतीया में षोडशोपचार से गौरी के पूजन की विधि बताई गयी है।

भाद्रपद शुक्ल तृतीया को हरतालिका व्रत कहा गया है —

"ततस्तु काञ्चने पात्रे राजते वापि ताम्रके।

वैणवे मृन्मये वापि विन्यस्यान्नं सदक्षिणम्॥[2]

इसमें सोने चांदी अथवा मिट्टी के पात्र में दक्षिणा रखकर पूजन के पश्चात् दान करना चाहिए।

आश्विन शुक्ल तृतीया में गौरी का पूजन करे, इसे बृहद्गौरी व्रत कहा गया है।

कार्तिक शुक्ल तृतीया को विष्णु गौरी व्रत कहते हैं। इसमें अनेक उपचारों से लक्ष्मी की पूजा के पश्चात् सुवासिनी स्त्री को मांगलिक द्रव्यों से पूजन कर भोजन कराना चाहिए।

'सुवासिनीं भोजयित्वा मंगल द्रव्य पूजिताम्।

विसर्जयेत्प्रणम्येना विष्णु गौरी प्रतुष्टये।"[3]

1-नारदीयपुराण, 112/2।

2- वही, 112/3।

3- वही, 112/55

मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया हरगौरी व्रत के नाम से पुकारी जाती है - पौष शुक्ल तृतीया को ब्रह्मगौरी व्रत कहते हैं। इसमें पूर्वोक्त विधान से ब्राह्मण की पूजा करनी चाहिए।[1]

माघ शुक्ल तृतीया में व्रत रहकर सौभाग्यवती स्त्री का पूजन नारियल सहित करना चाहिए।

"ब्रह्मगौरी प्रसादेन मोदते तत्र संगता।

माघ शुक्ल तृतीयायां पूज्या सौभाग्य सुन्दरी।'[2]

फाल्गुन शुक्ल ततीया को कुल सौभ्यप्रदातृतीया कहते हैं। इसमें गन्ध पुष्पादि के द्वारा पूजन करना चाहिए।

अग्निपुराण में तृतीया व्रतों की विधि :-

चैत्र शुक्ल तृतीया को मूलगौरी व्रत के नाम से जाना जाता है। इसमें गौरी तथा शंकर की पूजा फलादि से करनी चाहिए। ललिता नामक तृतीया में मूल गौरी व्रत किया जाता है[3] -

'तृतीयायां चैत्र शुक्ले ऊढा गौरी हरेण हि।

तिलस्नातो चयेत्कम्भु गौर्या हैमफलादिभिः ॥[4]

1- नारदीय - "पौष शुक्ल तृतीयायां ब्रह्मगौरीसमर्चयेत्।

पूर्वोक्तेन विधानेन पूजितापि द्विजोत्तम॥(112/58)

2- नारदीयपुराण अध्याय 112/59

3- तृतीयाव्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते।

ललितायां तृतीयायां मूलगौरी व्रतं शृणु ॥ (अग्निपुराण 178/1)

4- अग्निपुराण, 178/12/13

चैत्र शुक्ल तृतीया में भगवान शिव ने गौरी से विवाह किया था, अतः उस दिन तिल से स्नान करके सुवर्ण तथा फलादि से गौरी तथा शंकर की पूजा करनी चाहिए। पाद से लेकर प्रत्येक अंग की पूजा का विधान है। बारह मास में बारह प्रकार के पुष्पों को चढ़ाने की क्रमशः विधि है ।

"मल्लिकाशोककमलकुन्दं तगरमालती।
कदम्बं करवीरं च बाणं म्लानं कुङ्कुमम्॥
सिन्दुवारं च मासेषु सर्वेषु क्रमशः स्मृतम्॥"[1]

मालती अशोक, कमल, कुन्द, तगर, कदम्ब, करवीर, बाण, आमला कुंकुम तथा सिन्दुवार से उमा महेश्वर की पूजा करनी चाहिए।

श्रावण वैशाख, मार्गशीर्ष में भी इसी ललिता नामक देवी की पूजा पूर्वोक्त विधि से करें।

"सौभाग्यार्थं तृतीयोक्ता गौरी लोकादिदायिनी।
माघे भाद्रे च वैशाखे तृतीया व्रतकृत्तथा।
दमनक तृतीया कुर्वंश्चैत्रे दमनकैर्यजेत्।
आत्मतृतीया मार्गस्य प्रार्च्येच्छा भोजनादिना।"[2]

यह तृतीया सौभाग्य तथा गौरी लोक को दिलाने वाली है। माघ भाद्रपद तथा चैत्र की तृतीया का नाम दमनक है, अतः उस दिन दमनकों (कुन्दपुष्पों) से पूजा करनी चाहिए। मार्गशीर्ष की तृतीया का नाम आत्मतृतीया है।

1-अग्निपुराण 178/12-13

2- वही, 178/26, 27

फाल्गुन तृतीया को सौभाग्यप्रद तृतीया बताया गया है। 28 पद्यों में मुख्य तृतीया विधान के निर्देश से सभी मासों की तृतीया कल्पित समझना चाहिए।

समीक्षा :-

तृतीया जया तिथि है, और शुक्ल पक्ष की जया तिथि शुभ मानी जाती है, दूसरा तृतीया गौरी का दिन है और चतुर्थी गणेश जी का। ये दोनों ही सिद्धि देने वाले और विघ्नविनाशक हैं, अतः इस तिथि में दान करना अधिक उत्तम है। किसान लोग उस दिन चन्द्रमा के अस्त होते समय रोहिणी का आगे जाना अच्छा तथा पीछे रह जाना बुरा मानते हैं।

नारदीयपुराण में चतुर्थी व्रतों की विधि :-

"चैत्रमासचतुर्थ्यां तु वासुदेवस्वरूपिणम्।
गणपं सम्यगभ्यर्च्य दत्वा काञ्चनदक्षिणाम्॥"[1]

नारदीय पुराण में कहा गया है कि चैत्र मास की चतुर्थी में गणेश की पूजा करके ब्राह्मण को सुवर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए। वैशाख चतुर्थी को शंखदान करना चाहिए।

ज्येष्ठ मास की चतुर्थी को फल मूल का दान करने से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[2]

आषाढ़ मास की चतुर्थी को सन्यासी को तुँबा का पात्र दान करना चाहिए — "नैवेद्यमोदकं दद्याद्गणेशप्रीतिदायकम्।
एवं व्रतं विधायाथ भुक्त्वा मोदनेव च।"[3]

1- नारदीयपुराण अध्याय 113/2

2- ज्येष्ठमासिचतुर्थ्यां तु प्राद्युम्नरूपिणम्।
फलं मूलं च यतिभ्यो दत्वा स्वर्गं लभेन्नरः। नारदीयपु0 113/5

3- नारदीयपु0 113/14

श्रवण चतुर्थी को गणेश को लड्डू चढ़ाना चाहिए एवं व्रत के बाद उसे स्वयं खाना चाहिए।

भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी में बहुला गणेश की पूजा करनी चाहिए। गन्ध पुष्प, माल्यादि से पूजा कर यथाशक्ति दान करते हुए इस व्रत को पाँच दस या सोलह वर्ष पर्यन्त करते रहना चाहिए, उद्यापन के पश्चात् गौ का दान करे।[1]

भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को सिद्धिविनायक व्रत का पालन करे। इसमें शमीपत्र, बिल्वपत्र, दूर्वादल, धतूरपत्र, तुलसीपत्र, वेनपत्र, भटकटैयापत्र, तेजपत्र, अगस्त्य आदि इक्कीस पत्रों को सर्वेश्वराय नमः' इत्यादि नामों से भगवान गणपति को चढ़ाने का विधान है। इस प्रकार पाँच वर्ष तक इसे करने की विधि है —

अस्यां चतुर्थ्यां शशिनः न पश्येत् कदाचन।

पश्यन् मिथ्याभिशापं तु लभते नात्र संशयः।

अथ तद्दोषनाशाय मंत्रं पौराणिकं पठेत्॥[2]

इसी चतुर्थी को चन्द्रमा न देखने का विधान है, यदि चन्द्रमा देख लिया जाय तो दोष शान्ति के लिए इस मंत्र का पाठ करे —

'सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः।

सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः।[3]

1- अथ भाद्रचतुर्थ्यां तु बहुला धेनुसंज्ञकम्।

पूजनीयोऽत्र यत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य शक्तितो दानमाचरेत्।' नारदीयपु0 113/23, 24

2-नारदीयपु0, 113/38

3-वही, 113/39

आश्विन शुक्ल चतुर्थी में पुरुषसूक्त से षोडशोपचार करें। कार्तिक शुक्ल चतुर्थी करवा चतुर्थी भी कहते हैं। इसमें केवल स्त्री को ही अधिकार है इसमें पकवान भरकर करवे को गणपति के समक्ष रखना चाहिए। पूजनोपरान्त सौभाग्यवती स्त्रियों अथवा ब्राह्मणों को करवा बांट दें। इसको सोलह या बारह वर्षों तक करके उद्यापन करना चाहिए।[1]

मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी में गणेश की पूजा का विधान चार वर्षों तक बताया गया है। प्रथम वर्ष में एक भुक्त होकर प्रत्येक ~~माह~~ चतुर्थी में होवे, द्वितीय वर्ष में रात्रि भोजन करे, तृतीय वर्ष में अयाचित अन्न खाकर रहे, चौथे वर्ष की प्रत्येक चतुर्थी में उपवास करें[2] तत्पश्चात् स्वर्णमूर्ति सामर्थ्य के अनुसार बनावें या असमर्थ होने पर हल्दी चूर्ण की प्रतिमा बनाकर सविधि पूजा कर तिल, चावल, जौ पीली सरसों तथा खांड मिली हवन सामग्री से हवन कर चौबीस ब्राह्मणों को लड्डू एवं खीर का भोजन करावें तत्पश्चात् आचार्य को सवत्सा गौ का दान करें एवं भूयसी दक्षिणा दें।

"माघ कृष्णचतुर्थ्यां तु संकष्टव्रतमुच्यते।"[3]

1- चतुर्थ्यां कार्तिके कृष्णे करकाख्यं व्रतं स्मृतम्।
स्त्रीणामेवाधिकारोऽत्र तद्विधानमुदीर्यते॥
तदग्रे पूर्णपक्वान्नं विन्यसेत्करकान्दश।
समर्प्य देव देवाय भक्त्या प्रयतमानसा।" (नारदीयपु0 113/43-45)

2- मार्गे शुक्ला चतुर्थ्यां तु वर्षमेकमुनीश्वर
एकभक्तेन नक्तेनाथ द्वितीयकम्॥
अयाचितोपवासाभ्यां तृतीयकचतुर्थके।
एवं क्रमेण विधिवच्चत्वार्यब्दानि मानवः॥ (वही, 113/55-56)

3- वही, 113/72

माघ कृष्ण चतुर्थी को संकष्ट व्रत कहते हैं। इस व्रत में उपवासकर गणेश की मूर्ति पीढ़े पर स्थापित कर तिल, गुड़ का लड्डू लाल चन्दन, कुश, दूर्वा फूल अक्षत, शमीपत्र, दधि एवं जल से पूजन कर चन्द्रमा को अर्घ्य दें। उस समय इस मन्त्र का उच्चरण करें —

"गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणी पते।।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक।"[1]

उपर्युक्त मन्त्र को पढ़ते हुए कुश से अर्घ्यदान करना चाहिए।

माघ शुक्ल चतुर्थी को गौरी व्रत का पालन करना चाहिए। इसमें विशेषरूप से स्त्रियों को कुन्दपुष्प, कुमकुम, लाल सूत्र, पुष्प, महावर, धूप, दीप, गुड़ अदरख, खीर, नमक आदि से गौरी की पूजा करनी चाहिए।[2]

फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी को 'ढुण्ढराज व्रत कहा गया है। इस दिन तिल के पीठे से भोजन करावे स्वयं भोजन करे। तिल का होमदान आदि करने की विधि है। गणेश की स्वर्णमयी मूर्ति बनाकर ब्राह्मण को दान करे। इस प्रकार इस चतुर्थी व्रत में गणेश की धार्मिक पूजा बताई गयी है।[3]

1- नारदीयपुराण, 113/77

2- नरैः स्त्रीभिर्विशेषेण कुंदपुष्पैः सकुंकुमैः। रक्तसूत्रै रक्तपुष्पैस्तथैवालक्तकेन च।

धूपदीपैश्च बलिभिः सगुडेनार्द्रकेण च। पयसा पायसेनापि लवणेन च पालकैः।।
(नारदी0पु0 113/81/82)

3- चतुर्थ्यां फाल्गुने मासि ढुंढिराज व्रतं शुभम्।

तिल पिष्टैर्द्विजान्भोज्य स्वयं चाश्नीत मानवः ।। (ना0पु0 113/87

<u>अग्निपुराण में चतुर्थी व्रतों की विधि :-</u>

अग्निपुराण में केवल पाँच पद्यों में ही चतुर्थी व्रत का विधान बताया गया है - "माघे शुक्लचतुर्थ्यां तु उपवासी यजेद्गणम्'[1]

माघ शुक्लपक्ष की चतुर्थी में गणेश की आराधना करनी चाहिए। पंचमी में तिल भोजन से मनुष्य सुखी हो जाता है तथा विघ्नबाधा से रहित हो जाता है। 'गं' 'स्वाहा' यह गणेश का का मूलमंत्र है। गां का उच्चारण करके हृदय-विन्यास करना चाहिए।[2]

"आगच्छोल्काय कहकर आवाहन तथा 'गच्छोल्काय' कहकर विसर्जन करना चाहिए। गन्ध, पुष्प, मोदक आदि से गणेश का पूजन करके गायत्री मंत्र से जाप करना चाहिए।

'मासि भाद्रपदे चापि चतुर्थी पूजिकृद् व्रजेत्।'[3]

भादों की चतुर्थी में गणपति की पूजा एवं व्रत करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है।

'चतुर्थ्यां फाल्गुने नक्तमविघ्नाख्या चतुर्थ्यपि।
चतुर्थ्यां दमनैः पूजयैव प्राप्यं गणं सुखी॥'[4]

1- अग्निपुराण 179/1

2- पंचम्यां च तिलान्नादी वर्गान्निर्विघ्नतः सुखी।
गं स्वाहा मूलमन्त्रो यं गामाद्यं हृदयादिकम्।(अग्निपुराण 179/2)

3- अग्निपुराण, 179/4

4- वही, 179/5,6

फाल्गुन की चतुर्थी का नाम अविघ्ना है उस दिन रात्रि में गणेश पूजन करना चाहिए।

वाराह पुराण के अनुसार चार महीने तक प्रत्येक शुक्ल चतुर्थी का व्रत करके पाँचवें महीने में पूर्वोक्त पूजित मूर्ति ब्राह्मण को दे तो सब विघ्न दूर हो जाते हैं। प्राचीन काल में अश्वमेध के समय महाराज सगर ने, त्रिपुरासुर युद्ध में शिव जी ने एवं समुद्र मंथन में विघ्न न होने के लिए भगवान ने यह व्रत किया था। चैत्र की चतुर्थी में कुन्द पुष्पों से गणपति की पूजा करनी चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि नारदीय पुराण में सभी मासों की चतुर्थी का वर्णन विस्तृतरूप में किया गया है। सभी शुभ कार्यों में गणेश की स्तुति का अत्यन्त महत्त्व माना गया है। विद्यारम्भ, विवाह, संग्राम, संकट के क्षणों में गणपति के नाम स्मरण का विशेष महत्त्व बताया गया है, इसकी अपेक्षा अग्नि-पुराण में चतुर्थी व्रत संक्षिप्त रूप में वर्णित है। इसमें केवल चैत्र, माघ, भादों एवं फाल्गुन की चतुर्थी का ही वर्णन है।

समीक्षा :-

गणेश हिन्दुओं के आदि देवता हैं। यद्यपि वे भगवान शंकर और पार्वती के पुत्र कहे जाते हैं, तथापि गणेश की पूजा एवं प्रतिष्ठा सबसे पुरानी है। सनातन धर्मानुयायी स्मार्तों के पंच देवताओं में गणेश प्रमुख हैं। गणेश, विष्णु, शंकर सूर्य, भगवती देवी ये पंचदेव कहे जाते हैं। हमारे देश में किसी भी कार्य के आरम्भ में सर्वप्रथम 'श्रीगणेशायनमः' कहा जाता है, किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली और लोक-प्रिय होते हुए भी उत्तरभारत में गणपति की वह पूजा प्रतिष्ठा नहीं होती जो दक्षिण भारत एवं महाराष्ट्र में होती है। महाराष्ट्र में गणेश पूजा एक राष्ट्रीय पर्व के रूप में प्रतिष्ठित है।

नारदीयपुराण में पंचमी व्रतों की विधि :-

"प्रोक्ता मत्स्यजयंती तु पंचमी मधुशुक्लगा।

अस्यां मत्स्यावताराची भक्तैः कार्या महोत्सवा॥[1]

चैत्र शुक्ल पंचमी को मत्स्य जयंती भी कहते हैं। इसमें मत्स्यावतार को पूजा करनी चाहिए। गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, खीर आदि से लक्ष्मी की पूजा का विधान है।

"अथ वैशाख पंचम्यां शेषं चाभ्यर्च्य मानवः।

सर्वैर्नागगणैर्युक्तं अभीष्टं लभते फलम्।

तथा ज्येष्ठस्य पंचम्यां पितृनभ्यर्चयेत्सुधीः॥[2]

वैशाख पंचमी में नाग गणों की पूजा एवं ज्येष्ठ पंचमी में पितरों की पूजा तथा ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

'आषाढस्य पंचम्यां वायुं सर्वगतं मुने'[3]

आषाढ़ शुक्ल पंचमी में वायु आदि दिक्पाल की पूजा की जाती है और वायु की परीक्षा पताका द्वारा की जाती है। चार प्रहर निराहार रहकर सायंकाल भोजन के पश्चात् भूमि पर शयन करना चाहिए इसमें भी ब्राह्मण भोजन की विधि है।

1- नारदीयपुराण अध्याय 114/2

2- ना0पु0 114/5/6

3- वही, 114/7

"श्रावणे कृष्णपञ्चम्यां व्रतं ह्यन्नं समुदितम्
देवताभ्यर्च्य सुस्नातः कृत्वा नैवेद्यमग्रतः ।
तदन्नं याचकेभ्यस्तु प्रयच्छेत्प्रीतमानसः ।
गन्धपुष्पादिभिः सम्यक् पूजयित्वा महेश्वरम् ।
जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां शतं चापि सहस्रकम् ॥[1]

श्रावण कृष्ण पंचमी को अन्न व्रत कहा जाता है। इसमें अच्छी तरह स्नान करके सबसे पहले नैवेद्य आदि से देवताओं की पूजा करनी चाहिए उसके बाद याचकों को धुला हुआ स्वच्छ अन्न देवे गन्ध पुष्पादि से शिव की पूजा करनी चाहिए।

"श्रावणे शुक्लपञ्चम्यां नृभिर्भक्तितत्परैः ।
द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः
गन्धाद्यैः पूजयेत्तत्र तथेन्द्राणीभिरन्नाद्यैः ॥[2]

श्रावण शुक्ल पंचमी नागपंचमी के नाम से विख्यात है, जिसमें नागों की पूजा दरवाजे पर गोबर से की जाती है। गन्ध, पुष्प अक्षत आदि से पूजन कर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

भाद्रपद कृष्ण पंचमी में भी दूध से नागों को तृप्त करने की विधा है।[3]

"भाद्रस्य शुक्लपञ्चम्यां पूजयेदृषिसत्तमान्।
गोमयेनोपलिप्ताय कृत्वा पुष्पोपशोभितम्।
तत्रास्तीर्य कुशांस्त्विप्र ऋषीन्सप्तसमर्चयेत ॥[4]

1- नारदीयपुराण अध्याय 114/16/19/21
2- वही, 114/26/27
3- भाद्रे तु कृष्णपञ्चम्यां नागान् क्षीरेण तर्प्पयेत। 'वही, 114/33
4- नारदीयपुराण 114/34/36

भाद्रपद शुक्ल पंचमी में ऋषियों के पूजन का विधान है। इसमें वेदिका को गोबर से लीपकर पुष्पों से सजाना चाहिए। कुशा के ऊपर ऋषियों का आवाहन कर सविधि पूजन करे। बिना जोते हुए अन्न का भोग लगावे और स्वयं खावे। लोक में इसे ऋषि पंचमी के नाम से जानते हैं।

आश्विन शुक्ल पंचमी को उपांग ललिता व्रत भी कहा जाता है। इसमें षोडशोपचार से ललिता देवी की स्वर्णमयी मूर्ति बनाकर पूजन करने की विधि है।[1]

'पूजयित्वा जयां विप्र यथाविधि समाहितः।

उपचारैः षोडशभिस्ततः शुचिरलंकृतः ॥[2]

कार्तिक शुक्ल पंचमी को जयाव्रत करना चाहिए। एकाग्रचित्त होकर जयादेवी की पूजा षोडशोपचार से करे। ब्राह्मण को भोजन कराकर उसे यथाविधि दक्षिणा दें।

"मार्गशुक्ले च पंचम्यां नागांविष्णुं विधानतः ।'[3]

पौष शुक्लपंचमी में मधुसूदन के पूजन का विधान है। प्रत्येक मास की पंचमी में नागों तथा पितरों की पूजा उत्तम मानी गयी है।[4] इसी प्रकार फाल्गुन पंचमी में भी विधि है।

1- आश्विन शुक्ल पंचम्यामुपांगललिताव्रतम्।

तस्याः स्वर्णमयी मूर्तिं शक्त्या निर्माय नारद।

उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्ता विधानतः ॥ (ना0पु0 ।।4/49-50)

2- नारदीयपुराण ।।4/54

3- वही, पुराण, ।।4/59

4- पौषेऽपि शुक्लपंचम्याशुक्ले कृष्णे च नारद।

पितृणां पूजनं शस्तं नागानां चापि सर्वथा॥ (ना0पु0 ।।4/60)

अग्निपुराण में पंचमी व्रतों की विधि—

अग्निपुराण में दो ही पद्यों में पंचमी व्रत का विधान है, जो आरोग्य स्वर्ग एवं मोक्ष को देने वाला है।

"वासुकिस्तक्षकः पूज्यः कालीयो मणिभद्रकः
ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ।
एते प्रयच्छन्त्यभयमायुर्विद्यायशः श्रियम्।¹

इसमें श्रावण भाद्र, आश्विन तथा कार्तिक की शुक्ल पंचमी में तक्षक कालीय तथा धनंजय नामक सर्पों की पूजा करनी चाहिए। इसमें ये अभय, आयु, विद्या यश तथा ऐश्वर्य प्रदान किया करते हैं।

पंचमी व्रत में नागों की पूजा के विधान का वर्णन (अग्नि एवं नारदीय दोनों) पुराणों में अत्यन्त महत्त्व के साथ प्रस्तुत किया गया है। पंचमी तो नागों की तिथि है, क्योंकि ज्योतिष के अनुसार पंचमी के तिथि के स्वामी नाग हैं। अग्नि पुराण तो स्पष्ट ही कहता है कि

"शेषादीनां फणीशानां पंचम्यां पूजनं भवेत्।
(पीयूषधारा में अग्निपुराण का वचन)

अर्थात् शेष आदि सर्पराजों का पूजन पंचमी को ही होना चाहिए।

इसके साथ-साथ नारदीय पुराण में पितृव्रत का विधान भी वर्णित है, क्योंकि हिन्दू धर्मशास्त्रों में मनुष्य के लिए तीन ऋण बताये गये हैं जिनका मोचन करना परम आवश्यक है, देवऋण, ऋषिऋण एवं पितृऋण। तीनों में पितृ का ऋण सबसे बड़ा इसलिए माना गया है कि वह प्रत्यक्ष देवता है।

1- अग्निपुराण, 180/2/3

समीक्षा —

नागपंचमी हमारे देश का एक सर्वव्यापी त्योहार है। यह तो सभी जानते हैं कि वर्षा ऋतु ही नागों के निकलने का समय होता है, शीतकाल में तो सर्प निकलते ही नहीं, इसलिए प्रत्यक्ष नागपूजनार्थ यही समय उचित है, यद्यपि उत्तर हिमालय के तटवर्ती प्रदेश से लेकर सुदूर दक्षिण तक तथा पूर्व आसाम, बंगाल से लेकर पश्चिमी गुजरात तक इसके स्वरूप में कुछ न कुछ अन्तर पाया जाता है, किन्तु इसका अस्तित्व सर्वत्र है। हमारे ही देश में हमारे पूर्वजों ने ही नहीं, अन्य देशों में भी वहाँ के पूर्वजों ने नागों की पूजा की प्रथा चलायी थी और वहाँ भी इस प्रथा का वर्णन किसी न किसी रूप में आज भी पाया जाता है। उनके द्वारा जो अनिष्ट होता है वह ईश्वरकृत है। यदि ईश्वर को उनके द्वारा किसी की मृत्यु अभीष्ट नहीं होती तो वह उनमें जहर उत्पन्न ही क्यों करता। इससे यह सिद्ध होता है कि वे जो कुछ करते हैं उसमें ईश्वर प्रेरणा है ही।

नारदीय पुराण में षष्ठी व्रतों की विधि :-

"चैत्रमासे शुक्लषष्ठ्यां कुमार व्रतमुत्तमम्॥"[1]

चैत्र शुक्ल षष्ठी में कुमार व्रत का विधान बताया गया है। वैशाख शुक्ल षष्ठी में स्वामि कार्तिक की पूजा करनी चाहिए। आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को स्कन्द की उपवास के साथ पूजा बताई गयी है।[2]

1- नारदीयपुराण 115/2

2- आषाढ़ शुक्लषष्ठ्यां वै स्कन्दव्रतमनुत्तमम्॥

— नारदीयपुराण, 115/5

श्रावण षष्ठी को भी शरजन्मा स्कन्द की पूजा निर्दिष्ट है।

" भाद्रमासि कृष्णषष्ठ्यां ललिता व्रतमुच्यते।

गृहीत्वा वंश पात्रे तु पूत्वा पिंडाकृतिं च ताम्

पंचधा ललितां तत्र ध्यायेद्वनविलासिनीम्॥ [1]

भाद्रपद कृष्ण षष्ठी में ललिता व्रत का विधान है। इसमें स्नानादि करके नदी संगम की बालुका से पाँच पिण्ड बनाकर बांस के पात्र में ललिता देवी का ध्यान करके पूजा करनी चाहिए। विधिवत् पूजा के पश्चात् खीरा, नारियल, अनार, बिजौरा आदि फलों का नैवेद्य लगाकर रात्रि में जागरण करके नदी किनारे वाद्य आदि के द्वारा पुनः सप्तमी को पूजन कर 15 ब्राह्मणों एवं कन्याओं को भोजन कराकर दक्षिणा दे।

भाद्रपद शुक्ल षष्ठी को चन्दन षष्ठी और रोहिणी नक्षत्र से युक्त हो तो कपिला षष्ठी कहते हैं। [2]

"अथेषु शुक्लषष्ठ्यां तु पूज्या कात्यायनी द्विज

गंधाद्यैर्मंगलद्रव्यैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा॥" [3]

आश्विन शुक्ल षष्ठी में कात्यायनी देवी की पूजा धूप, दीप, नैवेद्य आदि के साथ करने का विधान है। कार्तिक शुक्ल षष्ठी में षडानन की पूजाविधि है।

1- नारदीयपुराण 115/8/10

2- नभस्ये मासि या शुक्ला षष्ठी सा चन्दनाह्विया

रोहिणीपातभौमैस्तु संयुता कपिला भवेत्॥ (वही, 115/29)

3- नारदीयपुराण 115/34

मार्गशीर्ष का षष्ठी यदि रविवार तथा शतभिषा नक्षत्र से युक्त हो तो उसे चम्पा षष्ठी भी कहते हैं। इसमें स्कन्द एवं विष्णु भगवान की पूजा विधि है।[1]

पौष मास शुक्ल षष्ठी को भगवान दिनेश का आविर्भाव हुआ था, अतः गन्ध, नैवेद्य, वस्त्राभूषणादि के द्वारा पूजा करनी चाहिए।

'माघमासि सिता षष्ठी वरुणाह्वा स्मृता तु सा'[2]

माघ मास में रक्त चंदन के द्वारा भगवान वरुण की पूजा करनी चाहिए —

"फाल्गुने शुक्लषष्ठ्यां तु देवं पशुपतिं द्विज।
मृन्मयं विधिना कृत्वा पूजयेदुपचारकैः॥
गन्धैरालिप्य सौवर्तैरक्षतैः सितपुष्पकैः।
बिल्वपत्रैश्च धत्तूरकुसुमैश्च फलैस्तथा।'[3]

फाल्गुन शुक्ल षष्ठी में पशुपति की पूजा गन्ध अक्षत, पुष्प बिल्वपत्र धतूरा, फल एवं फूल सभी उपचारों से विधिपूर्वक करने का विधान है।

<u>अग्निपुराण में षष्ठीव्रतों की विधि :—</u>

इसमें कार्तिक भादों, मार्गशीर्ष आदि मासों में स्कन्द भगवान की पूजा का दो ही पद्यों में निर्देश है।

1- रविवारेण संयुक्ता तथा शतभिषान्विता।
विष्णुरूपी जगत्त्राता प्रादुर्भूतः सनातनः॥ (ना0पु0 115/43)

2- नारदीयपुराण 115/45

3- वही, 115/47/49

"षष्ठ्या फलाशनो याद्यैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।
स्कन्दषष्ठी व्रतं प्रोक्तं भाद्रे षष्ठ्यामथाक्षयम्॥
कृष्णषष्ठी व्रतं वक्ष्ये मार्गशीर्षे चरेच्च तत्।
अनाहारी वर्षमेकं भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्॥[1]

कार्तिक आदि मास की षष्ठी में फलाहार करके सूर्य को अर्घ्य समर्पण करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। भादों की षष्ठी में अक्षय स्कन्द षष्ठी व्रत का वर्णन किया गया है। मार्गशीर्ष में कृष्ण पक्ष की षष्ठी का व्रत करना चाहिए। एक वर्ष निराहार रहकर यह व्रत करने से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

नारदीयपुराण में सप्तमी व्रतों की विधि :-

चैत्रे तु शुक्लसप्तम्यां यतिः स्नानं समाचरेत्।
स्थण्डिले गोमयालिप्ते गौरमृत्तिकयास्ते।"[2]

चैत्र शुक्ल सप्तमी स्नान करके जमीन पर गोबर से लीप कर मिट्टी की गौर बनानी चाहिए। पूर्व में देवता, दक्षिण में अप्सरा, नैऋत्य में राक्षस, तथा पश्चिम में नाग वायव्य में यातुधान उत्तर में ऋषि, ईशान में ग्रहों आदि का न्यास कर गन्ध पुष्प, अक्षत आदि से सविधि पूजा करे। सूर्य के लिए 108 आहुति एवं देवों आदि के निमित्त आठ-आठ आहुतियाँ देनी चाहिए।

वैशाख सप्तमी में गंगापूजा करे एक सहस्त्र घट दान देना चाहिए इसमें सूर्यपूजा की विधि एवं प्रार्थना की गयी है।

1- अग्निपुराण अ181/1/2
2- नारदीयपुराण 116/2

"तां तत्र पूजयेत्स्नात्वा प्रत्यूषे विमले जले।

गंधपुष्पाक्षताद्यैश्च सर्वैरेवोपचारकैः ॥[1]

गंगा के जल में स्नान करके गन्धा, पुष्प, अक्षत आदि सभी उपचारों से पूजा करनी चाहिए एवं पूजन करके

"नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे।

दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तुते॥ 2

इस श्लोक से प्रार्थना करके सूर्यास्त के समय जल का एक घड़ा एक गौ और कमलादि ब्राह्मणों को दान करे तथा दिन उनको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे।

ज्येष्ठ, आषाढ़ श्रावण सप्तमी में भी सूर्य की पूजा निर्दिष्ट है।

"भाद्रे तु शुक्लसप्तम्याममुक्ताभरणव्रतम्"

भाद्रपद की शुक्ल सप्तमी को मुक्ताभरण व्रत भी कहते हैं इसमें उमा सहित शंकर की पूजा सविधि गंगाजल से करनी चाहिए।

यह फल सप्तमी के नाम से भी विख्यात है। इसमें नारियल, केला, बैंगन, नारंगी, बिजौरा, नीबू आदि फलों से पूजा करने का विधान निर्दिष्ट है। इसमें सात ब्राह्मणों को भोजन कराके सात वर्ष तक पालन करने की विधि है।

'आश्विने शुक्ल पक्षे तु विज्ञेया शुभ सप्तमी

तस्यां कृत स्नान पूजो वाचयित्वा द्विजोत्तमान् ॥

1- नारदीयपुराण 116/12

2- वही, 116/15

3- वही, 116/32

4- फल सप्तमिका चैयं तद्विधानमुदीर्यते।
नालिकेरं च वृंताकं नारंगं बीजपूरकम्॥ (नारदीयपु0 116/34

आश्विन शुक्ल सप्तमी को शुभ सप्तमी कहते हैं। इसमें स्नान करके कपिला गाय की पूजा एवं प्रार्थना कर ब्राह्मण को दान देना चाहिए। कार्तिक सप्तमी में स्वर्ण कमल के साथ सात प्रकार के शाक सात ब्राह्मणों को देकर स्वयं भोजन करना चाहिए।[1]

मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन सप्तमी में सूर्य की पूजा एवं सुवर्ण दान का विधान बताया गया है जो कि अग्निपुराण के अनुसार सर्वाप्ति, अर्कपुट नामक व्रत के नाम से विख्यात है।

<u>अग्निपुराण में सप्तमी व्रतों की विधि :-</u>

सप्तमी व्रत भोग एवं मोक्ष देने वाला होता है।

"माघमासि त्वहे शुक्ले सूर्य प्रार्च्य विशोकभाक्"[2]

माघ शुक्ल की सप्तमी में कमल से सूर्य की अर्चना करने से मनुष्य शोक रहित हो जाता है।

भादों की सप्तमी में सूर्यपूजन करने से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। पौष शुक्ल सप्तमी में उपवास करके सूर्य की पूजा करने से पाप नष्ट हो जाते हैं।[3]

"कृष्णपक्षे तु माघस्य सर्वावाप्तिस्तु सप्तमी
फाल्गुने तु सिते नन्दा सप्तमी चार्कपूजनात्।"[4]

1-नारदीयपुराण 116/40

2- अथकार्तिक शुक्लायां शाकाख्य सप्तमीव्रतम्।
तस्यां तु सप्तशाकानि सस्वर्ण कमलानि च।
प्रदद्यात्सप्तविप्रेभ्यः शाकाहरस्ततः स्वयं। (116/45/46

3- अग्निपुराण, 182/1

4-सर्वाविाप्तिस्तु सप्तम्यां मासि -
भाद्रे र्कपूजनात्।
पौषे मासि सिते नरस्त्वर्च्यार्क पापनाशनम्॥ (अग्निपुराण, 182/2

5- अर्क अग्निपुराण 182/3

माघ कृष्णपक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य की पूजा करने से सभी अभिलाषायें पूर्ण हो जाती हैं। फाल्गुन शुक्ल पक्ष की सप्तमी का नाम नन्दा है।

"मार्गशीर्षे सिते प्राच्ये सप्तमी चापराजिता।

मार्गशीर्षे सिते चाद्ये पुत्रीया सप्तमीस्त्रियाः ॥[1]

मार्गशीर्ष शुक्ल की सप्तमी का नाम अपराजिता है। इसमें सूर्यपूजन करने से पराजय नहीं होती है। उक्त सप्तमी में सूर्य का पूजन करने से स्त्रियाँ पुत्रवती हुआ करती हैं।

नारदीयपुराण में अष्टमी व्रतों की विधि :-

'शुक्लाष्टम्यां चैत्रमासे भवान्याः प्रोच्यते जनैः ।

अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ॥[2]

चैत्रमास की अष्टमी को भगवती की पूजा तथा पुनर्वसु नक्षत्र में आठ अशोक कलिका भक्षण का विधान है। नवरात्र का आरम्भ चैत्र एवं आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को ही होता है अतः यह प्रतिपदा सम्मुखी शुभ होती है। नवरात्र के आरम्भ में अमायुक्त प्रतिपदा अच्छी नहीं होती। [3]घटस्थापन के समय यदि चित्रा और वैधृति हो तो उनका त्याग कर देना चाहिए क्योंकि चित्रा में धन और वैधृति में पुत्र का नाश होता है

वैशाख शुक्ल अष्टमी को स्नान करके अपराजिता देवी को उशीर और जटामासी जल से स्नान करावे और स्नानोत्तर गन्ध, पुष्प, अक्षत नैवेद्य से पूजा कर शर्करा मिश्रित क्षीर का भोग लगावे।[4]

1- अग्निपुराण, 182/4 2- नारदीयपुराण, 117/1

3- प्रारब्धे नवरात्रे स्यादिह हित्वा चित्रां न वैधृतिम्।
वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनम्। (व्रतपरिचय, पृ0 57

4- नारदीयपुराण 117/5

'कृष्णाष्टम्यां ज्येष्ठमासे पूजयित्वा त्रिलोचनम्।'[1]

ज्येष्ठमास की अष्टमी में शिव पार्वती का पूजन करना चाहिए -

'कृष्णाष्टम्यां तथाऽऽषाढे स्नात्वा चैव निशाम्बुना।

भोजयित्वा ततो विप्रान् दत्वा स्वर्णं च दक्षिणाम्।।'[2]

आषाढ़ में हल्दी मिश्रित जल से स्नान कर देवी की पूजा तथा ब्राह्मण को भोजन करवा कर स्वर्ण दक्षिणा देनी चाहिए। श्रावण अष्टमी को भी देवी की पूजा करनी चाहिए।

भाद्रपद की अष्टमी जिसे कृष्ण जन्माष्टमी कहते हैं। इसमें इस दिन तक राधा युगल मूर्ति स्वर्णमयी बनाकर दस दिन तक पूजन करने का विधान विस्तार से वर्णित है।

'तुलस्याः कृष्ण वर्णाया दलैर्दशभिरर्चयेत।

कृष्ण विष्णु तथाऽनन्त गोविन्द गरुडध्वजम्।।'[3]

गोविन्दायनमः, विष्णवे नमः, अनन्ताय नमः आदि इन मन्त्रों से तुलसी के दश दल चढ़ाना चाहिए। स्वर्ण, चाँदी अथवा ताँबे के पात्र में स्वर्ण का तुलसी दल चढ़ाने का विधान है।

भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को राधाष्टमी कहा गया है, इसमें राधिका की पूजा करनी चाहिए एवं जब सूर्य कन्याराशि में होता है तो महालक्ष्मी की पूजा का आरम्भ होता है और जब सूर्य कन्याराशि के अर्धभाग में होता है तो आगे की

1- नारदीयपुराण, 117/7
2- वही, 117/11

3- वही, 117/16

अष्टमी को समाप्त होता है, इस प्रकार 16 दिन लगते हैं।

'करिष्येऽहं महालक्ष्मीव्रतं ते त्वत्परायणः।

तदविघ्नेन मे यातु समाप्तिं त्वत्प्रसादतः।'[1]

मैं महालक्ष्मी का व्रत तत्परतापूर्वक करती हूँ, उनके प्रसाद से सभी विघ्न समाप्त हो जायेंगे। इस मंत्र को कहकर लक्ष्मी का पूजन करे और इसके पश्चात् – "इत्युच्चार्य ततो बद्ध्वा डोरकं दक्षिणे करे।

षोडशग्रन्थि सहितं गुणैः षोडशभिर्युतम्॥[2]

पूजन करके डोरे को दाहिने हाथ में बाँधे और 16 सूत्र के डोरे में 16 गाँठ लगाकर प्रत्येक गाँठ का पूजन करे। 16दिनों के बाद उद्यापन करना चाहिए उद्यापन में चार स्वर्ण प्रतिमा बनाकर सर्वतोभद्र पर स्थापित कर सविधि पूजा करके, ब्राह्मण भोजन के पश्चात् प्रतिमा ब्राह्मण को दान दे।

आश्विन मास में भी दुर्गा की पूजा बताई गयी है।

"तत्रोमासहितः शम्भुः पूजनीयः प्रयत्नतः।

चन्द्रोदयेऽर्घ्यदानं च विधेयं व्रतिभिः सदा॥'[3]

कार्तिक मास में शिव की पूजा करनी चाहिएएवं चन्द्रमा को अर्घ्य देकर दान का विधान वर्णित है।

"मार्गशीर्षे सिताष्टम्यां कालभैरव सन्निधौ।

उपोष्य जागरं कृत्वा महापापैः प्रमुच्यते।"[4]

1-नारदीयपुराण 117/55

2- वही, 117/56

3- वही, 117/79

मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी को व्रत रखकर प्रत्येक प्रहर में भैरव की यथा-विधि पूजा करनी चाहिए। रात्रि में जागरण करके तथा कथा सुनने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

माघ मास की कृष्णाष्टमी को भद्रकाली की पूजा करनी चाहिए।[1]

"फाल्गुने त्वसिताष्टम्यां भीमां देवीं समर्चयेत।

तत्र व्रतपरो विप्र सर्वकाम समृद्धये।।"[2]

फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को भीमा देवी की पूजा करनी चाहिए। व्रत को रखकर ब्राह्मण को दान देना चाहिए।

फाल्गुन मास के दूसरे पक्ष में शीतलाष्टमी होती है। इसमें सप्तमी के दिन सभी प्रकार का पकवान बनाकर अष्टमी के दिन विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए।[3]

अग्निपुराण में अष्टमी व्रतों की विधि :-

"मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां रोहिण्यामर्धरात्रके।

कृष्णो जातो यतस्तस्यां जयन्ती स्यात्ततोऽष्टमी।'

सप्त जन्मकृतात्पापान्मुच्यते ज़ोपवासतः ।।[4]

1- कृष्णाष्टम्यां तु माघस्य भद्रकालीं समर्चयेत।(117/90 नारदी०पु०)

2- नारदीयपुराण 117/86

3- फाल्गुना परपक्षे तु शीतलामष्टमीदिने।
पूजयेत्सर्वपक्वान्नैः सप्तम्यां विधिवत्कृतैः ।।(117/94)

4- अग्निपुराण 183/2

भाद्रपद की अष्टमी में जब रोहिणी नक्षत्र था, अर्धरात्रि के समय भगवान कृष्ण अवतरित हुए थे अतः उस अष्टमी में कृष्ण जयन्ती मनायी जाती है इसमें उपवास करने से सात जन्मों के पापों का नाश हो जाता है।

कृष्ण पक्षे भाद्रपदे अष्टम्यां रोहिणी युते।

उपोषितोऽर्चयेत्कृष्ण भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।"[1]

रोहिणी नक्षत्र की भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी में उपवास करके कृष्ण की पूजा करने से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। योग, योगपति, योगेश को बार-बार नमस्कार है। योग आदि के कारण गोविन्द को बार-बार नमस्कार है, यह कहते हुए भगवान कृष्ण को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए।'[2]

' सर्वकामप्रदो देवभव मे देव वन्दित।

धूपधूपित धूपस्त्वं धूपितैस्त्वं गृहाण मे॥[3]

हे देवताओं के द्वारा वन्दित देवाधिदेव, मेरी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण कर दीजिए धूपों से सुवासित मेरा धूप स्वीकार कीजिए।

अग्निपुराण में केवल कृष्णजन्माष्टमी व्रत का विधान है निर्दिष्ट है। चन्द्रार्घ्य का विधान इस प्रकार है –

'क्षीरोदार्णवसम्भूत अग्निनेत्र समुद्भव।

गृहाणार्घ्यं शशांकेदं रोहिण्या सहितो मम॥[4]

क्षीर समुद्र में उत्पन्न होने वाले शशांक, रोहिणी के साथ मेरे इस अर्घ्य को स्वीकार कीजिए।

इस प्रकार जन्माष्टमी का व्रत करने से मनुष्य बैकुण्ठगामी होता है, जो प्रतिवर्ष जन्माष्टमी का व्रत करता है उसे किसी भी प्रकार का भय नहीं होता है।

1- अग्निपुराण, 183/3

2- योगाययोगपतये योगेशाय नमोनमः
योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ॥(183/5)

3- अग्निपुराण 183/8

4- वही, 183/13

नारदीयपुराण में नवमी व्रतों का विधि :-

"चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु श्रीरामनवमी व्रतम्।

तत्रोपवासं विधिवत्कुर्वतो भुक्तः समाचरेत्॥[1]

"अथवा तस्यैवभक्तं वै मध्याह्नोत्सवतः परम्।

विप्रान्संभोज्य मिष्टान्नैः रामप्रीतिं समाचरेत्॥[2]

चैत्र शुक्ल नवमी राम नवमी के नाम से विख्यात है। इसमें शक्ति से उपवास करे अथवा मध्यान्ह के पश्चात् एक समय भोजन करे। राम की प्रसन्नता के लिए ब्राह्मणों को मिष्ठान्नों सहित भोजन करावे।

"राधे नवम्यां दलयोश्चण्डिकां यस्तु पूजयेत्।

विधिना सविमानेन दैवतैः सह मोदते॥[2]

वैशाख की दोनों नवमी में चण्डिका देवी की पूजा करनी चाहिए। इस व्रत का अनुष्ठान करने से मनुष्य उत्तम विमान में आरूढ़ होकर देवलोक में आदर पाता है।

ज्येष्ठ शुक्ल नवमी में उपवास के साथ उमादेवी की पूजा तथा ब्राह्मण कुमारियों को पूजा कर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।[3]

आषाढ़ में ऐरावत पर सवार इन्द्राणी की पूजा करनी चाहिए -

"श्रावणे मासि विप्रेन्द्रयः ~~कुर्यात्सम्भ्राँर्जिज~~ कुर्यान्तत्तभोजनम्।

पक्षयोरुपवासं वा कौमारीं चण्डिकां यजेत्॥"[4]

1- नारदीयपुराण 118/2,3 2- नारदीयपुराण, 118/8

3- ज्येष्ठ शुक्लनवम्यां तु सोपवासो जितेन्द्रियः।
उमां संपूज्य विधिवत्कुमारीभोजयेद्विजान्॥ (वही, 118/9)

4- नारदीयपुराण 118/13

श्रावण शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष की नवमी को चण्डिका देवी की पूजा करनी चाहिए।

"भाद्रे तु नवमी शुक्लानन्दा वा परिकीर्तिता
तस्या" यः पूजयेद्दुर्गाविधिवत्सोपचारकैः।"[1]

इसमें विधिपूर्वक सभी उपचारों से दुर्गा देवी की पूजा करनी चाहिए। यह भाद्रपद शुक्ल नवमी नन्दा नवमी के नाम से पुकारी जाती है। आश्विन नवमी में भी देवी पूजा का विधान है।

"कार्तिके शुक्लनवमी याऽक्षया सा प्रकीर्तिता।
तस्यामश्वत्थमूले वै तर्पणं सम्यगाचरेत्।
देवानां ऋषीणां च पितृणां चापि नारद
स्वशाखोक्तैस्तथा मंत्रैः सूर्यायार्घ्यं ततोऽर्पयेत्।।[2]

कार्तिक शुक्ल नवमी को अक्षय नवमी कहा जाता है। इसमें पीपल वृक्ष में देवता, पितर, ऋषी आदि का पूजन कर सूर्य को अर्घ्य दे। इस दिन दान जप आदि अक्षय होता है।

मार्गशीर्ष को शुक्ल नवमी नन्दिनी के नाम से जानी जाती है। इसमें व्रत रहकर जगदम्बा का पूजन करना चाहिए।[3]

पौष नवमी को महामाया तथा माघ शुक्ल में महानन्दा की पूजा करनी चाहिए।

1-नारदीयपुराण 118/16 2- नारदीयपुराण 118/23/24

3- मार्गेतु शुक्ल नवमी नंदिनी परिकीर्तिता।
तस्यामुपोषितो यस्तु जगदम्बा प्रपूजयेत्।। (ना0पु0 118/27)

4-नं-

"फाल्गुनामल पक्षस्य नवमी या द्विजोत्तम
आनन्दा सा महापुण्या सर्वपाप हरास्मृता।[1]

फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की जो नवमी है, उसका नाम आनन्दा है। वह महापुण्यदायिनी तथा अखिल पापहारिणी है।

अग्निपुराण में नवमी व्रतों की विधि :-

आश्विन शुक्लपक्ष की नवमी का नाम गौरी है उस दिन देवी का पूजन करना चाहिए।[2]

"पिष्टकाख्या तु नवमी पिष्टायी देविपूजनात्।
अष्टम्यामाश्विने शुक्ले कन्यार्के मूलमेयदा।"[3]

आश्विन शुक्लपक्ष की अष्टमी को जब सूर्य कन्याराशि तथा मूल नक्षत्र मे रहे तब पिष्टका नवमी व्रत करना चाहिए, इसे पिष्टका इसलिए कहते हैं क्योंकि इस दिन पिष्टी(पिन्नी) खाकर ही देवी का पूजन किया जाता है।

"अघार्दिना सर्वदा वै महती नवमी स्मृता।
दुर्गा तु नवगेहस्था स्यागारास्थिताऽथवा।"[4]

सभी नवमी व्रतों में श्रेष्ठतम नवमी व्रत है जिसे अघार्दना कहते हैं। उस दिन नवग्रहों में स्थित या एक ग्रह में स्थित देवी की पूजा करनी चाहिए।

1- नारदीयपुराण, 118/3।
2- या देवी पूज्या श्विने शुक्ले गौर्याख्या नवमी व्रतम्॥ (अग्निपु0 185/1)
3- वही, पृ0 185/2
4- वही, 185/3

"पूजिताऽष्टदशभुजा शेषा षोडशसत्कराः।
शेषाः षोडशहस्ताः स्युरञ्जनं डमरुं तथा।
रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका।
चण्डा चण्डवती पूज्या चण्डरूपाऽतिचण्डिका॥[1]

मध्य में अष्टादशभुजा महालक्ष्मी एवं दोनों पार्श्वों में शेष दुर्गाओं का पूजन करना चाहिए। अन्जन एवं डमरु के साथ निम्नलिखित क्रम से नवदुर्गाओं की स्थापना करनी चाहिए – रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, पूज्या, चण्डरूपा और अतिचण्डिका।

आश्विन शुक्ल में नवरात्र व्रत का विधान षोडशोपचार से निर्दिष्ट है और उनकी लगभग 15 पद्यों में स्तुति की गयी है। एक पद्य जो मार्कण्डेय पुराणस्थ दुर्गा सप्तशती के पद्य के सदृश है –

"जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥[2]

इस मंत्र से पूजा करने के बाद देवी को पंचामृत से स्नान कराकर ध्वजादि से युक्त सादर उनकी शोभायात्रा निकालनी चाहिए।

1- अग्निपुराण, 185/4/5

2- अग्निपुराण, 185/14

नारदीयपुराण में दशमी व्रतों की विधि :-

"चैत्र शुक्लदशम्यां तु धर्मराज प्रपूजयेत्।

तत्कालसम्भवैः पुष्पैः फलैर्गन्धादिभिस्तथा।"[1]

चैत्र शुक्ल दशमी में तत्काल सम्भव, फल, फूल आदि से धर्मराज की पूजा करनी चाहिए और चौदह ब्राह्मणों को भोजन करावे। उपवास करके, ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

"दशम्यां माधवे शुक्ले विष्णुमभ्यर्च्यमानवः।

गन्धाद्यैरुपचारैश्च श्वेतपुष्पैः सुगन्धिभिः।"[2]

वैशाख की दशमी को विधिवत गंध, पुष्प, अक्षत, श्वेतपुष्पों सहित सभी उपचारों से विष्णु की पूजा करनी चाहिए।

ज्येष्ठमास शुक्ल दशमी को दशहरा कहते हैं। ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, हस्तनक्षत्र, बुध दिन, दशमी तिथि, गरकरण आनन्दयोग, व्यतीपात, कन्या के चन्द्र और वृष के सूर्य इनका योग होने से दशहरा पर्व के नाम से विख्यात है। गंगा पूजा का विशेष विधान है।[3]

"श्रावणे शुक्ल दशमी सर्वाशापरिपूर्तिदा।

अस्यां शिवार्चनं शस्तं गन्धाद्यैरुपचारकैः।"[4]

1- नारदीयपुराण, 118/2 2- नारदीयपुराण 119/5

3- ज्येष्ठः शुक्लदलं हस्तो बुधश्च दशमीतिथिः।

गरानन्दव्यतीपाताः कन्येन्दुवृषभास्कराः" (नारदीयपुराण, 119/8)

4- नारदीयपुराण 119/12

आषाढ़ तथा श्रावण की दशमी में गन्ध, पुष्प अक्षत सभी उपचारों से शिव की पूजा करने से सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

भाद्र शुक्ल दशमी को दशावतार व्रत किया जाता है। इसमें किसी जलाशय में स्नान करके मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, त्रिविक्रम, राम, कृष्ण, परशुराम बौद्ध और कल्कि इन दशावतारों का पूजन करना चाहिए।[1]

"आश्विने शुक्ल दशमी विजया सा प्रकीर्तिता।

चतुर्गोमयपिण्डानि प्रतिस्थाप्य गृहाङ्गणे।"[2]

आश्विन शुक्ल दशमी को विजयादशमी कहते हैं। इसमें गोबर के चार पिण्डों में आवाहन कर चार पात्रों धान्य चाँदी रखकर उनकी पूजा करें। आश्विन शुक्ल दशमी में सायंकाल में तारा उदय होने के समय 'विजय काल' रहता है। वह सब कार्यों को सिद्ध करता है। दशमी पूर्वविद्धा, निर्विद्ध, परविद्धा शुद्ध और श्रावणयुक्त सूर्योदय व्यापिनी सर्वश्रेष्ठ होती है।

'दशम्यां कार्तिके शुक्ले सार्वभौमव्रतं चरेत्।

कृतोपवासो वैकाशी निशीथेऽपूपकादिभिः ॥[3]

कार्तिक शुक्ल दशमी में सार्वभौम व्रत करना चाहिए। एक दिन उपवास या एकभुक्त रहते हुए रात्रि में चतुर्दिक् पूए आदि की बलि चढ़ावे।

1- मत्स्यं कूर्मं वराहं च नरसिंहं त्रिविक्रमम्।

राम रामं च कृष्णं च बौद्धं कल्किनमेव च॥ (नारदीयपुराण, 119/16)

2- नारदीयपुराण, 119/20

3- वही, 119/31

अगहन शुक्ल दशमी में आरोग्य व्रत कराना चाहिए। इस दिन गंध आदि उपचारों से दश विप्रों की पूजा करनी चाहिए।

'माघ शुक्ल दशम्यां तु सोपवासो जितेन्द्रियः।
देवानांगिरसो नाम दशसम्यक्समर्चयेत्॥'[1]

माघ शुक्ल दशमी में उपवास तथा इन्द्रिय संयम करते हुए आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, बर्हिष्मान्, गोविष्ठ, दत्त तथा सत्य नामक दश आंगिरस के देवों की स्वर्णमयी प्रतिमाओं का गंध आदि उपचारों से पूजन करना चाहिए।

अग्निपुराण में दशमी व्रतों की विधि :-

'दशम्यामेकभक्ताशी समाप्ते दशधेनुदः।
दिशश्च काञ्चनीर्दद्याद् ब्राह्मणाधिपतिर्भवेत॥'[2]

दशमी के दिन व्रती को एक बार भोजन करके व्रत समाप्ति पर दश गायों का दान करना चाहिए। ब्राह्मणों को दक्षिणा में सुवर्ण देना चाहिए। ऐसा करने से व्रत करने वाला ब्राह्मणाधिपति हो जाता है।

नारदीयपुराण में द्वादशमास के एकादशी व्रत विधि :-

'चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां सोपवासो नरोत्तमः।
कृत्वा च नियमान्सर्वान्वक्ष्यमाणान्दिनत्रये।'[3]

चैत्र शुक्ल एकादशी उत्तम मानवउपवास करते हुए वक्ष्यमाण नियमों का तीन दिनों तक पालन करे।

1- नारदीयपुराण, 119/55　　2- अग्निपुराण, 186/1
3- नारदीयपुराण, 120/5

"वद्धिनी परदिने पूजयेन्मधुसूदनम्।

स्वर्णान्नकन्याधेनूनां दानमत्र प्रशस्यते॥"[1]

वैशाख में मधुसूदन कापूजा, स्वर्ण अन्न, कन्या तथा धेनु का दान बतायागया है। वैशाख शुक्ल एकादशी में पुरुषोत्तम की पूजा का विधान बताया है।

ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी में त्रिविक्रम की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार बारहों मास की एकादशी में विष्णु की पूजा कर ब्राह्मणों को भोजन देकर उन्हें दक्षिणा देनी चाहिए।[2]

' सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णु लोकं व्रजेन्नरः।

ज्येष्ठस्य शुक्लैकादश्यां निर्जलां समुपोष्य तु॥'[3]

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को निर्जला एकादशी या भीमसेनी एकादशी भी कहते हैं। इसमें व्रत रहने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है।

"ऊर्जस्य शुक्लैकादश्यां समुपोष्य प्रबोधनीम्।

केशवं बोधयेद्रात्रौ सुसंगीतादिमंगलैः॥[4]

कार्तिक शुक्ल एकादशी को हरिप्रबोधनी के नाम से पुकारते हैं। इस दिन गीत आदि मांगलिक स्तोत्र तथा वाद्यों से भगवान को जगाना चाहिए। इसमें द्राक्षा, अनार, केला आदि का नैवेद्य लगाना चाहिए।

1-नारदीयपुराण 120/9

2- द्वादश्यां नैत्यकं कृत्वा समभ्यर्च्य त्रिविक्रमम्।

ततो द्विजाग्र्यान्संभोज्य दत्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम्।' ना०पु० 120/13

3- ना०पु० 120/14

4- ना०पु० 120/5।

"माघस्य कृष्णैकादश्यां षट्तिलं समुपोष्य वै।
स्नात्वा दत्वा तर्पयित्वा हुत्वा भुक्त्वा समर्च्य च।'[1]

माघ कृष्ण एकादशी का नाम षटतिला है। उस दिन उपवास करते हुए स्नान, दान, तर्पण हवन तथा अर्चना करना चाहिए।

इस प्रकार कृष्ण और शुक्ल की एकादशियों को मोक्षदायक व्रत कहा गया है। इसमें चार समय तक भोजन न करने का विधान बताया गया है। भगवान विष्णु की प्रार्थना की विधि भी दर्शायी गयी है —

'सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुद्ध्येत च जगत्सर्वं चराचरम्॥'[2]

जगन्नाथ, आपके सो जाने पर सम्पूर्ण जगत सो जाता है और आपके जागने पर सकल चराचर जगत जागरित होता है।

'रामचन्द्रिका' में भगवान की मूर्ति को रथ पर चढ़ाकर घण्टा आदि बाजों की आवाज के सहित जलाशय में ले जाकर जल में शयन करने का विधान भी बताया गया है।

नारदीय पुराण में एकादशी व्रत का वर्णन कथाओं उपकथाओं के माध्यम से किया गया है।

1- नारदीयपुराण, 120/67

2- नारदीयपुराण, 120/23

अग्निपुराण में एकादशी व्रत विधि :-

'एकादश्यां न भुंजीत पक्षयोरुभयोरपि।

द्वादश्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥

दोनों पक्ष की एकादशी में भोजन नहीं करना चाहिए।

एकादशी में द्वादशी का योग पड़ जाने से भगवान विष्णु का सामीप्य प्राप्त हो जाता है।

उसमें व्रत करके त्रयोदशी में पारण करने से सौ यज्ञों का फल प्राप्त होता है, जिस दिन एक कला तक एकादशी रहने के बाद द्वादशी लग जाती है।[2]

तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे।

दशम्येकादशी मिश्रा नोपोष्या नरकप्रदा।'[3]

उस दिन व्रत करने से त्रयोदशी में पारण करने से भी सौ यज्ञों का ही फल प्राप्त होता है। एकादशी यदि दशमी से मिश्रित हो तो उसमें उपवास नहीं करना चाहिए क्योंकि वह नरक को देने वाली होती है।

'एकादश्यां सिते पक्षे पुष्यर्क्षं तु यदा भवेत

सोपोष्याऽक्षय्यफलदा प्रोक्ता सा पापनाशिनी।"[4]

शुक्ल पक्ष की एकादशी में यदि पुष्यनक्षत्र तो उसमें अवश्य उपवास करना चाहिए, क्योंकि वह पापनाशिनी तथा अक्षय फलदायिनी हुआ करती है।

1- अग्निपुराण, 187/2

2- तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे।
एकादशी कला यत्र परतो द्वादशी मता।' (अग्निपुराण, 187/3)

3- अग्निपुराण, 187/4 4- वही, 187/6

जो एकादशी या द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है, उसका नाम विजया है। वह भक्तों को विजय देने वाली हुआ करती है।[1]

समीक्षा :-

व्यास जी के कथनानुसार यह अवश्य सत्य है कि अधिमास सहित एक वर्ष की पच्चीस एकादशी न की जा सकें तो केवल निर्जला एकादशी करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। निर्जला एकादशी करने वाला व्यक्ति अपवित्र अवस्था के आचमन के सिवा बिन्दुमात्र जल भी न ग्रहण करे, यदि किसी प्रकार उपयोग में ले लिया जाय तो उससे व्रतभंग हो जाता है। दृढ़तापूर्वक नियम पालन के साथ निर्जल उपवास करके द्वादशी को स्नान करे और सामर्थ्य के अनुसार सुवर्ण और जलयुक्त कलश देकर भोजन करे तो सम्पूर्ण तीर्थों में जाकर स्नान दानादि करने के समान फल प्राप्त होता है।

सनातन धर्मानुयायी हिन्दुओं में एकादशी के व्रत की बड़ी महिमा है। यह सर्वाधिक लोकप्रिय व्रत है। आयुर्विज्ञान की दृष्टि से पन्द्रह दिनों बाद पड़ने वाला यह व्रत स्वास्थ्य के लिए भी बड़ा हितकर है, चौदह दिनों तक लगातार खाते-पीते रहने से श्रान्त आमाशय को एकादशी का यह विश्राम बड़ा शक्तिदायक सिद्ध होता है।

हमारे पूर्वजों ने इसीलिए प्रत्येक मास में दो-दो एकादशियों के व्रतों का धर्मशास्त्रों में विशेष माहात्म्य बतलाया है। प्रायः एकादशी के व्रत का पालन करने वाले कभी बीमार नहीं होते और उन्हें दीर्घायु भी मिलती है, ऐसा देखा जा चुका है।

1- एकादश्यां विष्णु पूजा कार्या सर्वोपकारिणी।

धनवान्पुत्रवाल्लोके विष्णुलोके महीयते।'' (अग्निपुराण, 187/9)

नारदीयपुराण में द्वादशी व्रतनिर्णय :-

नारदीय पुराण में नारद जैसे जिज्ञासु को सनक जैसे भगवत्तत्ववेत्ता श्री हरि को प्रसन्न करने वाले द्वादशी व्रत का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम चैत्रशुक्ल द्वादशी व्रत की तिथि एवं काल का निर्णय कर बतलाते हैं कि –

'चैत्रस्य शुक्लद्वादश्यां मदनव्रतमाचरेत्।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं सिततंडुलपूरितम्।'[1]

चैत्र शुक्ल द्वादशी में मदन व्रत का आचरण करना चाहिए। इस दिन गुड़ के जल से स्नान कर वेदी पर चावलों से भरा हुआ कलश स्थापित करें। ताँबे के पात्र में गुड़ तथा सुवर्ण की मूर्ति रखकर उसकी गन्धा पुष्पादि से पूजा करें। ब्राह्मण भोजन कराकर शैय्या दान करें। एक वर्ष पर्यन्त करने का विधान है।

वैशाख शुक्ल द्वादशी को भगवान मधुसूदन का पूजन करके व्रत करे तो उससे अग्निष्टोम के समान फल प्राप्त होता है।[2] रात्रि में जागरण के पश्चात् तीन समय पूजन करके 'नमस्ते मधुसूदनं' मन्त्र से घी की एक सौ आठ आहुति देकर होम करें।

ज्येष्ठ मास की द्वादशी को उपवास करके चार सेर दूध से 'नमामि विष्णु ' इस मन्त्र से स्नान पूजन, खीर की 108 आहुति पूजन के पश्चात् प्रातः काल दक्षिणा सहित बीस पुआ दान करे। दान का मन्त्र इस प्रकार है –

1- नारदीयपुराण 121/2
2- वैशाखमासि द्वादश्यां पूजयेन्मधुसूदनम्।
अग्निष्टोममवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति।' (महाभारते दानधर्मे व्रतपरिचय 94)

"देवदेव जगन्नाथ प्रसीद परमेश्वर।

उपादने च संग्राहय मयाभीष्ट प्रदोभव।'[1]

देवताओं के देव भगवान विष्णु आप मेरे द्वारा दिया गया भोजन एवं प्रसाद स्वीकार करें।

"आषाढ़ शुक्ल द्वादश्यां द्विजान्द्वादश भोजयेत्।

आषाढ़ शुक्ल द्वादशी में बारह ब्राह्मणों को मिष्ठान्न भोजन कराने इसमें 'नमस्ते वामनाय' इस मन्त्र से स्नान, दूर्वा, घी की 108 आहुति, रात्रि जागरण कर दक्षिणा के दही, अन्न एवं नारियल ब्राह्मण को दान देकर उसके साथ भोजन करें।

श्रावण द्वादशी में श्रीधर की पूजा कर उत्तम ब्राह्मणों को दही-भात खिलाकर चांदी की दक्षिणा दे।

भाद्रपद द्वादशी में श्रीधर की पूजा करें। इसमें उपवास करके एक कलश दूध से स्नान 'हृषीकेश नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्र से मधु मिश्रित चावल से 108 आहुति दें।

"तदग्रे भोजयेद्विप्रान्द्वादशैव च।

सौवर्णी दक्षिणां दत्वा विष्णु प्रीतिकरो भवेत्॥[3]

इस प्रकार बारह ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराने से एवं ब्राह्मण को सोने का दान देने से विष्णु का प्रिय होता है।

'द्वादश्यामिष शुक्लायां पद्मनाभं समर्चयेत।

गंधाद्यैरुपचारैस्तु तदग्रे भोजयेद्विजान्॥'[4]

1- नारदीयपुराण, 17/55

2- नारदीयपुराण 121/19

3- वही, 121/24

4- वही, 121/25

आश्विन मास की द्वादशी में भी उपवास करके, गन्ध, अक्षत, पुष्प, सभी उपचारों से पद्मनाभ की पूजा करनी चाहिए, उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

कार्तिक द्वादशी को गोवत्स द्वादशी कहते हैं। इसमें वत्स के साथ गौ की आकृति बनाकर, चन्दन, फूल, अक्षत, माला, आभि वे पत्ते, गन्धादि से पूजन करे।[1]

इस द्वादशी को उपवास के पश्चात् चार सेर दूध, दही अथवा घी से 'ओम् नमो दामोदराय' इस मंत्र से स्नान कराकर मधु, घी, एवं तिल की एक सौ आठ आहुति प्रदान करे। पांच प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से अन्न ब्राह्मण को दें। एवं ब्राह्मण भोजन कराके स्वयं पारण करे।

पौष शुक्ल द्वादशी को सुजन्म द्वादशी भी कहते हैं —

"तत्र स्नात्वा विधानेन गृह्णीयाद्द्वादशीव्रतम्।
पीत्वा गोमूत्रमाद्यादौ तां च कृत्वा प्रदक्षिणाम्।"[2]

इसमें स्नान करके विधिपूर्वक द्वादशी के व्रत को ग्रहण करना चाहिए गोमूत्र पीकर उसके बाद दक्षिणा देनी चाहिए।

"माघस्य शुक्लद्वादश्यां विष्णु चिन्तन तत्परः ॥"[3]

माघ शुक्ल द्वादशी को विष्णु की पूजा में तत्पर रहना चाहिए इसे षटतिला द्वादशी भी कहते हैं। इसमें तिलों से विष्णु का पूजन करना चाहिए, तिलों के तेल का दीपक जलाना चाहिए। तिलों का हवन करके तिलों का ही भोजन करना

1- कार्तिके कृष्णपक्षे तु गोवत्सद्वादशीव्रतम्। तत्र वत्सयुतां गां तु समालिख्य स्रगादिभिः।
चंदनाद्यैस्तथा पुष्पमालाभिः प्रार्चयेत्ततः ॥ — (ना0पु0 121/28)

2- नापुराण, 121/77

3- वही, 121/86

चाहिए।

फाल्गुन द्वादशी में सुवर्ण की प्रतिमा में हरि का पूजन करना चाहिए गन्ध, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य आदि से पूजन करे और बारह ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा देनी चाहिए।'[1]

मूर्ति और अर्घ्यदान के पात्र का सुवर्णमय होना इसलिए आवश्यक है क्योंकि देवों के कार्य में सुवर्ण और पितरों के कार्य में चांदी का उपयोग किया जाता है। वामन अवतार भी देवयोनि हैं अतः उनके लिए सुवर्ण का उपयोग करना चाहिए।

<u>अग्निपुराण में द्वादशी व्रतों की विधि :-</u>

'उपवासेन भक्ष्येण चैव द्वादशिकव्रती।
चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां मदनं हरिम्॥'[2]

चैत्र मास में शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन मदन द्वादशी व्रत किया जाता है। उस दिन भोग और मोक्ष के इच्छुक को मदन गोपाल की पूजा करनी चाहिए।

माघ द्वादशी में भीम द्वादशी व्रत करने वाला व्यक्ति 'ऊँ नमो नारायणाय' मन्त्र से विष्णु का यजन करे, इससे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। फाल्गुन शुक्ल द्वादशी में गोविन्द द्वादशी व्रत करना चाहिए।'[3]

आश्विन में विशोक द्वादशी व्रत करके भगवान विष्णु की पूजा करनी चाहिए। मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की द्वादशी में कृष्ण की पूजा करके लवणदान करना चाहिए।[4]

1- अन्त्ये सितायां द्वादश्यां सौवर्णी प्रतिमां हरेः।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्दद्याद्वेदविदे द्विज।
द्विषट्क
विकर्णं सख्यान्विप्रांश्च भोजयित्वा च दक्षिणाम्॥ (ना०पु० 121/88)

2- अग्निपुराण, 188/1

3- माघशुक्ले तु द्वादश्यां भीमद्वादशिक व्रती। नमो नारायणायेति यजेद्विष्णुं ससर्वभाक्।
फाल्गुने च सिते पक्षे गोविन्द द्वादशीव्रती। (अग्निपुराण 188/3, 4)

4- विशोक द्वादशीकारी यजेदाश्वयुजे हरिम्। लवणं मार्गशीर्षे तु कृष्णमभ्यर्च्य यो नरः 188/5

'गोवत्सं पूजयेद्भाद्रे गोवत्स द्वादशी व्रती।

माघ्यां तु समतीतायां श्रवणेन तु संयुता

द्वादशी या भवेत् कृष्णा प्रोक्ता सा तिलद्वादशी।'[1]

भाद्रपद में गोवत्स द्वादशी करने वाले व्यक्ति को गाय के बछड़े का पूजन करना चाहिए। माघ कृष्णपक्ष की द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो वह तिल द्वादशी कहलाती है। इस दिन तिल से स्नान कर ब्राह्मणों को तिलों तथा फल का दान करना चाहिए।

'सुमति द्वादशीकारी फाल्गुने तु सिते यजेत्।

जय कृष्ण नमस्तुभ्यं वर्षं स्याद्भुक्तिमुक्तिगः ॥[2]

फाल्गुन शुक्ल पक्ष में 'सुमति द्वादशी' व्रत करने वाले व्यक्ति को 'जयकृष्णनमस्तुभ्यम्' कहकर पूजा करनी चाहिए।

श्रवण द्वादशी व्रत :-

'संगमे सरितां स्नानाच्छ्रवणद्वादशी फलम्।

बुधश्रवणसंयुक्ता दानादौ सुमहाफला।'[3]

नदियों के संगम में स्नान करने से श्रवण द्वादशी व्रत का फल, प्राप्त होता है। बुध दिन तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी में दान आदि करने से महान फल प्राप्त होता है।

1- अग्निपुराण, 188/6/7

2- वही, 188/14

3- वही, 189/2

जल से भरे हुए घड़े के ऊपर स्वर्णमयी शंख, चक्र, धारण करने वाले वामन रूपधारी भगवान विष्णु का आवाहन करना चाहिए फिर त्रयोदशी में पारण करना चाहिए।[1] उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भोजन करना चाहिए।

अखण्ड द्वादशी व्रत :-

'मार्गशीर्षे सिते पक्षे विष्णु द्वादश्यां समुपोषितः।'[2]

मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की द्वादशी में उपवास कर विष्णु का पूजन करना चाहिए। व्रत करने वाले व्यक्ति को पंचगव्य मिश्रित जल से स्नान करके उसका पान भी करना चाहिए और द्वादशी को ही यव तथा धान्य से भरा हुआ पात्र ब्राह्मण को देना चाहिए[3] श्रवण से कार्तिक के अन्त में व्रत की समाप्ति करना चाहिए, इससे सात जन्मों में किए हुए व्रतों की अपूर्णता सफल हो जाती है।[4]

नारदीयपुराण में त्रयोदशी व्रतों की विधि :-

शिव जी की प्रसन्नता और प्रभुत्व की प्राप्ति की प्रयोजन से प्रत्येक मास के कृष्ण और शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी व्रत किया जाता है -

'यदीयं शनिनायुक्ता सा महावारुणी स्मृता।
गंगायां यदि लभ्येत् कोटिसूर्यग्रहाधिका।'[5]

1- उदकुम्भे स्वर्णमयं त्रयोदश्यां तु पारणम्। आवाहयाभ्यर्च विष्णुं वामनं शंखचक्रिणम्।
—अग्निपुराण 189/4

2- अग्निपुराण 190/1

3- पंचगव्यजले स्नातो यजेत्तत्प्राशनो व्रती। यव व्रीहि युतं पात्रं द्वादश्यां हि द्विजोऽर्पयेत। 190/2

4- नारदीयपुराण 122/14

5- रावाशुक्लत्रयोदश्यां कामदेव व्रतं स्मृतम्।
तत्र गंधादिभिः कामं पूजयेद्रुवासवात्।। (ना०पु० 122/16

चैत्र शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी यदि शनि दिन से युक्त हो तो उसे महा वारुणी कहते हैं। इस योग में गंगादि तीर्थों में स्नान करने से शतशः सूर्य ग्रहणों के समान फल प्राप्त होता है।

वैशाख शुक्ल त्रयोदशी को कामदेव व्रत किया जाता है। इसमें उपवास रहकर गन्ध-पुष्प, अक्षत आदि से कामदेव की पूजा करनी चाहिए।[1]

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को दौर्भाग्य शमन व्रत किया जाता है –

"तत्र स्नात्वा नदीतोये पूजयेच्छुचिदेशजम्।

श्वेतमंदारमर्कं वा करवीरं च रक्तकम्॥[1]

इसमें नदी के किनारे स्नान करके उस देश के सफेद अर्क, लाल कनेर एवं सपुष्प नीम का पूजन करे।

आषाढ़ एवं श्रावण शुक्ल त्रयोदशी में भी भगवान शिव का पूजन करना चाहिए। इसमें सोने, चाँदी अथवा ताँबे की कामदेव की मूर्ति बनाकर गंध पुष्प अक्षत आदि से पूजा करनी चाहिए।

"भाद्रशुक्ल त्रयोदश्यां गोत्रिरात्रव्रतं स्मृतम्।

लक्ष्मीनारायणं कृत्वा सौवर्णं वापि राजतम्॥[2]

भाद्रशुक्ल त्रयोदशी को गोत्रिरात्र व्रत करना चाहिए। इसमें लक्ष्मी नारायण की स्वर्ण अथवा चाँदी की मूर्ति बनाकर पूजा कर गो की पूजा करे। ब्राह्मणों को दान दें।

1- नारदीय पुराण 122/19

2- नारदीय पुराण 122/33

"इषे शुक्ल त्रयोदश्यां त्रिरात्रीकव्रतम्।

हैमं हृषीकं निर्माय पूजयित्वा विधानतः ॥[1]

आश्विन शुक्ल त्रयोदशी में त्रिरात्रीक व्रत किया जाता है। इसमें अशीक कीमूर्ति बनाकर पूजा का विधान है।

ऊर्जे कृष्णत्रयोदश्यामेकभक्तः समाहितः।

प्रदोषे तैल दीपं तु प्रज्वाल्यार्च्येद्यत्नतः ॥[2]

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी में एकभुक्त तथा इन्द्रियसंयम कर प्रदोषकाल में दीप जलाना चाहिए।

'घृतेन दीपयेद्दीपान्गन्धाद्यैः पूजयेच्छिवम्।

फलैर्नानाविधैश्चैव नैवेद्यैरपि नारद।'[3]

आश्विन शुक्ल त्रयोदशी में घी के दीपक जलाकर इनकी नाना प्रकार के फलों गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि से पूजा करनी चाहिए।

मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी को नदी, तालाब या द्वार पर स्नान कर गन्ध पुष्प अक्षत आदि से विधिपूर्वक पूजा कर ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए।[4] माघ में माघ स्नान व्रत तीन दिन का करना चाहिए।

"नमस्कृत्य जगन्नाथं प्रारभ्मे धनदव्रतम्।

महाराजं यक्षपतिं गंधाद्यैरुपचारकैः ॥[5]

फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी में उपवास कर जगन्नाथ को नमस्कार कर कुबेर व्रत प्रारम्भ करे। पट्ट पर गेरू से लिखित महाराज यक्षपति की गंध आदि उपचारों से भक्तिपूर्वक पूजा करे।

1- नारदीयपुराण 122/41 2- नारदीयपुराण, 122/46

3- वही, 122/50

4- गंधाद्यैरुपचारैस्तु पूजयित्वा विधानतः। घटे अंगलपट्टे वा भोजयेद्द्विजदंपती।
— वही, 122/60.

5- वही, 122/76

अग्निपुराण में त्रयोदशी व्रतों की विधि :-

सर्वप्रथम इसका अनुष्ठान कामदेव ने किया था इसलिए इसका नाम अनंग त्रयोदशी पड़ा।[1]

"त्रयोदश्यां मार्गशीर्षे शुक्लेऽनङ्गहरं यजेत्।

मधु संप्राशयेद्रात्रौ घृतहोमस्तिलाक्षतैः,[2]

मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी में भगवान शंकर का पूजन करना चाहिए। उस दिन रात्रि में शहद चखकर घी, तिल- अक्षत से हवन करना चाहिए।

पौष मास की त्रयोदशी में कृष्ण की पूजा तथा हवन कर चन्दन का भक्षण करना चाहिए।[3] माघ मास में भी शिव का पूजन कर मोती खाने से व्रती स्वर्गगामी होता है।

'कक्कोलं प्राश्य नीरं तु फाल्गुने पूजयेद्व्रती।

कर्पूराशी स्वरूपं च चैत्रे सौभाग्यवान्भवेत्॥[4]

फाल्गुन मास में केवल जल पीकर शिव भगवान का पूजन करना चाहिए। चैत्र में कपूर खाकर महेश्वर की पूजा करने से व्रत करने वाला सौभाग्यवान होता है। आषाढ़ भादों एवं आश्विन में भी शंकर की पूजा करनी चाहिए। कार्तिक की त्रयोदशी में सोमरस पीकर विश्वेश्वर का पूजन करें।[5]

इस प्रकार वर्ष भर करके भगवान की स्वर्णमयी प्रतिमा को आम्रपत्र एवं वस्त्र से ढककर पूजन करना चाहिए।

1- अनंगेन कृतामादौ वक्ष्येऽनङ्गत्रयोदशीम्। (अग्निपुराण 191/1)

2- वही, 191/2

3- पौषे योगेश्वरं प्रार्च्य चन्दनाशी कृताहुतिः। (वही, 191/3)

4- वही, 191/4 5- विश्वेश्वरं कार्तिके तु मदनाशी यजेद्व्रती। (वही। 191/8)

नारदीयपुराण में चतुर्दशी व्रतों की विधि :-

"वितानध्वजछत्राणि दत्वा पूज्याश्च मातरः ।
एवं कृत्वार्चनं विप्र सोपवासोऽथवैकभुक्॥[1]

चैत्र शुक्ल चतुर्दशी में चंदोवा, ध्वज, छत्र देकर मातृकाओं की पूजा करनी चाहिए एवं ब्राह्मण की पूजा कर एकभुक्त उपवास करना चाहिए। वैशाख कृष्ण चतुर्दशी में शिवपूजन करने से संतान एवं धन की प्राप्तिहोती है। वैशाख शुक्ल चतुर्दशी में नृसिंह भगवान की पूजा करनी चाहिए।[2] इसी प्रकार ज्येष्ठ आषाढ़, श्रावण में शिव की पूजा का विधान बताया गया है।

"भाद्रशुक्ल चतुर्दश्यामनन्तव्रतमुत्तमम्।
कर्तव्यमेकभुक्तं हि गोधूमप्रस्थपिष्टकम्॥[3]

भाद्र शुक्ल चतुर्दशी को अनन्त व्रत किया जाता है। इसमें चौकी या पटे पर भगवान अनन्त की मूर्ति स्थापित कर पूजा के बाद एक समय भोजन कर विधान बताया गया है।

"सर्पश्वापदवज्राद्यैर्हतानां ब्रह्मघातिनाम्।
चतुर्दश्यां गयाश्राद्धमेकोद्दिष्टं विधानतः ॥[4]

1- नारदीयपुराण, 123/3

2- शिवव्रतं प्रकर्तव्यं धनसंततिमिच्छता'
राधाशुक्लचतुर्दश्यां श्री नृसिंह व्रतं चरेत्।(नारदीयपुराण 123/8)

3- नारदीयपुराण 123/23

4- वही, 123/40

जो मनुष्य कुत्ता के काटने और विष शस्त्रादि के घात से मरे या ब्रह्मघाती हुए हों तो उनका आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को गया में श्राद्ध करने का विधान बताया गया है।

आश्विन शुक्ल चतुर्दशी में धर्मराज की पूजा कर ब्राह्मण को दान दे।[1] कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को तिल के तेल का उबटन लगाने का विधान बताया गया है। स्नान करके पूजा करने से नरक में जाने का भय नहीं रहता है।[2]

"द्रोणपुष्पैर्बिल्वदलैरर्कपुष्पैश्च केतकैः।
पुष्पैः फलैर्मिष्टान्नैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि।"[3]

कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी में द्रोण पुष्प, बिल्वपत्र, अर्कपुष्प, केतकीपुष्प, अनेकों फलों तथा मीठे अन्न एवं नैवेद्य आदि के द्वारा पूजा की विधि बताई गयी है।

इसी प्रकार मार्गशीर्ष पौष में शिव की पूजा कही गयी है। माघ कृष्ण चतुर्दशी को यम के तर्पण की विधि है।[4]

"अन्त्यकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतं द्विज।
निर्जलं समुपोष्यात्र दिवा नक्तं प्रपूजयेत्।"[5]

1- इषशुक्ल चतुर्दश्यां धर्मराजं द्विजोत्तम। (ना0पु0।23/43

2- ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां तैलाभ्यंगं विधूदये।

कृत्वा स्नात्वार्चयेद्धर्मं नरकाद्भयं लभेत।' (ना0पु0 ।23/46)

3- नारदीयपुराण ।23/5।

4- माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणमीरितम्।" (नारदीयपुराण ।23/66)
5- नारदीय पुराण ।23/69

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी में शिवरात्रि व्रत करना चाहिए। दिन में निर्जल उपवास रहकर रात्रि में जल, बिल्वपत्र, धूप, दीप, नैवेद्य से शिव की पूजा करनी चाहिए।

अग्निपुराण में चतुर्दशी व्रतों की विधि :–

कार्तिक की चतुर्दशी में निराहार रहकर शिव की पूजा करनी चाहिए।[1]

"कार्तिके च चतुर्दश्यां कृष्णायां स्नानकृत्सुखी।

आराधिते महेन्द्रे तु ध्वजाकारासु यष्टिषु।"[2]

कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में ध्वजाकार स्तम्भों में महेन्द्र की आराधना करने से सुख प्राप्त होता है।

"कृष्णाष्टम्यां तु नक्तेन तथा कृष्णचतुर्दशीम्।

इह भोगानवाप्नोति परत्र च शुभां गतिम्॥"[3]

कार्तिक कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी में रात्रि में व्रत करने से इस लोक में भोग तथा परलोक में शुभगति की प्राप्ति होती है। भाद्रशुक्ल पक्ष की चतुर्दशी में पिसे हुए चावलों का पुआ बनाकर नैवेद्य चढ़ाना चाहिए तत्पश्चात् उसका आधा भाग ब्राह्मणों को तथा आधा स्वयं ग्रहण करना चाहिए।'[4]

1- कार्तिके तु चतुर्दश्यां निराहारो यजेच्छिवम्।' (अग्निपुराण 192/1)

2- अग्निपुराण 192/6

3- वही, 192/5

4- शालिप्रस्थस्य पक्वस्य पिष्टस्य पूपनाम्नः घृतस्य च।

अर्धं विप्राय दातव्यमर्धमात्मनि योजयेत्॥ (अग्निपुराण 192/8)

नारदीयपुराण में वार्षिक पूर्णिमा एवं अमावस्या व्रत-विधि ,

"जल्या सान्नोदकं कुम्भं प्रदद्यात्सोमतुष्टये।[1]

चैत्र एवं वैशाख पूर्णिमा में चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिए जल से भरा घड़ा दान करे। आषाढ़ पूर्णिमा में चतुर्भुज भगवान की पूजा करे। भाद्रपद में व्रत 15 वर्षों तक करें उमा महेश्वर की पूजा स्वर्ण अथवा चाँदी की मूर्ति में करें तत्पश्चात् उद्यापन करे। आश्विन में लक्ष्मी की पूजा एवं कार्तिक में वरुण एवं अग्नि की पूजा करनी चाहिए।

मार्गशीर्ष पूर्णिमा में शौचादि करके 'नमो नारायणाय' मन्त्र से आवाहन करके गीत, वाद्य, पुराण पाठ के द्वारा चौकोर वेदी बनाकर पुरुषसूक्त से हवन उपवास व्रतादि के द्वारा भगवान को अर्पण कर इस प्रकार मंत्र पढ़े -

"पौर्णमास्यां निराहारः स्थित्वा देव तवाज्ञया।

भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरणं भव॥"[2]

अर्थात् हे पुण्डरीकाक्ष, मैं पूर्णिमा को निराहार व्रत रखकर दूसरे दिन आपकी आज्ञा से भोजन करूँगा। आप मुझे अपनी शरण देवें। इस प्रकार चन्द्रमा को अर्घ्य दें और उसकी ओर मुख करके प्रार्थना करें -

"नमः शुक्लांशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः।

रोहिणी पतये तुभ्यं लक्ष्मी भ्राते नमोस्तुते॥"[3]

हे भगवन्, आप श्वेत किरणों से सुशोभित होते हैं। आपको नमस्कार है। आप द्विजों के राजा है, आपको नमस्कार है। आप रोहिणी के पति हैं आपको नमस्कार है आप लक्ष्मी के भाई हैं आपको नमस्कार है।

1- नारदीयपुराण 124/2

2- नारदीयपुराण, 18/13

3- वही, 18/17

इस प्रकार पूर्णिमा को मण्डप बनाकर, कलश, सर्वतोभद्र आदि की पूजा के साथ, सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबे की मूर्ति की सविधि पूजा कर ब्राह्मण को दक्षिणा के साथ मूर्ति दान करे तत्पश्चात् बान्धवों के साथ भोजन करे।

इस प्रकार जो इस व्रत को धारण करते हैं वे सब पापों से मुक्त होकर दस पीढ़ियों के साथ स्वर्गलोक को जाते हैं। अमावस्या तिथि पितरों की तिथि है। इसमें चैत्र, वैशाख, आषाढ़, श्रवण, भाद्रपद, मार्गशीर्ष पौष तथा फाल्गुन आदि में सभी मासों में श्राद्ध एवं तर्पण का विधान बताया गया है।

कार्तिक अमावस्या में दीप जलाने एवं लक्ष्मी के पूजन की विधि है जो दीपावली के नाम से विख्यात है।

अग्निपुराण में वार्षिक पूर्णिमा एवं अमावस्या व्रतविधि :-

अग्निपुराण में पूर्णिमा व्रत में मार्गशीर्ष से कार्तिक पर्यन्त आरम्भ होने वाली लक्ष्मी नारायण की पूजा विधि का पृथक्-पृथक निर्देश नहीं किया गया है।

"फाल्गुन्यां सित पक्षायां वर्षं स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक्।"[1]

फाल्गुन की पूर्णिमा में यह व्रत करने से एक वर्ष तक भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। पितृ विसर्जनी अमावस्या में पितरों का यजन करने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग को चला जाता है।[2]

नारदीय पुराण की विधि विस्तृत है एवं यथाशक्ति उसे करने का विधान निर्दिष्ट किया गया है जबकि अग्निपुराण की विधि संक्षेप में है और यत्र तत्र मंत्रों का क्रम विहित है। इसलिए दोनों पुराणों में साम्य एवं वैषम्य अवश्य दिखाई पड़ता है।

1-अग्निपुराण, 194/1 2- पित्र्या यामावसी (स्या) तस्यां पितृणां दत्तमक्षयम्।
उपोष्याब्दं पितृनिष्ट्वा निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात्॥
अग्निपुराण 194/3

नारदीयपुराण में ध्वजारोपण व्रत की विधि एवं तिथि :—

इस व्रत का काल कार्तिक मास शुक्ल दशमी तिथि है। उस दिन पवित्र होकर एक भोजी होकर रात्रि में नारायण के समीप शयन करे। प्रातः काल नित्यकर्म पूर्ण करने के पश्चात् ब्राह्मणों के साथ स्वस्तिवाचन, नान्दीमुख आदि द्वारा ध्वज का गायत्री मन्त्र से प्रोक्षण करे। ध्वज में सूर्य गरूड़ और चन्द्रमा की पूजा करे। ध्वज में धाता और विधाता का पूजन करे। हल्दी, अक्षत, गन्ध आदि से पूजन के बाद गोचर्म बराबर वेदी के ऊपर अग्नि स्थापन सहित घृत और खीर की आहुति दे। पुरूष सूक्त के पाठनान्तर इरावतमि आदि मंत्रों से आठ-आठ आहुति देवे। रात्रि में जागरण के करके प्रातः काल भगवान के द्वार पर या मन्दिर के शिखर पर स्तवके साथ ध्वज को स्थापित करे। पुनः उसकी पूजा पश्चात् भगवान की स्तुति करे —

" येनेदमखिलं जातं यत्र सर्वप्रतिष्ठितम्।
लयमेष्यति यत्रैव प्रपन्नोऽस्मि केशवम्॥[1]
" न जानन्ति परं भावं यस्य ब्रह्मादयः सुराः
योगिनो यं न पश्यन्ति तं वन्दे ज्ञानरूपिणम्॥[2]

जिससे यह सारा विश्व उत्पन्न हुआ, जिसमें यह स्थित और जिसमें पुनः लीन होता है, उस केशव की शरण में हूँ। जिसके परम तत्व को ब्रह्मा आदि देवता नहीं जान पाते, योगी जिसको नहीं देख पाते उस ज्ञान स्वरूप ब्रह्म को नम - स्कार है।

ब्राह्मणों के भोजन के बाद स्वयं भोजन करे

1व 2— नारदीयपुराण, 19/23/24

अग्निपुराण में ध्वजारोपण व्रतनिर्णय :-

अग्निपुराण में ध्वजारोपण का पृथक नाम निर्दिष्ट नहीं है। ध्वजारोपण का विधान अलग से बताया गया है। बीस अंगुल की ध्वजा में चक्रादि होना चाहिए। चक्र के अरे में केशव, नृसिंह आदि का आवाहन पूजन के पश्चात् करें। मंगलवाद्यादि के द्वारा प्रदक्षिणा करके पात्र, ध्वज, कुण्डल आदि का दान करें।

"ऊनादिदोष शान्त्यर्थं हुत्वा दत्वा च दिग्बलिम्।
गुरवे दक्षिणा दद्याद्यजमानो दिवं व्रजेत्।[1]

इस कार्य में न्यूनत्व आदि दोषों के परिहार के लिए आहुति और दिशाओं में बलि देकर गुरू को दक्षिणा देने वाला यजमान स्वर्ग को प्राप्त होता है।

"प्रतिमालिंगवेदीनां यावन्तः परमाणवः।
तावद्युगसहस्त्राणि कर्तुर्भोगभुजः फलम्।।[2]

इसका अनुष्ठान करने वाला हजारों युगों तक उतने ही फलों को प्राप्त करता है जितने कि प्रतिमा लिंग अथवा वेदी में परमाणु हुआ करते हैं।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि नारदीय पुराण की ध्वजारोपण विधि से अग्नि पुराण की ध्वजारोपण विधि भिन्न है इसमें उपवास आदि का विधान नहीं है न ही जागरण का निर्देश है।

1- अग्निपुराण, 102/29

2- वही, 102/30

नारदीयपुराण में हरिपञ्चक व्रत की विधि एवं काल :-

हरिपञ्चक व्रत में मुख्य रूप से मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त उपवास करके भगवान की पूजा का विधान है। दशमी को एक समय भोजन करने के पश्चात् एकादशी को प्रातःकाल उठकर पञ्चामृत के साथ गन्धाक्षत पुष्पादि सामग्रियों से पूजन करे इसी प्रकार द्वादशी से पूर्णिमा पर्यन्त पूजन करे और रात्रि में जागरण करे।

"रात्रौ जागरणं कुर्यात् एकादश्यामथोद्विज।
द्वादश्यां च त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां जितेन्द्रियः।
पौर्णमास्यां च कर्तव्यमेव विश्वार्चनं मुने।"[1]

पूर्णिमा को दूध से स्नान कराकर तिल का होम और दान करना चाहिए। छठे दिन पंचगव्य पीकर ब्राह्मण भोजन करावे भाई-बन्धुओं के साथ मौन भोजन करे। इसे पौष से कार्तिक पर्यन्त वर्ष भर करने का विधान है।

मार्गशीर्ष मास एकादशी को शुक्ल पक्ष में पूर्ववत निराहार रहकर द्वादशी को पंचगव्य पीना चाहिए। गन्ध पुष्प आदि जनार्दन की पूजा कर ब्राह्मण को दान दे। मधु- घृत युक्त खीर, फल, सुगन्धित जल से भरा घट दक्षिणा सहित ब्राह्मण को दान दें।

अग्निपुराण में पञ्चक व्रत विधि :-

अग्निपुराण में इसे भीष्मपंचक व्रत के नाम से सम्बोधित किया गया है। इसका आरम्भ कार्तिक शुक्ल एकादशी से किया जाता है।

1- नारदीयपुराण 21/12/13

"दिनानि पंच त्रिःस्नायी पंचव्रीहितिलैस्तथा।
तर्पयेद्देवपित्रादीन्मौनी सम्पूजयेद्धरिम्॥"[1]

पांच दिनों तक त्रिकाल स्नान करके पंचव्रीहि तथा तिल से देवता और पितरों आदि का तर्पण करना चाहिए। अनन्तर मौन रहकर भगवान विष्णु की पूजा करना चाहिए। गुग्गुल और घृत के साथ हवन करे। दिन और रात्रि में दीपक जलाना चाहिए। 'नमो वासुदेवाय' का 108 बार जप करे तत्पश्चात् घृत, तिल, चावल आदि से भी हवन करे। इस प्रकार कमल बिल्वपत्र आदि के द्वारा उनका हवन करना चाहिए। भीष्म ने इसे किया था अतः इसे भीष्मपंचक व्रत कहा जाता है।

नारदीयपुराण में मासोपवास व्रत की विधि :-

नारदीयपुराण में आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद या आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की तिथि से प्रारम्भ करने का विधान है। इन मासों में किसी एक मास को इच्छानुसार चयन कर व्रती पंचगव्य पीकर विष्णु के समीप शयन करे। विद्वानों के साथ भगवान की पूजा कर निराहार के लिए मन में संकल्प करके भगवान से प्रार्थना करे — "मासमेकं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव।
मासान्ते पारणं कुर्वे देव देव तवाज्ञया।"[2]

केशव आपकी आज्ञा से आज एक मास तक निराहार व्रत रहूंगा। हे देवाधिदेव मास के अन्त में व्रत का पारण करूंगा।

इस प्रकार मास व्रत समर्पण करके एक मास पर्यन्त विष्णु मन्दिर में निवास करे। प्रतिदिन पंचामृत विधि से स्नान कराने। निरन्तर मन्दिर में दीप

1- अग्निपुराण, 205/2

2- वही, 205/9 नारदीयपुराण 22/6

जवालें। अपामार्ग से दातून करके स्नान करें। मासोपवास व्रत की समाप्ति के पश्चात् ब्राह्मण भोजन करावे और दक्षिणा दें। पुनः बान्धवों के साथ भोजन करे। इस व्रत का विधान 13 वर्ष तक है और वेदवेत्ता ब्राह्मण को दक्षिणा के साथ गोदान देने की विधि है।

अग्निपुराण में मासोपवास व्रत की विधि :-

इस पुराण में आश्विन शुक्ल एकादशी से आरम्भ कार्तिक शुक्ल एकादशी पर्यन्त व्रत का विधान है।

"आश्विनस्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः

व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु।"[2]

आश्विन शुक्ल पक्ष की एकादशी में उपवास करके तीस दिनों तक यह व्रत करने का संकल्प करना चाहिए। कार्तिक शुक्ल द्वादशी को ब्राह्मण भोजन करा कर स्वयं पारण करे। इसमें भी कुछ वस्त्र, पात्र, आसन, अंगूठी, योगपट्ट आदि ब्राह्मण को देने की विधि है। मासोपवासी जिस देश में रहता है वह देश पवित्र हो जाता है फिर उस कुल का क्या कहना है, जिसमें ऐसा व्रती हो?

दिवस व्रत :-

इसमें धेनुव्रत में धेनु का दान, पयोव्रत एवं कांचन कल्पवृक्ष में दान करने का विधान है। त्रिरात्रव्रत में तीन दिन उपवास कर विष्णु पूजा करके दान देने का महत्व है। चैत्र में त्रिरात्र व्रत का विधान है।

1-~~नारदीयपुराण 22/6~~

2- अग्निपुराण, 204/3

मास व्रत में आषाढ़ादि चतुष्टय व्रत, मार्गशीर्ष में नक्त व्रत, अश्विन में कौमुद व्रत विहित है। चातुर्मास्य और विशेषकर कार्तिक में कोमें दीपदानकरने से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है अतः उसका विशेष महत्व है।

"दीपेनाऽयुश्च चक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकम्।
सौभाग्यं दीपदः प्राप्य स्वर्गं लोके महीयते॥"[1]

दीपदान से मनुष्य आयु, नेत्र, लक्ष्मी पुत्र, तथा सौभाग्यादि प्राप्त करके स्वर्ग लोक में भी पूज्य होता है।

अन्य व्रतों का विवरण :-

नारदीयपुराण में चातुर्मास्य व्रत, कृच्छ्र एवं एक वर्ष पर्यन्त गंगार्चन व्रत का विधान बताया गया है। चातुर्मास्य में नक्तव्रत का विधान बताया गया है। इसमें ब्राह्मण को भोजन कराके दान देना चाहिए। कृच्छ्रव्रत में एक दिन का अन्तर अथवा तीन रात्रि या दस तथा पन्द्रह अथवा एक मास का उपवास रहकर भगवान का पूजा करके दान करे।

गंगार्चन व्रत में स्नान, हविष्य, भोजन, अल्पभाषण, स्वल्पाहार, अग्नि होम तथा भूमि शयन एक वर्ष तक करना चाहिए।

अग्निपुराण में इनका निर्देश नहीं है, इसके अतिरिक्त अग्नि पुराण में वार, नक्षत्र, दिवस, दीपदान आदि का उल्लेख किया गया है। ये व्रत नारदीय पुराण में विहित नहीं हैं।

1- अग्निपुराण, 200/3

वारव्रत :-

अग्निपुराण में हस्त नक्षत्र में सूर्य व्रत, चित्रा नक्षत्र में सोमवार, व्रत स्वाति में भौम, विशाखा में बुध, अनुराधा में गुरु, ज्येष्ठा में शुक्रवार व्रततथा मूल नक्षत्र में शनि व्रत का उल्लेख है -

"शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत्।
मूले शनैश्चरं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत्॥"[1]

ज्येष्ठ नक्षत्र के सात शुक्रवारों को तथा मूल नक्षत्र के सात शनिवारों को व्रत करने से ग्रहों की पीड़ा शान्त हो जाती है।

नक्षत्रव्रत :-

नक्षत्र व्रत में हरि के प्रत्येक अंगों का तत्तत् नक्षत्रों से आवाहन पूजन का विधान है। जैसा कि निर्दिष्ट है -

"मूले पादौ यजेज्जङ्घे रोहिणीष्वर्चयेद्धरिम्।
जानुनी चाश्विनी योगे आषाढासूरसंज्ञके।"[2]

मूल नक्षत्र में उनके चरणों की, रोहिणी में जंघाओं की अश्विनी में जानुओं की आषाढ़ में ऊरूओं की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार 22 पद्यों में नक्षत्र व्रत का विधान है।

निष्कर्ष यह है कि भारतीय मेधा ने अन्नमय कोश से लेकर आनन्दमय कोष की यात्रा कराने हेतु जिस पुरुषार्थ चतुष्टय की परिकल्पना की है, उसमें मोक्ष को अन्यतम स्थान प्राप्त है। इस हेतु ज्ञान, योग, कर्म और भक्तिमार्ग प्रच - लित हुए हैं। नारदीय एवं अग्निपुराण में वर्णित व्रतों को देखकर हम निर्भ्रान्तरूप

1- अग्निपुराण, 195/5

2- वही, 196/2

से यह प्रतिपादित कर सकते हैं कि कर्म और भक्ति का समन्वय व्रतों में होता है, व्रत जहाँ एक ओर शरीर शुद्ध्यर्थ अति आवश्यक हैं वहीं निश्चित व्रतों को करने से ऐहिक एवं आमुष्मिक भोग प्राप्त किये जा सकते हैं। दोनों आलोच्य पुराणों में कायिक शुद्धि के साथ-साथ इहमुत्रादि फल भोग पर विशेष बल दिया गया है। यहाँ हम निश्चित आधार बिन्दुओं को लेकर दोनों पुराणों में प्राप्त साम्य एवं वैषम्य का विहगावलोकन कर एतद् सम्बन्धी वैशिष्ट्य का निरूपण करेंगे –

साम्य :–

(1)दोनों पुराणों में व्रत प्रारम्भ करने के पूर्व कायिक शुद्धि का विधान है।

(2)दोनों पुराणों में कुछ अपवाद स्वरूप स्थलों को छोड़कर शुक्ल एवं कृष्णपक्ष की तिथियों में ही व्रत करने का उल्लेख हुआ है।

(3)नारदीय एवं अग्निपुराण में व्रत के साथ उपवास एवं पारण का विधान तिथियों के अनुसार किया गया है।

(4)दोनों पुराणों में किसी न किसी देवता की पूजा पंचोपचार या षोडशोपचार का उल्लेख है।

(5)दोनों पुराणों में लौकिक एवं पारलौकिक कामना की पूर्ति का वर्णन है।

(6)इन पुराणों में चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ श्रावण मास की तृतीया, पंचमी षष्ठी, सप्तमी तिथियों के व्रतों का सामान्य रूप से वर्णन है।

(7) आश्विन और चैत्र मास की नवरात्रि, मदन द्वादशी का वर्णन दोनों पुराणों में हुआ है।

वैषम्य :-

ऊपर की पंक्तियों में देवता, पारण, व्रत, कर्म, एवं फल की समीक्षा करते हुए दोनों में साम्य स्थापित किया है। यहाँ इन्हीं आधारों के साथ कुछ अन्य दृष्टि से वैषम्य निरूपित किया जा रहा है -

(1)पिछली पंक्तियों में तिथियों के अनुसार वर्ष भर के व्रतों का सैद्धान्तिक निरूपण किया गया है। हमने देखा है कि व्रतों की दृष्टि से नारदीय पुराण अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि इसमें कुछ अपवादों को छोड़कर वर्ष भर की सभी तिथियों में किसी न किसी व्रत का विधान उल्लिखित है। जबकि अग्निपुराण में भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक मार्गशीर्ष पौष, माघ, फाल्गुन के प्रतिपदा चतुर्थी, दशमी, चतुर्दशी और अमावस्या के किसी भी व्रत का विवरण नहीं है।

(2)देवता की दृष्टि से नारदीयपुराण में ब्रह्मा, विष्णु कुबेर, शिव, अशोक, गो - वर्धन, सूर्य, अश्वनीकुमार, सुभद्रा, बलराम, इन्द्र, पितर, गौरी, ब्राह्मण, ब्रह्म गौरी, महेश, गणेश, मत्स्य, नाग, दिक्पाल, ललिता देवी, स्वामिकार्तिकेय, रुक्मिणी जगदम्बा, श्रीकृष्ण, उमा, ब्राह्मण कुमारियाँ, चण्डिका, मधुसूदन, श्रीधर, सप्तमातृका लक्ष्मी, वरुण, अग्नि आदि देवताओं का वर्णन है।

जबकि अग्निपुराण में ब्रह्मा, अश्वनीकुमार, अनन्त शंकर, गौरी, गणपति वासुकि, तक्षक, स्कन्द, सूर्य, मदन, सवत्सा, गौ, कामदेव आदि देवताओं का आराध्य के रूप में उल्लेख है।

(3)अग्निपुराण में सीमित व्रतों का ही विवेचन उपलब्ध होता है जिसमें मूलगौरी व्रत, संकष्टचतुर्थी, सप्तमी, नवमी, मदन द्वादशी, अनंग त्रयोदशी मुख्य व्रत हैं जबकि नारदीय पुराण में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी से लेकर

पूर्णिमा तक विस्तृत व्रतों का विवेचन है। तात्पर्य यह है कि नारदीय पुराण में कुछ व्रतों पर विशेष महत्व दिया गया है क्योंकि ऐसे व्रतों का नामकरण तिथि में दिन का संयोग, पूजा और पारण दान, दक्षिणा आदि का विशेष उल्लेख किया गया है जिसमें धन व्रत हरतालिका व्रत, कृष्ण जन्माष्टमी, हरिप्रबोधिनी एकादशी प्रमुख हैं तो अग्नि पुराण में यम द्वितीया, गौरी व्रत, चम्पा व्रत आदि प्रमुख हैं। (5)अग्निपुराण में लौकिक कामनाओं की पूर्ति की दृष्टि से व्रतों के विधान का आधिक्य है जबकि नारदीय पुराण में लौकिक एवं पारलौकिक दोनों अभिलाषाओं की पूर्ति का उल्लेख है।

आलोच्य पुराणों में वर्णित व्रतों की साम्यता एवं विषमता पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाये तो यही ज्ञात होता है कि प्रदेशीय सामाजिक रीति रिवाज तथा वातावरण के आधार पर पनपने वाले विविध दृष्टिकोण हैं। साथ ही विभिन्न कालों में रचे गये पुराण भी इस विषमता के परिचायक हैं, यद्यपि जो कुछ भी इन व्रतों की विधि एवं समर्चना में वैविध्य पाया जाता है वह कोई ऐसे विषय का द्योतक नहीं है, जिनके आधार पर आलोच्य पुराणों के पौराणिकत्व पर किसी प्रकार की विवेचना उपस्थित हो। व्रतों की समानता एवं विषमता का आधार सामान्य भावभूमि में हुआ है।

****

पंचम अध्याय

आलोच्य पुराणों में व्रतों का माहात्म्य एवं फलश्रुति

****

पंचम अध्याय

व्रत कथा माहात्म्य एवं फलश्रुति

पुराणों का सृजन लोकहित की भावना से प्रेरित होकर हुआ है। पुराण हमारे लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिए चेतना प्रदान करते चले आ रहे हैं। इनमें वर्णित व्रतकथाओं के माहात्म्य का समाज में अत्यन्त प्रभाव रहा है, इसी को दृष्टि में रखकर अष्टादश पुराणों में किसी न किसी रूप में व्रतों के आख्यान और उन व्रतों के करने से फल की प्राप्ति का वर्णन हुआ है, इतना अवश्य है कि किसी पुराण में इस विषय को अति संक्षिप्त रूप में लिया गया है और इन दो आलोच्य पुराणों में व्रतकथाओं के माहात्म्य को तथा उसकी फलश्रुति को विशद विवेचन के रूप में दर्शाया है। इन व्रतों की ही महिमा है जिनके कारण समाज में सांस्कृतिक चेतना एवं संयत जीवन व्यतीत करने की अनुपम शक्ति उपलब्ध है। भारतीय वाङमय में ये पुराण भारतीय संस्कृति के पोषक एवं सद्-विचारों के संवाहक हैं। आलोच्य पुराणों में वर्णित विविध व्रतकथाओं का ही माहात्म्य है कि आज भी अम्बरीश जैसे राजा राजर्षि के रूप में प्रख्यात हुए व्रत मानव के अन्तःकरण की शुद्धि के लिए एक ऐसी कसौटी हैं जिनके कारण भारतीय समाज के प्रत्येक प्राणी का जीवन स्तर उत्तरोत्तर विकसित एवं गौरवपूर्ण हुआ है। और इन्हीं व्रतों के माध्यम से हम अपने को संयमित एवं निर्मल बना सके हैं।

चतुर्थ अध्याय में पूरे वर्ष में होने वाले व्रतों की पूर्ण सूची तथा उनकी विस्तृत विधि का समुचित उत्पादन किया गया है, परन्तु इस अध्याय में व्रतों से सम्बन्धित आख्यानों का वर्णन हुआ है जो पुराण साहित्य में विशेषरूप से

प्रसिद्ध है उनकी कथा, माहात्म्य फलश्रुति का वर्णन यहाँ किया जा रहा है—

नारदीयपुराण में प्रतिपदा व्रतों की कथा एवं फलश्रुति

"चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनी।
शुक्लपक्षे समग्रं वै तदा सूर्योदये सति।"[1]

चैत्र मास में शुक्लपक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय होने के उपरान्त ब्रह्मा ने जगत की सृष्टि की जो वसन्त ऋतु का प्रारम्भिक समय माना जाता है। वह आयु को देने वाली पुष्टिकरी, धनसौभाग्यवर्धिनी, मंगलमयी, पवित्र तथा उभय लोक में सुख देने वाली है।[2]

भाद्रशुक्ल प्रतिपदा के व्रत के लिए किसी का कहना है कियह व्रत शिवसंज्ञक है कोई कहता है मौन संज्ञक।

"इदं कृत्वा व्रतं विप्र देवदेवस्य शूलिनः।
चतुर्दशाब्दं देहान्ते भुक्तभोगः शिवं व्रजेत्॥"[3]

चौदह वर्षों तक जो व्यक्ति पशुपति का यह व्रत करता है वह सकल भोगों को भोगकर शिव सायुज्य मोक्ष को प्राप्त करता है। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा में अशोक व्रत करने वाला व्यक्ति शिवलोक में पूजित होता है।

1- नारदीयपुराण 110/5

2- आयुः प्रदा पुष्टिकरी धनसौभाग्यवर्धिनी।
मंगल्या च पवित्रा च लोकद्वयसुखावहा।" (वही, 110/)

3- नारदीयपुराण, 110/26

आश्विन शुक्ल को नवरात्र पूजन करना चाहिए।

"इत्थं कृत्वा व्रतं विप्र सर्वाण्विद्यालयो नरः।

जायते भुवि दुर्गायाः प्रसादान्नात्रसंशयः ॥[1]

जो मनुष्य इस प्रकार से व्रत को करता है, वह दुर्गा की कृपा से पृथ्वी पर सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है।

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को अन्नकूट की पूजा करनी चाहिए इसकी कथा इस प्रकार है —

कथा :—

जब इन्द्र ने कृष्ण से नाराज होकर मेघों को आज्ञा दी कि गोकुल में जाकर प्रलय काल जैसी मूसलाधार वर्षा करें, तब श्रीकृष्ण सभी ब्रजवासियों के साथ गऊओं को लेकर गोवर्धन पर्वत की तराई में चले गये। भगवान श्रीकृष्ण ने पर्वत को अपनी कनिष्ठा उंगली पर उठा लिया और सात दिन उसी की छत्रछाया में रहे। उनकी महिमा से किसी को कोईभी हानि न हुई। यह कौतुक देखकर और ब्रह्माजी के द्वारा श्रीकृष्णावतार की बात जानकर इन्द्र स्वयं ब्रज में आये एवं श्रीकृष्ण के चरणों में गिरकर अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप कर क्षमा मांगी। श्रीकृष्ण ने सातवें दिन गोवर्धन को नीचे रखा।

इस महान घटना का स्मारक यह उत्सव है। यह उत्सव भारत में सभी जगह मनाया जाता है तथापि ब्रज में इस दिन बहुत धूमधाम होती है।

"समर्च्य दक्षिणीकृत्य भुक्तिमुक्तीसमाप्नुयात्।"[2]

1- नारदीयपुराण, 118/34

2- वही, 118/37

गोवर्धन की पूजा एवं दक्षिणा देने से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अगहन की प्रतिपदा में मनुष्य अग्नि से पाप को दग्ध करके विष्णु लोक में पूजित होता है।[1]

"पौषशुक्लप्रतिपदि भानुमभ्यर्च्य भक्तितः ।
एकभक्तव्रती मर्त्यो भानुलोकमवाप्नुयात् ॥"[2]

पौष शुक्ल प्रतिपदा में भक्तिपूर्वक भानु की अर्चना करने से मनुष्य आदित्यलोक को प्राप्त करता है।

"माघशुक्लाद्यदिवसे वन्हि साक्षान्महेश्वरम्।
समभ्यर्च्य विधानेन समृद्धो जायते भुवि।[3]

माघ शुक्ल प्रतिपदा में महेश्वर रूप वन्हि की पूजा करने से मानव भूमि पर सर्वसम्पन्न हो जाता है।

"अथ फाल्गुनशुक्लादौ देवदेवं दिगंबरम्।
धूलिधूसरसर्वांगमर्चेद्धोत्तमंततः ॥[4]

फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा में धूल से धूसरित शरीर वाले दिगम्बर देव को जल चढ़ाने से महेश्वर सन्तुष्ट हो जाते हैं।

1- वन्हिना दग्धपापस्तु विष्णुलोके महीयते" (नारदीयपुराण 110/40)

2- नारदीयपुराण 110/41

3- वही, 110/41

4- वही, 110/42

अग्निपुराण में प्रतिपदा व्रतों की कथा एवं फलश्रुति

अग्निपुराण में भी आश्विन, कार्तिक तथा चैत्र की प्रतिपदा की तिथि ब्रह्मा की मानी गयी है।

"निर्मलो भोगभुक्स्वर्गे भूमौ विप्रो धनीभवेत्।"[1]

प्रतिपदा को व्रत करने वाला स्वर्ग में उत्तम भोगों का भोग करके पृथ्वी पर धनी ब्राह्मण होकर जन्म लेता है।

'वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतम्।'[2]

मार्गशीर्ष की प्रतिपदा को शिखिव्रत कहा गया है। ऐसा करने से सूर्यलोक की प्राप्ति होती है।

नारदीयपुराण में द्वितीया व्रतकथा एवं फलश्रुति

चैत्र शुक्ल द्वितीया में निशारम्भ में उदित बालचन्द्र की अर्चना करने से भुक्ति मुक्ति मिलती है।

"नेत्रव्रते द्वादश वत्सरान्वै कृत्वा भवेद्भूमिपतिर्द्विजेन्द्र।
सुरूपरूपोऽरिगणप्रतापी धर्माभिरामो नृपवर्गमुख्यः ॥"[3]

इसको नेत्र व्रत कहा जाता है। बारह वर्षों तक इसे करने से मनुष्य अत्यन्त रूपवान, धर्मात्मा तथा नृपशिरोमणि होता है।

1- अग्निपुराण, 176/4
2- वही, 176/7
3- नारदीयपुराण, 111/6

'विष्णुलोकमवाप्नोति भुक्त्वा भोगानमनोरमान्।'[1]

वैशाख शुक्ल द्वितीया में मनुष्य मनोरम भोगों को भोगकर विष्णु लोक को जाता है।

ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया में द्विजों को भोजन कराने वाला मनुष्य सूर्यलोक को जाता है।[2]

श्रावण शुक्ल द्वितीया को विश्वकर्मा प्रजापति शयन करते हैं अतः यह तिथि पवित्र है। इसका नाम अशौन्यशयना है। इससे समस्त सिद्धियों की प्राप्ति होती है।[3]

भाद्रशुक्लद्वितीयायां शक्ररूपं जगद्विभुम्।
पूजयित्वा विधानेन सर्वक्रतुफलं लभेत्।[4]

भाद्रशुक्ल द्वितीया में इन्द्ररूप ब्रह्मा का पूजन करने से निखिल यज्ञों का फल प्राप्त होता है। आश्विन शुक्ल द्वितीया में दान का अनन्त फल प्राप्त होता है।

'उर्ज्जशुक्लद्वितीयायां यमो यमुनया पुरा
भोजितः स्वगृहे तेन द्वितीयैषा यमाह्वया।'[5]

1- नारदीयपुराण 111/8

2- ज्येष्ठशुक्लद्वितीयायां भोजयित्वा द्विजान् भक्त्याभास्कर लोकमवाप्नुयात्।(111/9)

3- नभः शुक्लद्वितीयायां विश्वकर्मा प्रजापतिः।
स्वपितीति तिथिः पुण्या ह्यशौन्यशयनाह्वया।(111/13)

4- नारदीयपुराण 111/16

5- वही, 111/18

कार्तिक शुक्ल द्वितीया यम द्वितीया के नाम से जानी जाती है। इस दिन यमुना ने यम को अपने घर भोजन कराया था। इसका मुख्य ध्येय भाई बहन का मिलाप है। यह बहन के अक्षय स्नेह का प्रतीक है। यह पर्व प्रायः भारतवर्ष में सभी जगह बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस दिन बहन भाई की पूजा करती है और उसकी दीर्घायु की प्रार्थना करती है। इस प्रकार यह भाई-बहन के स्नेह का त्योहार है। इसकी कथा इस प्रकार है —

यमुना और यमराज दोनों भाई-बहन थे। यमुना प्रतिदिन अपने भाई के यहां जाकर भोजन के लिए बुलाती। एक दिन अचानक से यमराज को आया हुआ देखकर यमुना बड़ी प्रसन्न हुई और उसकी पूजा करके भोजन कराया। यमराज ने खुश होकर इच्छित वर मांगने को कहा तब यमुना ने कहा कि प्रतिवर्ष इसी दिन आकर हमारे यहां भोजन किया करो एवं इस दिन जो लोग बहन के घर जाकर भोजन करते हैं उन्हें सद्गति दो।

तभी से यह दिन इस स्मृति का एक पवित्र चिन्ह बन गया और इसका नाम यमद्वितीया या भैयादूज पड़ा। उस तिथि में जो व्यक्ति बहिन के हाथों से भोजन करता है उसे उत्तम रत्न और धनधान्य की प्राप्ति होती है।[1]

पौष शुक्ल द्वितीया में गाय के सींग से स्पर्श किये जल से स्नान करने से समस्त कामनायें पूरी हो जाती हैं।

1- यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः, संभोजितो निजकरात्स्वसृसौहृदेन।
तस्यां स्वसुः करतलादिह योऽश्नुते, प्राप्नोति रत्नधनधान्यमनुत्तमम् सः ।'
— नारदीयपुराण, 111/2।

"इह कामान्नरान्भुक्त्वा यास्यति ब्रह्मणः पदम्।
सर्वदेवस्तुतोऽभीक्ष्णं विमानवरमास्थितः।'[1]

माघ शुक्ल द्वितीया में मनुष्य सकल भोगों को भोग कर अन्त में उत्तम विमान में चढ़कर ब्रह्मलोक को जाता है वहाँ देवगण उसकी सतत स्तुति किया करते हैं।

फाल्गुन शुक्ल द्वितीया में अर्चना करने वाला अर्चना करने वाला मनुष्य रोगों से मुक्त तथा धनधान्य से युक्त होकर निःसन्देह सौ वर्ष जीवित रहता है।[2]

<u>अग्निपुराण में द्वितीयाव्रत की कथा एवं फलश्रुति :-</u>

'अब्दं स्वरूपसौभाग्यं स्वर्गमाप्नुयाते व्रती।'[3]

द्वितीया में एक वर्ष तक व्रत करने से व्रती को सुन्दर रूप, सौभाग्य तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया में व्रती स्वर्ग को जाता है नरक को नहीं। अशून्य शयन व्रत को करने से व्रती कभी लक्ष्मी से वियुक्त नहीं होता एवं श्री सम्पन्नता नष्ट नहीं होता।'[4]

1- नारदीयपुराण, 111/28

2- 'एवमभ्यर्च्य देवेशं मर्त्यो व्याधिविवर्जितः।
धनधान्यसमायुक्तो जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम्।' (वही, 111/32)

3- अग्निपुराण, 177/2

4- कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां यमं यजेत्। अब्दमुपोषितः स्वर्गं गच्छेन्न नरकं व्रती॥
— अग्निपुराण, 177/3

'यत् एवं च कुरुते भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।'[1]

जो व्यक्ति इस व्रत को करता है उसे भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'वर्षं प्राप्नोति वै कान्तिमायुरारोग्यकादिकम्।'[2]

कार्तिक शुक्ल पक्ष का द्वितीया को एक वर्ष तक करने से कान्ति आयु आरोग्य की प्राप्ति होती है।

'षण्मास पारण चाब्द प्राप्नुयात्सकलं व्रती।

एतद्व्रत नृपे स्त्रीभिः कृतं पूर्वं सुरादिभिः।'[3]

पौष शुक्ल द्वितीया में एक वर्ष और छः महीने व्रत करने से व्रती की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। प्राचीनकाल में राजा, स्त्रियाँ और देवता इस व्रत का अनुष्ठान किया करते थे।

<u>नारदीयपुराण में तृतीया व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-</u>

तृतीया व्रतों को करने से नारी को शीघ्र सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

"धनपुत्रान्पतिं विद्यामाद्यासिद्धिं यशः सुखम्।

लभते सर्वमेनेष्टं गौरीमभ्यर्च्य भक्तितः ॥"[4]

भक्तिपूर्वक गौरी की आराधना करने से धन, पुत्र पति, विद्या आद्यासिद्धि, यश सुख तथा सकल कामनाओं की प्राप्ति होती है।

1- अग्निपुराण, 177/13

2- वही, 177/14

3- वही, 177/20

4- ~~वही~~ नारदीयपुराण, 111/9

वैशाख शुक्ल की अक्षय तृतीया त्रेतायुग की तिथि कहलाती है। इसमें किये गये दान पुण्य आदि अक्षय हो जाते हैं।[1] विद्वानों ने दो शुक्लपक्ष की तथा दो कृष्ण पक्ष की तिथियों को युगादि माना है।

'द्वापरं हि कलिर्भाद्रे प्रवृत्तानि युगानि वै।[2]

फाल्गुन में द्वापर और भाद्रपद में कलियुग की प्रवृत्ति हुई है।

'अक्षतैः पूजयेद्विष्णुं स्नायादप्यक्षतैर्नरः

सक्तूनभोजयेद्विप्रान् स्वयमप्यवरेच्चतान्।

एवं कृतविधिर्विप्र नरो विष्णुपरायणः।

विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वदेवनमस्कृतः ॥[3]

इस मानव अक्षत से विष्णु का पूजनकर अक्षत स्नान करने से ब्राह्मणों को सत्तू खिलाकर स्वयं भी सत्तू खाये। विप्र इस प्रकार अनुष्ठान करने वाला विष्णु परायण मनुष्य निखिल देवों से वंदनीय होकर विष्णुलोक को जाता है।

गन्धपुष्पाक्षताद्यैस्तु नारीसौभाग्यकाम्यया।

रम्भाव्रत इदं विप्र विधिवत्समुपाश्रितम्।

ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे शुभावहाम्।'[4]

ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया में गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि से पूजा करने पर नारी को सौभाग्य की प्राप्ति होती है। विप्र इस रम्भाव्रत के

1- राधशुक्लतृतीयायां साक्षया परिकीर्तिता। तिथिस्त्रेतायुगाद्या सा कृतस्याक्षयकारिणी।
— नारदीयपुराण, 111/10

2- वही, 111/12

3- वही, 111/14, 15

4- वही, 111/17

यथाविधि अनुष्ठान करने से वित्त, पुत्र तथा धार्मिक बुद्धि का लाभ होता है।

आषाढ़ शुक्ल तृतीया का आचरण करने वाला व्यक्ति धनधान्य से स सम्पन्न होकर भगवान की कृपा से वैकुण्ठ को जाता है।

'प्रतिमां गुरवे दत्वा द्विजेभ्यो दक्षिणां तथा।
पूर्णं लभेत्फलं नारी व्रताचरणतत्परा।'[1]

श्रावण शुक्ल पक्ष की तृतीया में भाई बन्धुओं को वायन देकर गुरु की प्रतिमा तथा द्विजों को दक्षिणा दे। इस प्रकार व्रतानुष्ठान करने वाली नारी पूर्ण फल को प्राप्त करती है।

'यदा तृतीया भाद्रे तु हस्तर्क्षसहिता भवेत्।
हस्तगौरीव्रतं नामतदविदृष्टहि शौरिणा।
तथा कोटीश्वरीनामव्रतं प्रोक्तं पिनाकिना।
लक्षेश्वरी चैवतथा तद्विधानमुदीर्यते।'[2]

जब भाद्रपद की तृतीया हस्तनक्षत्र से संयुक्त होती है तब वह व्रत हस्तगौरी व्रत कहलाता है - ऐसा कृष्ण ने कहा है। शंकर कहते हैं उस दिन कोटेश्वरी तथा लक्षणेश्वरी व्रत भी होता है। इसके प्रभाव से नारी गौरी लोक को जाती है।

'एतद्व्रतप्रभावेण भुक्त्वा भोगान मनोरमान्।
देवीलोकं समासाद्य मोदते च तया सह।'[3]

1- नारदीयपुराण, 111/29

2- वही, 111/27, 28

3- वही, 111/57

मार्ग शुक्ल तृतीया में हरगौरी व्रतकरना चाहिए। इस व्रत का अनुष्ठान करने वाली महिला मनोरम भोगों को भोग कर अन्त में देवी लोक को जाती है। वहाँ देवी के साथ क्रीड़ा करती है।

पौष शुक्ल तृतीया में ब्रह्मगौरी व्रत करके नारी देवी के सामीप्य मोक्ष को प्राप्त करती है।

"माघ शुक्लतृतीयायां पूज्या सौभाग्यसुन्दरी।
प्रसन्ना दिशति स्वीयं लोकं तु व्रततोषिता।"[1]

माघ शुक्ल तृतीया में सौभाग्य सुन्दरी देवी की पूजा करनी चाहिए इस व्रत को करने से व्रतसंतुष्टा भगवती अपने लोक में शरण देती है।

फाल्गुन शुक्ल तृतीया में कुल सौख्यप्रदा देवी की अर्चना करने से सकल कल्याणों की प्राप्ति होती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि समस्त तृतीया व्रतों का अनुष्ठान करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

अग्निपुराण में तृतीया व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

"तृतीयाव्रतव्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते
ललितायां तृतीयायां मूलगौरीव्रतं शृणु।।"[2]

तृतीया व्रत भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले होते हैं। ललिता नामक तृतीया में मूलगौरी व्रत किया जाता है।

1- नारदीयपुराण, 111/60

2- अग्निपुराण, 178/1

'गुरू च मिथनान्मर्च्य वस्त्राद्यैर्भुक्तिमुक्तिभाक्।
सौभाग्यारोग्यरूपायुः सौभाग्यशयनव्रतात्॥ [1]

गुरू व गुरूपत्नी की पूजा करके उन्हें वस्त्रादि देने से इस व्रत के अनुष्ठान से मनुष्य को सौभाग्य, आरोग्य, रूप, आयु, भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

भाद्रपद, वैशाख तथा मार्गशीर्ष की तृतीया में पूजा करने से व्रती को भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'सौभाग्यार्थी तृतीयोक्ता गौरीलोकादिदायिनी।
माघे भाद्रे च वैशाखे तृतीयाव्रतकृत्तथा। [2]

माघ भाद्रपद, वैशाख तथा चैत्र की तृतीया का नाम दमनक है। यह तृतीया सौभाग्य तथा गौरी लोक को दिलाने वाली होती है।

मार्गशीर्ष की आत्मतृतीया का व्रत करने से सौभाग्य तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है।

नारदीयपुराण में चतुर्थी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'चतुर्थी व्रतं कृत्वा मार्योऽभीष्टान्कामानवाप्नुयुः ॥ [3]

चतुर्थी को व्रत करने से नर-नारियों को अभीष्ट सिद्धि होती है। चैत्रमास की चतुर्थी में विप्र को सुवर्ण दक्षिणा देने से मनुष्य देववंद्य होकर वैकुण्ठ को जाता है।

1- अग्निपुराण, 178/21
2- अग्निपुराण, 178/26
3- नारदीयपुराण, 113/1

'गृहस्थदि्वजमुखेभ्यः शय्यांदत्वा विधानवित्।

प्राप्य सकर्षण लोक मोदते बहुकल्पकम्।'[1]

चैत्र मास की चतुर्थी में गृहस्थ विप्र को शैय्या प्रदान करने से मानव संकर्षण लोक में जाकर बहुत कल्पों तक उनके साथ आनन्द करता है।

आषाढ़ मास की चतुर्थी व्रत से भी अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है।

ज्येष्ठमास की चतुर्थी में अत्युत्तम सती व्रत करने वाली नारी गौरी लोक में जाकर उनके साथ आनन्द करती है।[2]

'व्रतस्यास्य प्रभावेण कामान्मनसि चिंतितान्।

लब्ध्वालोके पर चापि गणेशपदमाप्नुयात्।'[3]

आश्विन की चतुर्थी में व्रत के प्रभाव से मनुष्य की सकल कामनायें पूरी होती हैं। वह इस लोक में समस्त लोकों को भोग कर अन्त में गणेश पद को प्राप्त करता है।

इसके समान दूसरा व्रत तीनों लोकों में कोई नहीं है इसलिए अशेष कामनाओं को चाहने वाला व्यक्ति सब प्रकार से इस व्रत को सम्पन्न करे।[4]

इस प्रकार पाँच वर्षों तक यथाविधि करने से मानव अखिल भोगों को भोग कर गणपति लोक को जाता है।

1- नारदीयपुराण ।।3/4

2- ज्येष्ठमासचतुर्थ्यां तु प्राद्युम्नरूपणम्।
फलं मूलं च यूथेभ्योदत्वास्वर्गलभेन्नरः ॥ (वही, ।।3/5)

3- नारदीयपुराण, ।।3/15

4- नानेन सदृशं चान्यद्व्रतमस्तिजगत्त्रये।
तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन सर्वान्कामानभीप्सता। (वही, ।।2/16)

'सत्कृतो देवतावृन्दैर्गोलोकं समवाप्नुयात्।
अथ शुक्लचतुर्थ्यां तु सिद्धविनायकव्रतम्।'[1]

भाद्रपद के शुक्लपक्ष की चतुर्थी में सिद्धविनायक व्रत करना चाहिए। इस व्रत के प्रभावे से मनुष्य देवगणों से सम्मानित होते हुए गोलोक को जाता है। इसकी कथा प्रचलित कथाओं के अनुसार इस प्रकार से है —

कथा :—

एक बार जरासन्ध के भय से श्रीकृष्णपुरी में जाकर रहने लगे। वहाँ पर सत्राजित यादव ने सूर्य की आराधाना से स्यमन्तकमणि ~~प्रा~~ प्राप्त कर ली श्रीकृष्ण ने उस मणि को प्राप्त करने की इच्छा की किन्तु सत्राजित ने वह मणि अपने भाई को दे दी। एक बार प्रसेनजित शिकार खेलने गया वहाँ रीछों के राजा जामवन्त ने उसे मारकर वह मणि उससे छीन ली।

तब सत्याजित ने यह बात फैला दी कि श्रीकृष्ण ने प्रसेनजित को मारकर उससे मणि छीन ली है तब श्रीकृष्ण लोक निन्दा को मिटाने के लिए अपने आदमियों के साथ प्रसेनजित को खोजने निकले उन्हें वन में इस घटना के स्पष्ट चिन्ह प्राप्त हुए कि प्रसेनजित को एक सिंह ने और सिंह को एक रीछ ने मारा है तब रीछ के पैरों के निशान देखते - देखते वह एक गुफा के द्वार पर पहुंचे वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि जाम्बन्त के पुत्र एवं पुत्री दोनों मणि से खेल रहे हैं। तब जाम्बन्त कृष्ण को देखते ही युद्ध के लिए तैयार हो गया।

1- नारदीयपुराण, 113/27

जब जाम्वन्त श्रीकृष्ण को न हरा सका तो उसके मन में आया कि कहीं यह वही अवतार तो नहीं जिसके लिए मुझे श्रीरामचन्द्र जी का वरदान हुआ। यह सोचकर उसने अपनी कन्या का विवाह श्रीकृष्ण के साथ कर दिया एवं मणि दहेज में दे दी।

इधर सत्याजित ने लज्जित होकर अपनी पुत्री का विवाह भी श्रीकृष्ण के साथ कर दिया। कुछ समय बाद श्रीकृष्ण किसी आवश्यक कार्य से इन्द्रप्रस्थ चले गये तब शतधन्वा नामक यादव ने सत्राजित से वह मणि छीन ली। श्रीकृष्ण ने लौटने पर शतधन्वा को मारकर मणि छीन लेने को तैयार हो गये।

शतधन्वा मणि को अक्रूर के हवाले करके द्वारका से भाग गया। किन्तु मणि उनके हाथ न लगी। किन्तु बलराम जी को विश्वास न हुआ और वे नाराज होकर विदर्भ चले गये। द्वारका लौटने पर श्रीकृष्ण का भारी अपमान हुआ तब श्रीकृष्ण के चिन्तित होने पर नारद जी ने कहा कि उन्होंने भाद्रपदशुक्ल चतुर्थी को चन्द्र के दर्शन किये थे उसी से उन्हें यह लाछन लगा। तब श्रीकृष्ण ने भाद्र शुक्ल चतुर्थी को सिद्धि विनायक व्रत किया और वे कलंक से मुक्त हो गये।

भाद्र शुक्ल चतुर्थी को कभी भी चन्द्रदर्शन नहीं करना चाहिए। वैसा करने से निस्सन्देह मिथ्या अभिशाप लगता है।

'एवंकृते तु विप्रेन्द्र नृभिनागव्रते शुभे।
विषाणि नश्यन्त्यविरान्न दशंति च पन्नगाः ॥'[1]

1- नारदीयपुराण, 113/54

कार्तिक शुक्ल चतुर्थी में नागव्रत होता है। इस कल्याणकारक व्रत को करने से विष शीघ्र नष्ट हो जाता है और सांप कभी नहीं काटता है।

'एतद्व्रतं नरः कृत्वा भुक्त्वा भोगानिहोत्तमान्।
सायुज्यं लभते विष्णोर्गणेशस्य प्रसादतः।[1]

अगहन शुक्ल चतुर्थी में व्रत करने वाला मानव ऐहलौकिक उत्तम भोगों को भोग कर गणेश की कृपा से विष्णुसायुज्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

माघ कृष्ण चतुर्थी में संकष्टव्रत किया जाता है। जो व्यक्ति इस व्रत को करता है वह धनधान्य से सम्पन्न होता है। विपत्ति में कभी नहीं पड़ता है।

'इदं गौरी व्रतं विप्र सौभाग्यारोग्यवर्धनम्।
प्रतिवर्षं प्रकर्तव्यं नारीभिश्च नरैस्तथा।[2]

माघ शुक्ल चतुर्थी मेंगौरी व्रत सौभाग्य तथा आरोग्य को बढ़ाने वाला है नरनारियों को प्रतिवर्ष यह व्रत करना चाहिए।

कोई कहता है कि ढोंढव्रत करना अच्छा है तो कोई कहते हैं कुंड व्रत। किसी भी मास में यदि चतुर्थी रविवार या मंगलवार से युक्त हो तो वह विशेष फल देने वाली होता है।

1- नारदीयपुराण, 113/68

2- नारदीयपुराण, 113/84

अग्निपुराण में वर्णित चतुर्थी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

माघ शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में भुक्तिमुक्ति दायक व्रत किया जाता है इसमें गणपति की पूजा करनी चाहिए।

'मासि भाद्रपदे चापि चतुर्थीकृच्छिवं व्रजेत्
चतुर्थ्यांगारकेऽभ्यर्च्य गणं सर्वमवाप्नुयात्।'[1]

भादों की चतुर्थी में गणपति की पूजा एवं व्रत करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है।

'चतुर्थ्यां दमनैः पूज्य चैत्रे प्राप्यगणं सुखी।'[2]

चैत्र की चतुर्थी में कुन्दपुष्पों से गणेश की पूजा करने से मनुष्य सुखी होता है।

नारदीयपुराण में पंचमी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

पंचमी व्रत को करनेसे सकल कामनाओं की पूर्ति होती है। चैत्र पंचमी को जो लक्ष्मी की अर्चना करता है उसे लक्ष्मी कभी भी नहीं छोड़ती।[3]

'कार्यं तत्तद्विधानेन तत्तत्सिद्धिमभीप्सुभिः ।
अथ वैशाखपंचम्यां शेषं चाभ्यर्च्यमानवः ॥'[4]

1- अग्निपुराण, 179/4

2- वही, 179/6

3- यो लक्ष्मीं पूजयेचात्र तं वै लक्ष्मीर्नमुंचति। (नारदीयपुराण, 114/4)

4- नारदीयपुराण, 114/5

वैशाख की पंचमी में समस्त नागगणों से युक्त अनन्त शेष की अर्चना करने से मानव को अभीष्ट सिद्धि होती है।

ज्येष्ठ की पंचमी में जो विद्वान पितरों का पूजन करके ब्राह्मण भोजन कराता है उसकी समस्त अभिलाषायें पूरी होती हैं।[1]

'यः स्वप्नोजायते तस्यां रात्रौ यामेचतुर्थके।

स एव भविता नूनं स्वप्नइत्याह मे शिवः।

अशुभे तु समुत्पन्ने शिवपूजापरायणः।

सोपवासो नयेदष्टयामं तादृनमेव वा।'[2]

आषाढ़ पंचमी में रात्रि के चौथे पहर में जो स्वप्न दिखाई देता है वह होकर ही रहता है ऐसा शिव ने कहा है, यदि अशुभ वस्तु दीख पड़े तो शिव पूजा परायण होकर उपवास करते हुए आठों पहर या मात्र उस दिन को बितायें, ऐसा करने से शुभ फल मिलता है।

यह व्रत शुभ अशुभ बतलाने वाला तथा मनुष्य को इस लोक तथा परलोक में भाग्य देने वाला होता है।

'एतदन्नव्रतं विप्र विधिनाऽऽचरितं नृभिः

सर्वान्तसपज्जनकं परलोके गतिप्रदम्।"[3]

1- तथा ज्येष्ठस्य पंचम्यां पितृनभ्यर्चयेत्सुधीः

सर्वकामफलावाप्तिभविद्धै विप्रभोजनैः ॥ (ना0पु0 114/6)

2- नारदीयपुराण 114/13, 14

3- वही, 114/25

श्रावण कृष्ण पंचमी में जो व्यक्ति अन्न व्रत करता है उसे सकल अन्नों की प्राप्ति होती है तथा परलोक में उत्तम गति मिलती है।

श्रावण शुक्ल पंचमी में जो मनुष्य घर के द्वार पर गोबर के सर्प बनाकर गन्धादि से पूजन करता है उसका अनन्तफल जन्मजन्मान्तर में मिलता है।

'भाद्रे तु कृष्णपंचम्यां नागान् क्षीरेण तर्पयेत्।
यस्तस्याऽऽसप्तमं यावत्कुलं सर्पात्सुनिर्भयम्।'[1]

भादों के कृष्णपक्ष की पंचमी में नागों को दूध से परितृप्त करने से मनुष्य को सात कुलों तक सर्पों का भय नहीं रहता है।

'एतत्कृत्वा व्रतं सांगं भोगान्भुक्त्वाथ वांछितान्।
सप्तर्षीणां प्रसादेन विमानवरगो भवेत्।'[2]

भादों की शुक्लपक्ष की पंचमी में ऋषि पंचमी व्रत को सांगोपांग करने वाला व्यक्ति वांछित भोगों को भोग कर सप्तर्षियों की कृपा से उत्तम विमान पर विहार करता है।

'यस्तु वै भक्तिसंयुक्तः स्नानं कुर्याज्जयादिने।
नश्यन्ति तस्य पापानि सिंहाक्रान्ता मृगा यथा।'[3]

जयाव्रत के दिन जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक स्नान करता है, उसके समस्त पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे सिंह के आक्रमण करने से मृग नष्ट

1- नारदीयपुराण 114?33

2- वही, 114/48

3- वही, 114/56

होता है। अश्वमेधयज्ञ करने से जिस प्रकार का फल प्राप्त होता है उसी प्रकार का फल जयाव्रत करने से होता है।

इस व्रत के प्रभाव से पुत्रहीन को पुत्र प्राप्त होता है, बन्ध्या को बालक होता है, रोगी रोग से मुक्त होता है और बद्ध जीवबन्धन से छुटकारा पाता है।[1]

इस प्रकार अगहन पौष की पंचमी में भी नागों एवं पितरों की पूजा का विधान है।

अग्निपुराण में पंचमीव्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

श्रावण, भाद्रपद, आश्विन तथा कार्तिक के शुक्लपक्ष की पंचमी में वासुकि, तक्षक, कालीय तथा धनंजय नामक सर्पों की पूजा करनी चाहिए।[2]

इनमें श्रावण मास में शुक्लपक्ष की जो पंचमी होती है वह अत्यन्त पवित्र कही गयी है इसको नागपंचमी कहते हैं। इसकी कथा इस प्रकार से है -

मणिपुर नगर में एक किसान अपने परिवार समेत रहता था उसके दो लड़के और एक लड़की थी एक दिन खेत में हल जोतते समय उसके हल से बिधकर साँप के तीन बच्चे मर गये। बच्चों की माँ नागिन ने पहले तो बहुत विलाप किया फिर बदला देने का निश्चय कर रात्रि में किसान के घर जाकर सबको

1- अपुत्रो लभते पुत्रं बध्यागर्भं च विन्दति।

रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बंधनात्।' (नारदीयपुराण, 114/58)

2- नभोनभस्याश्विने च कार्तिके शुक्लपक्षके।

वासुकिस्तक्षकः पूज्यकालीयो मणिभद्रकः।' अग्निपुराण, 180/1

डस लिया उसकी एक कन्या बस बच गयी।

अगले दिन वह कन्या को डसने चली तो लड़की ने डर के मारे उसके सामने दूध का कटोरा रख दिया और हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगी। उस दिन नागपंचमी थी नागिन ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा लड़की ने कहा कि मेरे माता-पिता और भाई जीवित हो जायें। नागिन लड़की को वरदान देकर चली गयी। उस दिन नागपंचमी थी।

तभी से नाग की पूजा करने वाले व्यक्ति को भूमि नहीं खोदनी चाहिए।

<u>नारदीयपुराण में षष्ठी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-</u>

'तत्रेष्ट्वा षण्मुखं देवं नानापूजाविधानतः।
पुत्रं सर्वगुणोपेतं प्राप्नुयाच्चिरजीविनम्।[1]

चैत्रमास की शुक्ल षष्ठी को छः मुख वाले देव की पूजा करने से सर्वगुण सम्पन्न एवं चिरजीवी पुत्र का लाभ होता है।

वैशाख शुक्ल षष्ठी में कार्तिकेय की पूजा करने से मातृसुख की प्राप्ति होती है।[2]

1- नारदीयपुराण, ।।5/2

2- ज्येष्ठमासे शुक्लषष्ठ्यां च पूजयित्वा च कार्तिकम्।
लभते मातृजं सौख्यं नात्र कार्या विचारणा।"
— नारदीयपुराण ।।5/4

ज्येष्ठमास की शुक्ल षष्ठी में दिनकर की पूजा अभिलषित फलों की प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं है। आषाढ़ एवं श्रावण में शुक्ल षष्ठी में स्कन्द भगवान की पूजा करने से पुत्र पौत्र आदि वांछित कामनाओं की प्राप्ति होती है।

'नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्यफलं श्रृणु।

यद्व्रतैश्च तपोभिश्च दानैर्वा नियमैरपि।

तदेतेनेह लभ्यते किं बहुक्तेन नारद।

मृतेरनंतरं प्राप्य शिवलोकं सनातनम्॥'[1]

भादों की कृष्ण षष्ठी में जो नर या नारी ललिता नामक सौभाग्य दायक व्रत का अनुष्ठान करती है। बहुत क्या कहा जाय तप व्रत दान या नियम करने से जो फल मिलता है वह इससे प्राप्त होता है और मृत्यु के पश्चात् सनातन शिवलोक की प्राप्ति होती है। भादों की शुक्ल षष्ठी में चन्दना नामक देवी की अर्चना करने से सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आश्विन ~~शुक्ल~~ शुक्लषष्ठी में कात्यायनी देवी की पूजा करने से कन्या वर को एवं नारी पुत्र को प्राप्त करती है। कार्तिक में भी स्कन्द भगवान की पूजा करने से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है।

'मार्गशीर्षे शुक्लषष्ठ्यां निहत्य तारकासुरः।

स्कंदेन सत्कृतिः प्राप्ता ब्रह्माद्यैः परिकल्पिता।'[2]

अगहन शुक्ल षष्ठी में स्कन्द ने तारकासुर को निहत कर ब्रह्मा आदि देवों से सम्मान प्राप्त किया था। उस तिथि में जब रविवार तथा शतभिषा

1- नारदीयपुराण, 115/27, 28

2- वही, 115/41

नक्षत्र का योग था तब जगत रक्षक सनातन विष्णु अवतीर्ण हुए थे।

माघमास की शुक्ल षष्ठी में विष्णु की पूजा करने से मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है।

'एवं कृतशिवार्चस्तु नरो नार्यथवा मुने।
इह भुक्त्वा वरान्भोगानन्ते शिवगतिं लभेत्।'[1]

फाल्गुन मास में शंकर की आराधना करने वाला नर तथा नारी इस लोक में उत्तम भोगों को भोग कर अन्त में शिवगति को प्राप्त करते हैं।

अग्निपुराण में षष्ठी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'षष्ठ्यां फलाशनोऽर्ध्यादिर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।'[2]

कार्तिक मास की षष्ठी में सूर्य को अर्घ्य आदि समर्पण करने से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्ष की षष्ठी में एक वर्ष निराहार रहकर व्रत करने से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।[3]

नारदीयपुराण में सप्तमी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

चैत्र शुक्ल षष्ठी में व्रत करने से समस्त सुखों की प्राप्ति होती है और देहान्त होने पर वह जीव सूर्यमण्डल का भेदनकर परमपद को प्राप्त करताहै।

1- नारदीयपुराण, 115/54

2- अग्निपुराण, 181/1

3- अनाहारो वर्षमेकं भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्। — अग्निपुराण 181/2

'भक्त्या कृतं सप्तकुलं नयेत्स्वर्गमसंशयः '[1]

वैशाख शुक्ल सप्तमी में गंगाव्रत के करने से सात कुलों तक स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं है।

'शर्करा सप्तमी चैव वाजिमेधफलप्रदा।
सर्वदुःखोपशमनी पुत्रसंततिवर्धिनी।'[2]

ज्येष्ठ शुक्ल में शर्करा सप्तमी अश्वमेध के बराबर फल को देने वाली है। इससे समस्त दुखों का नाश और पुत्र संतानों की वृद्धि होती है। जो व्यक्ति परम भक्ति से इस व्रत को करता है उसकी सद्गति होती है।

आश्विन शुक्ल सप्तमी में व्रती देवदेव की कृपा से भुक्ति मुक्ति को प्राप्त करता है।

अगहन शुक्ल सप्तमी में विष्णु का जो दाहिना नेत्र है वही साकार होकर कश्यप के तेज और अदिति के गर्भ से मित्र नामक दिवाकर के रूप में उत्पन्न हुआ है इसलिए इसको मित्रव्रत कहते हैं।

'त्रिलोचनजयंतीयं सर्वपापहरास्मृता।
रथाख्या सप्तमी चेयं चक्रवर्तित्वदायिनी।

माघ शुक्ल सप्तमी त्रिलोचन जयंती के नाम से प्रसिद्ध है जो सकल पापों का विनाश करने वाली है।

1- नारदीयपुराण 116/13

2- वही, 116/24

3- वही, 116/61

इस तिथि को जो सुवर्ण के अश्व से युक्त रथ पर अवस्थित सूर्य की स्वर्णमयी प्रतिमा का पूजन करता है वह इस लोक में समस्त भोगों को भोगकर शिवलोक को जाता है। तथा वहीं आनन्द करता है।

'अर्कनाम जपेच्चैवदित्यं चार्कपुटव्रतम्।
धनदं पुत्रदं चैतत्सर्वपापप्रणाशनम्॥'[1]

फाल्गुन शुक्ल सप्तमी में किया जाने वाला अर्कपुट व्रत धन तथा पुत्र को देने वाला तथा पाप का नाश करने वाला होता है।

कोई इसे त्रिवर्गदायक कहता है तो कोई यज्ञव्रत। इस प्रकार सभी मासों की सप्तमियों में विधिपूर्वक हवन करके भास्कर की आराधना करने से सकल कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।

अग्निपुराण में सप्तमी व्रत कथा एवं फलश्रुति :-

'माघमासिऽम्बुजे शुक्ले सूर्यं प्रार्च्य विशोकभाक्।'[2]

माघ शुक्ल की सप्तमी में सूर्य की आराधना करने से मनुष्य शोक रहित हो जाता है।

पौष मास में सूर्यकी आराधना करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

1- नारदीयपुराण, 116/70

2- अग्निपुराण, 182/1

माघ कृष्णपक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य की पूजा करने से सभी अभिलाषायें पूरी हो जाती है।[1]

फाल्गुन में सूर्य की पूजा करने से आनन्द की प्राप्ति होती है।

'मार्गशीर्षे सिते चाब्दं पुत्रीया सप्तमी स्त्रियाः।'[2]

मार्गशीर्ष की सप्तमी में सूर्य की पूजा करने से स्त्रियाँ पुत्रवती हुआ करती हैं।

नारदीयपुराण में अष्टमी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'अशोक कलिकाश्चाष्टौ ये पिबंति पुनर्वसौ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां नते शोकमवाप्नुयुः ॥'[3]

जो व्यक्ति पुनर्वसुनक्षत्र से युक्त चैत्र शुक्ल अष्टमी में अशोक की आठ कलियों को खाता है उसे कभी शोक नहीं होता है।

ज्येष्ठ शुक्ल की सप्तमी में जो नर देवी की अर्चना करता है वह गंधर्वों तथा अप्सराओं के साथ विमान में विचरण करता है। श्रावण में व्रत करने से सन्तान की वृद्धि होती है।

'उपोष्य विधिनानेनात सर्वकामसमन्वितः।
अंते कृष्णस्य सायुज्यं लभते नात्र संशयः ॥'[4]

1- कृष्णपक्षे तु माघस्य सर्वावाप्तिस्तु सप्तमी।' (~~नारदीयपु0~~ आग्नि पुराण 182/3)

2- ~~नारदीयपुराण~~ आग्नि पुराण 182/4

3- वही, 117/3

4- वही, 117/26

भादों की अष्टमी में दशवर्षों तक उपवास करके विधिपूर्वक इस व्रत को सम्पन्न करने से सकल कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। अन्त में कृष्णसायुज्य मोक्ष मिलता है इसमें संशय नहीं है।

भादों की शुक्ल पक्ष की अष्टमी में व्रत करने से मनुज व्रज के रहस्य को जानकर राधा के समीप वास करता है।

'एवं पुण्या पापहरा नृणां दुर्वाष्टमी द्विज।

चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीजनानां विशेषतः ।।।'[1]

इसी तिथि में दूर्वाष्टमी व्रत भी किया जाता है। यह दूर्वाष्टमी मनुष्यों को पुण्य देने वाली तथा पाप का नाश करने वाली होती है। इस व्रत को चारों वर्ण के लोग कर सकते हैं।

जब यह अष्टमी ज्येष्ठा नक्षत्र से संयुक्त हो तो इसका नाम ज्येष्ठाष्टमी समझना चाहिए यह पापनाशिनी है।[2]

इसी तिथि में महालक्ष्मी का व्रत भी पड़ता है जिसे करने से मनुष्य ऐहलौकिक भोगों को भोग कर चिरकाल तक लक्ष्मीलोक में वास करता है।

'गोपाष्टमीति संप्रोक्ता कार्तिके धवले दले।

तत्र कुर्याद्गवां पूजां गोग्रासं गोपदक्षिणाम्।।

गवानुगमनं दानं वाञ्छन्सर्वाश्च संपदः ।।[3]

1-नारदीयपुराण ।।7/5।

2- यदा ज्येष्ठर्क्षसंयुक्ता भवेच्चैवाष्टमी द्विज।

ज्येष्ठा नाम्नी तु सा ज्ञेया पूजिता पापनाशिनी।(ना0पु0 ।।7/53)

कार्तिक कृष्ण अष्टमी का नाम गोपाष्टमी है उस दिन गोपूजन विहित है। उस दिन गौओं को ग्रास देकर उनकी प्रदक्षिणा करने से सकल सम्पत्तियों का लाभ होता है।

पौष कृष्णअष्टमी में अष्टका श्राद्ध करने से पितरों को तृप्ति मिलती है तथा वंश की वृद्धि होती है।

'शीतले शीतले चेत्थं ये जपंति जले स्थितः।
तेषां तु शीतला देवी स्याद्विस्फोटकशांतिदा।'[1]

फाल्गुन में जो विस्फोट रोगों का नाश करने वाली शीतला देवी का ध्यान करते हुए शीतला-शीतला जपता है उसे विस्फोट(फोड़ा) का भय नहीं रहता है।

इस प्रकार समस्त मासों के दोनों पक्षों की अष्टमियों में शिव तथा पार्वती का पूजन करने वाला मनुष्य वांछित फल को प्राप्त करता है।

अग्निपुराण में अष्टमी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'कृष्णो जातो यतस्तस्यां जयंती स्यात्ततोऽष्टमी।
सप्तजन्म कृतात्पापान्मुच्यते चोपवासतः ॥[2]

भाद्रपद की अष्टमी में कृष्ण जयंती मनायी जाती है इस दिन जब रोहिणी नक्षत्र था तब अर्द्धरात्रि के समय कृष्ण अवतरित हुए थे। इसमें उपवास करने से सात जन्मों का उद्धार हो जाता है।

1- नारदीयपुराण 117/97

2- अग्निपुराण, 183/1

चैत्र मास की अष्टमी में कृष्ण की पूजा करने से धन की प्राप्ति होती है।

फाल्गुन एवं ज्येष्ठ मास में शिव की पूजा करने से सम्पत्ति का नाश नही होता है।

जो व्यक्ति चैत्र शुक्ल की अष्टमी के दिन आठ अशोक कलियों के रस का पान करते हैं, वे कभी शोकको नहीं प्राप्त होते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है -

कथा :-

'धीरो द्विजोऽस्य भार्याऽभित रम्भा पुत्रस्तु कौशिकः।
दुहिता विजया तस्य धीरस्य धनदो वृषः ॥'[1]

प्राचीनकाल में धीर नामक एक ब्राह्मण था उसकी पत्नी का नाम रम्भा, पुत्र का नाम कौशिक तथा बैल का नाम धनद था।

एक बार कौशिक बैल को गंगातट पर चराने ले गया जब वह गंगा में स्नान कर रहा था तो चोर उसके बैल कोचुरा ले गये वह अपनी बहन विजया को लेकर उन्हें खोजने निकला। मार्ग में उसने दिव्य रमणियों को देखकर उनसे भोजन की प्रार्थना की। स्त्रियों ने कहा तुम हमारे अतिथि हो भोजन करो तब कौशिक ने भोजन किया उस व्रत के प्रभाव से उसका बैल मिल गया। वह अपनी बहन विजया को लेकर अपने पिता के पास पहुँचा।

धीर ने अपनी पुत्री विजया का विवाह यम के साथ कर दिया और वह मर गया व्रत के प्रभाव से कौशिक भी अयोध्या का राजा हुआ।

1- अग्निपुराण, 184/13

(एकसमय) विजया अपने माता-पिता को नरक में देखकर बड़ी दुखी हुई उस समय यम शिकार खेलने गये थे लौटने पर विजया ने यम से पूछा कि नरक से मुक्ति कैसे प्राप्त होती है। यम ने कहा नरक से मुक्ति दो व्रतों से होती है। तब कौशिक ने अपने बुध और अष्टमी दोनों व्रतों का अपने माता-पिता को दे दिया इससे उनके माता पिता स्वर्ग में गये।

इस प्रकार चैत्र मास की अष्टमी के दिन मातृकाओं कीपूजा करने वाला व्यक्ति शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है।

नारदीय पुराण में नवमी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमी व्रतम्।
विधूय मेहपापानि व्रजेदि्वष्णोः परं पदम्।"[1]

चैत्र शुक्ल नवमी में जो भक्तिपूर्वक रामनवमी व्रत करता है वह निष्पाप होकर विष्णु के परमपद कोप्राप्त करता है।

वैशाख की उभयपक्ष की नवमियों में व्रती विमान पर आरूढ़ होकर देवताओं के साथ आनन्द करता है। ज्येष्ठ शुक्ल नवमी में जो नर विधि पूर्वक उमा व्रत को सम्पन्न करता है, वह इस लोक में उत्तम भोगों को भोगकर अन्त में स्वर्ग को जाता है।

'नक्तं चैंद्री समभ्यर्चेदैरावत गतां सिताम्।
स भवेद्देवलोके तु भोगभाग्देवयानगः ॥[2]

1- नारदीयपुराण 118/4

2- वही, 118/12

आषाढ़ के दोनों पक्षों में जो व्यक्ति ऐरावत पर अवस्थित शुक्लवर्णा इन्द्राणी का ध्यान करके पूजन करता है वह इस लोक में निखिल भोग भोगकर अन्त में विमान में प्रयाण करता है।

भादों की शुक्ल नवमी में पूजा करने से मनुष्य अश्वमेध का फल प्राप्त करके बैकुण्ठ में पूजित होता है। आश्विन की नवमी महापूर्वा कहलाती है इसमें जो मनुष्य दुर्गा की आराधना करता है उसकी दुर्गति नहीं होती है।

कार्तिक शुक्ल नवमी का नाम अक्षया है उसको करने से सभी कर्म अक्षय्य हो जाते हैं ऐसा ब्रह्मा ने कहा है।

फाल्गुन की शुक्लपक्ष की नवमी महापुण्यदायिनी तथा अखिल पाप हारिणी है इसका नाम आनन्दा है। इस दिन नंदा देवी की अर्चना करने से अभीष्ट सिद्धि होती है।[1]

अग्निपुराण में नवमी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'देवीं पूज्या श्विने शुक्ले गौर्याख्यानवमीव्रतम्।'[2]

आश्विन शुक्लपक्ष की नवमी का नाम गौरी है। इसे पिष्टका भी कहते हैं क्योंकि उस दिन पिष्टो (पिन्नी) खाकर देवी का पूजन किया जाता है।

'अर्घादिना सर्वदा वै महती नवमी स्मृता।

दुर्गा तु नवगेहस्था एकागारस्थिता यथा।'[3]

1- आनन्दा सा महापुण्या सर्वपाप हरा स्मृता।

सोपवासोऽर्चयेत्तत्र यस्त्वानंदा द्विजोत्तम।' (नारदीयपुराण, 118/22)

2- अग्निपुराण, 185/1

3- वही, 185/3

सभी नवमी व्रतों में श्रेष्ठतम नवमी व्रत है जिसे अपराजिता भी कहते हैं उस दिन नवग्रहों में स्थित देवी की पूजा करनीचाहिए।

इस दिन ध्वजारोपण, बलिदान तथा रथयात्रोत्सव आदि करना भी श्रेयस्कर हुआ करता है।

नारदीयपुराण में दशमी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'एवं यः कुरुते विप्र धर्मराज प्रपूजनम्।
स धर्मस्याज्ञयागच्छेद्देवैः सावर्ध्यच्युत॥'[1]

चैत्र शुक्ल दशमी में जो धर्मराज का पूजन करता है वह उनकी आज्ञा से देवलोक को जाता है।

वैशाख शुक्ल दशमी में विष्णु की अर्चना करने से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

'ज्येष्ठः शुक्लदलं हस्तो बुद्धश्च दशमी तिथिः
गरानन्द व्यतीपाताः कन्येन्दुवृषभास्कराः।
दशयोगः समाख्यातो महापुण्यतमो द्विज
हरते दशपापानि तस्माद्दशहरः स्मृतः॥'[2]

ज्येष्ठ मास, शुक्लपक्ष, हस्तनक्षत्र, बुध दिन दशमी तिथि गरकरण आनन्द योग व्यतीपात कन्याराशि के चन्द्रमा और वृषराशि के सूर्य इन दश योगों का जब समावेश होता है। तब वह दिन महापुण्यदायक माना जाता है। वह दश प्रकार के पापों को हरण करता है। इसलिए दशहरा कहलाता है।

1- नारदीयपुराण, 119/4

2- वही, 119/8-9

आषाढ़ शुक्ल दशमी पुण्यदायिनी हुआ करती है। श्रावण शुक्ल दशमी सभी आशाओं को पूरा करती है।

श्रावण शुक्ल दशमी विजया नाम से प्रसिद्ध है, जो नर एक वर्ष भी विधिपूर्वक इस व्रत को करता है वह निश्चय ही सुखी एवं धनधान्यसम्पन्न होता है।

कार्तिक शुक्ल दशमी में जो व्यक्ति मांगलिक गीत, स्तुति पाठ तथा जप आदि से उस रात्रि को व्यतीत कर प्रातःकाल स्नान के बाद लोकपालों की अर्चना करता है, वह ऐहलौकिक उत्तम भोगों को भोग कर एक युग तक स्वर्गसुख प्राप्त करता है और अन्त में चक्रवर्ती राजा होकर जन्म लेता है।

'एतत्कृत्वा व्रतं विप्र ह्यारोग्यं प्राप्य भूतले।

धर्मराजप्रसादेन मोदते दिवि देववत्॥'[1]

अगहन शुक्ल दशमी में व्रत करने वाला व्यक्ति भूतल पर आरोग्य लाभ कर धर्मराज की कृपा से स्वर्ग में देवतुल्य आनन्द का उपभोक्ता होता है।

माघ शुक्ल दशमी में उपवास करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

फाल्गुन शुक्ल दशमी में चौदह यमों की पूजा करने से व्रती ऐह - लौकिक दिव्य भोगों को भोग कर अन्त में उत्तम विमान से विष्णुलोक को जाता है।

अग्निपुराण में दशमी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'दशम्यामेकभक्ताशी समाप्ते दशधेनुदः

दिशश्च काञ्चनीर्दद्याद् ब्राह्मणाधिपतिर्भवेत्।'[2]

दशमी के दिन व्रत समाप्त होने पर व्रती को दस गायों का दान करना चाहिए। ब्राह्मणों को सुवर्ण दक्षिणा देने से व्रती ब्राह्मणाधिपति हो जाता है।

1- नारदीयपुराण, 119/49

2- अग्निपुराण 186/1

नारदीयपुराण में एकादशी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

"इयं तु कामदा नाम सर्वपातकनाशिनी।

भुक्तिमुक्तिप्रदा विप्र भक्त्या सम्यगुपोषिता॥"[1]

चैत्र शुक्ल की एकादशी का नाम कामदा है। इसमें सम्यक् उपवास करने से सकल पातकों का नाश तथा भोग मोक्ष का लाभ होता है।

'वरूथिनीव्रतं कृत्वा नरो नियमतत्परः।

सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं लभते पदम्॥'[2]

वैशाख शुक्ल एकादशी में जो नर नियमपूर्वक वरूथिनी व्रत करता है, वह सकल पातकों से मुक्त होकर वैकुण्ठ को जाता है।

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी का नाम निर्जला है। उस दिन भक्तिपूर्वक विप्रों को भोजन कराने से चौबीस एकादशी व्रतों का फल प्राप्त होता है।

आषाढ़ कृष्ण एकादशी का नाम योगिनी है इस दिन व्रत करने से मनुष्य निखिल दानों का फल प्राप्त कर वैकुण्ठ को जाता है।

'श्रावणे कृष्णपक्षे तु एकादश्यां द्विजोत्तम

कामिकां समुपोष्यैव नियमेन मुनीत्तम।

एवं यः कुरुते विप्रकामिकाव्रतमुत्तमम्।

स सर्वकामांल्लब्ध्वेह याति विष्णोः परं पदम्।'[3]

श्रावण कृष्ण एकादशी का नाम कामिका है। इसमें नियमपूर्वक उपवास रहकर नरों में उत्तम श्रीधर भगवान का पूजन करें। इस प्रकार जो उत्तम कामिका

1- नारदीयपुराण 120/7

2- वही, 120/10

3- वही, 120/28/30

व्रत करता है वह समस्त कामनाओं को प्राप्त कर बैकुण्ठ को जाता है।

श्रावण शुक्ल एकादशी का नाम पवित्रा है इसमें व्रत करने वाला व्यक्ति गुणवान पुत्र को प्राप्त कर सर्वदेववन्द्य होकर बैकुण्ठ को जाता है।

भाद्रकृष्ण एकादशी में जो सावधान होकर भक्ति से अजा व्रत करता है वह अखिल भोगों को भोगकर अन्त में विष्णुलोक को जाता है।[1]

भाद्र शुक्ल एकादशी में जो उत्तम पद्मव्रत करता है वह इस लोक में भोगों को भोगकर अन्त में संसार से मुक्ति पाता है।

एवं कृतव्रतो मर्त्यो भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान्।
पितॄणां कोटिमुद्धृत्य यात्यते वैष्णवं गृहम्।'[2]

आश्विन कृष्ण एकादशी का नाम इंदिरा है। इसमें व्रत करने वाला मनुष्य अभिलषित भोगों को भोग कर करोड़ों पितरों का उद्धार करके अन्त में विष्णुलोक को जाता है।

आश्विन शुक्ल एकादशी का नाम पापांकुशा है जो नर यह व्रत करता है वह इस लोक में उत्तम भोगों को भोगकर विष्णु के सालोक्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

'कार्तिके कृष्णपक्षे तु एकादश्यां द्विजोत्तम।
रमामुपोष्य विधिवद्द्वादश्यां प्रातरर्चयेत्।
एवं कृतव्रतो विप्र भोगान्भुक्त्वेह वांछितान्॥
व्योमयानेन सांनिध्यं लभते वरमापतेः ॥'[3]

1- एवं कृतव्रतो विप्र भक्त्याऽजायाः समाहितः।
भुक्त्वेह भोगानखिलान्यत्यंते वैष्णवं क्षयम्॥ (नारदीयपुराण 120/35)

2- नारदीयपुराण 120/44

3- वही, 120/48

कार्तिक कृष्ण एकादशी का नाम रमा है। इस दिन उपवास करके प्रातःकाल द्वादशी में केशव भगवान की अर्चना करे। इस प्रकार व्रत करने वाला व्यक्ति ऐहलौकिक इष्ट भोगों को भोगकर विमान से बैकुण्ठ को जाता है।

कार्तिक शुक्ल एकादशी का नाम प्रबोधिनी है जो मनुष्य यह व्रत करता है वह इस लोक में उत्तम भोगों को भोगकर विष्णुपद को प्राप्त करता है।

अगहन शुक्ल एकादशी का नाम उत्पन्ना है इसमें भक्तिभाव से व्रत करने वाला व्यक्ति विमान पर आरूढ़ होकर विष्णुलोक को जाता है।

मार्ग शुक्ल एकादशी में जो मोक्षा व्रत करता है वह दश पूर्वपुरुषों तथा दश भावी वंशजों का उद्धार कर हरिलोक को जाता है।

इसी प्रकार पौष कृष्ण में सफला एकादशी तथा शुक्लपक्ष में पुत्रदा एकादशी का व्रत करने से व्यक्ति उत्तम विमान से विष्णुलोक को जाता है।

'एवं कृत्वा व्रतं विप्र विधिना सुसमाहितः।

भुक्त्वेह वांछितान्भोगानन्ते विष्णुपदं लभेत्।'[1]

माघ कृष्ण एकादशी में षटतिला व्रत को सावधानी से करने वाला व्यक्ति इस लोक में अभिलषित भोगों को भोग बैकुण्ठ को जाता है। माघ शुक्ल एकादशी में जया व्रत करने पर व्रती बैकुण्ठगामी होता है।

फाल्गुन कृष्ण एकादशी में विजया व्रत करने से मानव ऐहलौकिक वांछित भोगों को भोगकर देहान्त में देवसम्मानित होकर विष्णु लोक को जाता है। एवं शुक्लपक्ष की एकादशी में आमलकी व्रत करने से विष्णु के परमपद को प्राप्त करता है।

1- नारदीयपुराण 120/70

नारदीय पुराण के उत्तरार्ध में प्रथम अध्याय में वशिष्ठ ने मधाता को एकादशी व्रत की महिमा के बारे में बताया है कि इस दिन जो मनुष्य संयम पूर्वक उपवास करके रात्रि जागरण करता है उसके पाप उसी तरह अपहृत हो जाते हैं जैसे चोर द्वारा धन। यह स्वर्ग, मोक्ष, राज्य, पुत्र, सुभार्या तथा शरीरारोग्य देने वाली है। इससे बढ़कर पुण्यदेने वाली न गंगा, न गया, न काशी, न पुष्कर, न कुरुक्षेत्र, न यमुना न चन्द्रभागा ही है।[1]

<u>अग्निपुराण में एकादशी व्रत कथा एवं फलश्रुति :-</u>

'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।

द्वादश्येकादशी यत्र तत्र संनिहितो हरिः।'[2]

दोनों पक्ष की एकादशी में भोजन नहीं करना चाहिए। कादशी में द्वादशी का योग पड़ जाने से भगवान विष्णु का सामीप्य प्राप्त हो जाता है।

शुक्लपक्ष की एकादशी में यदि पुष्यनक्षत्र हो तो उसमें अवश्य उपवास करना चाहिए क्योंकि वह पापनाशिनी तथा अक्षयफलदायिनी हुआ करती है।[3]

'सैव फाल्गुने मासि पुष्यर्क्षेण च संयुता।

विजया प्रोच्यते सद्भिः कोटिकोटिगुणोत्तर।'[3]

यदि फाल्गुन मास में पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो विजया कहलाती है। विद्वान् लोग उसे पूर्वोक्त तिथि की अपेक्षा करोड़ों गुना अधिक फल देने वाला बतलाते हैं।

सभी एकादशी में विष्णु की पूजा की जाती है वह सबके लिए उपकारक हैं।

1- अग्निपुराण, 187/1

2- एकादश्यां सिते पक्षे पुष्यर्क्षं तु यदा भवेत। सोपोष्या अक्षयफलदा प्रोक्ता सा पापनाशिनी।' (वही, 187/6)

3- वही, 187/8

नारदीयपुराण में द्वादशी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'चैत्रस्य शुक्लद्वादश्यां मदनव्रतमाचरेत्।'[1]

चैत्र शुक्ल द्वादशी में मदनव्रत करना चाहिए।

'एवं कृतव्रतस्यापि दाम्पत्यं जायते स्थिरम्।

सप्तजन्मसुभुङ्क्ते च भोगान् लोकद्वयेप्सितान्।'[2]

इस प्रकार व्रत करने वाला व्यक्ति स्थायी दाम्पत्य की प्राप्ति करता है तथा सात जन्मों तक दोनों लोक के अभीष्ट भोगों को भोगता है।

वैशाख शुक्ल द्वादशी में त्रिविक्रम की पूजा करने से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

भाद्रशुक्ल द्वादशी में वामन की पूजा करने से विष्णु जी प्रसन्न होते हैं - "व्रतेनैतेन संतुष्टः पद्मनाभो द्विजोत्तम।

श्वेतद्वीपगतिं दद्याद्देहभोगांश्च वाञ्छितान्।'[3]

आश्विन शुक्ल द्वादशी में पद्मनाभ की पूजा करने से श्वेत द्वीप का निवास वांछित शरीर भोग प्राप्त होता है।

'कार्तिके कृष्णपक्षे तु गोवत्सद्वादशीव्रतम्।'[4]

कार्तिके कृष्णपक्ष में गोवत्सद्वादशी व्रत करना चाहिए। कार्तिक शुक्ल द्वादशी में व्रत करने वाला व्यक्ति विष्णु का प्रिय तथा अखिल भोग भोक्ता होकर देहान्त होने पर विष्णु सायुज्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

1- नारदीयपुराण 121/2

2- वही, 121/14

3- वही, 121/26

4- वही, 121/27

अगहन शुक्ल द्वादशी में अत्युत्तम साध्यव्रत करना चाहिए। उसी दिन द्वादशादित्य व्रत भी किया जाता है।

'सूर्यलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगांश्चिरं ततः।
जायते भुवि धर्मात्मा मानुष्ये रोगवर्जितः।'[1]

इस प्रकार व्रत करने वाला व्यक्ति सूर्य लोक में जाकर चिरकाल तक अखिल भोगों को भोग कर पृथ्वी पर धर्मात्मा तथा नीरोग होकर जन्म लेता है।

पौष कृष्ण द्वादशी में रूपव्रत को करने से रूप एवं सौभाग्य बढ़ता है। पौष शुक्ल में भी सुजन्म द्वादशी व्रत करने से व्यक्ति उत्तम कुल में जन्म पाकर नीरोग, धनधान्य सम्पन्न वाला होता है।

'माघस्य शुक्ल द्वादश्यां शालग्रामशिला द्विज।
अभ्यर्च्य विधिवद्भक्त्या सुवर्णं तन्मुखे न्यसेत्॥'[2]

माघ शुक्ल द्वादशी में विष्णु चिन्तन परायण व्यक्ति ऐहलौकिक वांछित भोगों को भोगकर बैकुण्ठ को जाता है।

इस प्रकार सभी द्वादशियाँ पापहारिणी हैं।

अग्निपुराण में द्वादशी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :—

'उपवासेन भैक्षेण चैव द्वादशिकः व्रती।
चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां मदनं हरिम्।'[3]

1- नारदीयपुराण, 121/59
2- वही, 121/86
3- अग्निपुराण, 188/2

चैत्र मास में शुक्लपक्ष में मदन द्वादशी व्रत करना चाहिए। इसमें भोग एवं मोक्ष के इच्छुक को मदन गोपाल की पूजा करनी चाहिए।

माघ मास की द्वादशी में विष्णु का पूजन करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

'लवणं मार्गशीर्षे तु कृष्णमभ्यर्च्य यो नरः।
ददाति शुक्लद्वादश्यां स सर्वरसदायकः।'[1]

मार्गशीर्ष की शुक्लपक्ष की द्वादशी मेंलवण दान करने से व्रत करने वाले सभी रसों के दान का फल प्राप्त करते हैं।

माघ कृष्ण पक्ष की द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो तिल द्वादशी कहलाती है। इस प्रकार छह 'तिल द्वादशी' व्रत करने वाला व्यक्ति अपने वंशजों के साथ स्वर्ग प्राप्त करता है।[2]

'सुगतिद्वादशीकारी फाल्गुने तु सिते यजेत्।
जय कृष्ण नमस्तुभ्यम् वर्षं स्याद्भुक्तिमुक्तिगः।[3]

फाल्गुन शुक्लपक्ष में 'सुगति द्वादशी' व्रत करने वाले व्यक्ति को जय कृष्ण नमस्तुभ्यम् कहकर पूजा करनी चाहिए इससे भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

1- अग्निपुराण, 188/5

2- द्वादशी या भवेत् कृष्णा प्रोक्ता सा तिलद्वादशी।

कुलः स्वर्गमाप्नोति षट्तिल द्वादशी व्रती। (अग्निपुराण, 188/7)

3- अग्निपुराण, 188/14

भाद्र शुक्लपक्ष की द्वादशी में नदियों के संगम में स्नान करने से श्रवण द्वादशी का फल प्राप्त होता है। इसमें दान करने से महान फल प्राप्त होता है। इसी भांति अखण्ड द्वादशी में आयु, आरोग्य, सौभाग्य तथा भोग आदि की प्राप्ति होती है।

'संगमे सरितां स्नानाच्छ्रवणद्वादशीफलम्।

बुधश्रवणसंयुक्ता दानादौ सुमहाफला

नदियों के संगम में स्नान करने से श्रवण द्वादशी व्रत करने का फल प्राप्त होता है। बुध दिन तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त उक्त द्वादशी में दान आदि करने से महान फल प्राप्त होता है।

'सप्तजन्मसु वैकल्यं व्रतानां सफलं कृते

आयुरारोग्य सौभाग्यराज्यभोगादिमाप्नुयात्।'[2]

इसी प्रकार श्रवण द्वादशी व्रत के करने से सात जन्मों में किए हुए व्रतों की अपूर्णता सफल हो जाती है। इससे आयु, आरोग्य, सौभाग्य, राज्य तथा भोग आदि की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार विधि विधान श्रद्धा तथा उदारता से जो व्यक्ति एक वर्ष की द्वादशियों का व्रत विधिपूर्वक करके उद्यापन करता है। उसकी इस लोक में सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। वह सभी पापों के साथ मरणोपरान्त अपने पूर्व पुरुषों के साथ निवास करता है।

1- अग्निपुराण, 189/2

2- वही, 190/6

नारदीयपुराण में त्रयोदशी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

त्रयोदशी व्रत के अनुष्ठान से मनुष्य पृथ्वी पर सौभाग्यवान होता है। "ततः संपूजितः कामः पुत्रपौत्रविवर्धनः ।

अनंगपूजाख्यमेतत्ता तां निबोध मुनीश्वरः ।'[1]

चैत्र शुक्ल त्रयोदशी में अनंगपूजा की जाती है, ऐसा करने से अत्यन्त प्रसन्न मदन पुत्र पौत्रादि को बढ़ाते हैं।

यदि यह त्रयोदशी शनि के दिन पड़ जाये तो महावारुणी योग लगता है। कोटि सूर्य ग्रहणों में स्नान करने की अपेक्षा महावारुणी में गंगा स्नान करना अधिक फलदायक होताहै। इसमें स्नान करने से एक करोड़ कुल को मोक्ष मिलता है।

'मंदारकरवीरार्का भवतो भास्करांशजाः ।

पूजिताः मम दौर्भाग्यं नाशयन्तु नमोऽस्तु वः ।'[2]

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी मंदार, आर्क तथा करवीर इन तीनों वृक्षों का पूजन करने से दौर्भाग्य नष्ट हो जाता है;

श्रावण शुक्ल त्रयोदशी स्त्रियों के वैधव्य योग को नष्ट करता है, तथा संतानों को बढ़ाता है।

'अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च।'[3]

कृत्वा यत फलमाप्नोति गोत्रिरात्रव्रताच्च तत्।"

1- नारदीयपुराण, 122/3

2- वही, 122/20

3- वही, 122/40

भाद्र शुक्ल त्रयोदशी में सहस्त्रों अश्वमेध यज्ञ और राजसूय यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है। वह गोत्रिरात्र व्रत से मिलता है।

'एवं कृतव्रता नारी वैधव्यं नाप्नुयात्क्वचित्।

पुत्र पौत्रादिसहिता भर्तुश्च स्यात्सुवल्लभा।"[1]

आश्विन शुक्ल त्रयोदशी में त्रिरात्रिक व्रत करने से नारी कभी विधवा नहीं होती तथा पुत्र पौत्रादि से युक्त होकर स्वामी की प्रेयसी होती है।

कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी में जो व्यक्ति शिव के शतनामों का पाठ करता है। वह उनके लोक को जाता है। अगहन शुक्ल त्रयोदशी में शिव की पूजा करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

'पौष शुक्ल त्रयोदश्यां समभ्यर्च्याच्युतं हरिम्।

घृतपात्रं द्विजेन्द्राय प्रदद्यात्सर्वसिद्धये।[2]

पौष शुक्ल त्रयोदशी विष्णु की अर्चना करके घृतपूर्ण पात्र ब्राह्मण को दान करने से सकल कामनायें सिद्ध होती है।

माघमास में तीन दिन प्रयाग स्नान से जितना फल प्राप्त होता है, उतना सहस्त्र अश्वमेध यज्ञ करने से भी नहींहोता है।'[3]

इस प्रकार प्रत्येक मास की त्रयोदशी में उपवास कर पूजा करने से मनुष्य यशभक्त होता है।

1- नारदीयपुराण 122/45

2- वही 122/72

3- प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम्।

नाश्वमेधसहस्त्रेण तत्फलं लभते भुवि।(वही, 122/74)

अग्निपुराण में त्रयोदशी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

'महेश्वरं मौक्तिकाशी माघेऽभ्यर्च्य दिवं व्रजेत्।'[1]

माघ मास की त्रयोदशी में महेश्वर की अर्चना करे मोती खाने से व्रती स्वर्गगामी होता है।

चैत्रमास में कपूर खाकर महेश्वर की पूजा करने से व्रत करने वाला सौभाग्यवान होता है।

'अशोकाख्यं नगं लिख्य सिन्दूररजनीमुखैः ।
अब्दं यजेत्तु कामार्थी कामत्रयोदशीव्रतम्।'[2]

अपनी कामनाओं को पूर्ण करने वाले व्यक्ति को चैत्र शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी में सिन्दूर से अशोक वृक्ष का चित्र बनाकर कामत्रयोदशी व्रत करना चाहिए।

नारदीयपुराण में चतुर्दशी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

चैत्र शुक्ल चतुर्दशी एक भुक्त होकर यव का भोजन करने से व्रती अश्वमेध यज्ञों का पुण्य प्राप्त करता है।

'एवं यः कुरुते विप्र विधिवद्व्रतमुत्तमम्।
वर्षे वर्षे स लभते भुक्तभोगो हरेः पदम्।'[3]

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी में श्रीनृसिंह भगवान के व्रत को जो प्रतिवर्ष विधिपूर्वक करता है, वह सकल भोगों को प्राप्त कर शिवलोक को जाता है।

1- अग्निपुराण, 191/3

2- वही, 191/11

3- नारदीयपुराण, 123/13

आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी में देशकालोत्पन्न पुष्पों से शिव की पूजा करने वाला मानव सकल सम्पत्तियों को प्राप्त करता है।

'पवित्रारोपणं कृत्वा नरो नार्यथवा यदि।

महादेव्याः प्रसादेन भुक्तिं मुक्तिमवाप्नुयात्।'[1]

श्रावण शुक्ल चतुर्दशी में पवित्रारोपण करने वाला नर या नारी महादेवी की कृपा से भोग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है।

'सोऽनन्तमिष्टपक्वान्नैर्दक्षिणाभिः प्रतोषयेत्।

एवं यः कुरुते नत व्रतं प्रत्यब्दमादरात्।'[2]

भाद्र शुक्ल चतुर्दशी चौदह ब्राह्मणों को जो मिष्टान्न आदि खिलाकर अनन्त व्रत को आदरपूर्वक करता है। उसको भुक्तिमुक्ति की प्राप्ति होती है।

आश्विन शुक्ल चतुर्दशी में पितरों का उद्धार करके सनातन देव-लोकको जाता है।

'उर्ज्जकृष्णचतुर्दश्यां तैलाभ्यंगं विधूदये।

कृत्वा स्नात्वार्चयेद्धर्मं नराकादभयं लभेत्।'[3]

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी में चन्द्रोदय होने पर तेल लगाकर स्नान करने के उपरान्त धर्मराज कीपूजा करने से नरक नहीं जाना पड़ता है। जो इस व्रत को करता है वह इस लोक तथा परलोक में वांछित फलों को प्राप्त करता है।

1- नारदीयपुराण, 123/22

2- वही, 123/32

3- वही, 123/46

अगहन शुक्ल चतुर्दशी में विरूपाक्ष व्रत करने से व्यक्ति स्वर्ग में देवता की तरह विहार करता है।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी में शिवरात्र व्रत करना चाहिए।

"एवं कृत्वा व्रतं मर्त्यो महादेव प्रसादतः।

अमर्त्यभोगान् लभते दैवतैः सुसभाजितः।"[1]

फाल्गुन चतुर्दशी में शिवरात्र व्रत करने वाला मानव महादेव की कृपा से देवताओं के साथ नित्य भोगों को भोगता है।

फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी में एकभुक्त रहकर जो दुर्गा का व्रत करता है वह इस लोक में तथा परलोक में अभिलषित फलों को प्राप्त करता है।

अग्निपुराण में चतुर्दशी व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

कार्तिके तु चतुर्दश्यां निराहारो यजेच्छिवम्।

वर्षं भोगधनायुष्मान्कुर्वीन्शिवचतुर्दशीम्।[2]

कार्तिक की चतुर्दशी में निराहार रहकर शिव की पूजा करनी चाहिए। एक वर्षतक शिव चतुर्दशी व्रत करने से भोग, धन और आयु की प्राप्ति होती है।

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः।

अनश्ननन्पूजयेच्छम्भुं स्वर्ग्यभयचतुर्दशीम्।"[3]

1- नारदीयपुराण,

2- अग्निपुराण, 192/1

3- अग्निपुराण, 192/4

शुक्ल तथा कृष्ण दोनों पक्षों की चतुर्दशी बिना कुछ खाये शम्भु की अर्चना करनी चाहिए। दोनों पक्षों की चतुर्दशी स्वर्ग को देने वाली हुआ करती है।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में रात्रि में व्रत रखने से इस लोकमें भोग तथा परलोक में शुभगति की प्राप्ति होती है।

भाद्र शुक्लपक्ष की चतुर्दशी में अनन्त कीपूजा करने से व्यक्ति सुखी होता है।

नारदीयपुराण में पूर्णिमा एवं अमावस्या व्रतों की फलश्रुति :-

पूर्णिमा का अनुष्ठान करने से नर या नारी को सुख संतानों की प्राप्ति होती है। वैशाख की पूर्णिमा में गोदान का फल मिलता है।

'कुम्भान्स्वच्छजलैः पूर्णान्हिरण्येन समन्वितान्।

यः प्रदद्याद्द्विजाग्र्येभ्यः स न शोचति कर्हिचित्।'[1]

उक्त तिथि में जो स्वच्छ जल पूर्ण घट सुवर्ण समेत उत्तम ब्राह्मण को समर्पित करता है उसे कभी शोक नहीं होता है।

ज्येष्ठ पूर्णिमा में व्रत करने से स्त्री सौभाग्यशालिनी होती है।

एवं कृत्वा व्रतं विप्र प्रसादात्कमलापतेः

ऐहिकामुष्मिकान्कामाल्लभते नात्र संशयः।[2]

आषाढ़ की पूर्णिमा में गोपद्म व्रत करने वालाव्यक्ति कमलापति की कृपा से ऐहलौकिक तथा पारलौकिक फलों को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है।

1- नारदीयपुराण, 128/8

2- वही, 128/17

आश्विन की पूर्णिमा में एक लाख या पचास हजार या चांदी या मिट्टी के दीपों में घी भरकर जलाये। लक्ष्मी की पूजा करने पर इस लोक में संपत्ति और परलोक में सुगति प्राप्त होती है।

कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां तु कुर्यात्कार्तिकदर्शनम्।
विप्रत्वलब्धये भूयः सर्वशत्रुजयाय च।'[1]

कार्तिक पूर्णिमा में कार्तिक के दर्शन करने से विप्रत्व तथा शत्रुओं से विजय की प्राप्ति होती है। यह समस्त लोकों के लिए सुखदायक है।

अगहन की पूर्णिमा में रमाप्रीतिवर्धक व्रत करने से व्रती दरिद्रता से मुक्त होकर इस लोक तथा परलोक में आनन्दित होता है।

"होलिका राक्षसी चेयं प्रह्लादभयदायिनी।
ततस्तां प्रदहन्त्येव काष्ठाद्यैर्गीतमंगलैः।"[2]

फाल्गुन की पूर्णिमा में होलिका नामक राक्षसी प्रह्लाद को डराती थी। इसलिए लोग गाना बजाना करते हुए लकड़ी आदि से उसे इस प्रकार जलाते हैं।

चैत्र और वैशाख की अमावस्या में पितृपूजन करने से पुण्य की प्राप्ति होती है।

'शुचौ नभसि भाद्रे च मासि पूर्णास्विके द्विज।
पितृश्राद्धं दानं होमसुरार्चानित्यमश्नुते।'[3]

1- नारदीयपुराण, 123/56

2- वही, 124/80

3- वही, 124/86

आषाढ़, श्रवण तथा भादों की अमावस्या में पितृश्राद्ध, दान होम तथा देवार्चन करने से अनन्त फल प्राप्त होता है।

आश्विन की अमावस्या में भी गयातीर्थ एवं पितरों का श्राद्धतर्पण मुक्तिदायक माना जाता है।

'अमायां कर्णपातर्क्षनुवतायां तु गयाधिकम्।
फाल्गुने केवलं श्राद्धं द्विजानां भोजनंतथा।'[1]

फाल्गुन की अमावस्या में श्रवण, व्यतीपात और सूर्य का योग रहने पर सामान्य श्राद्ध एवं ब्राह्मण भोजन गया श्राद्ध से अधिक फल देने वाला है। सोमवती अमावस्या में दान करने से प्रचुर फल मिलता है। इस प्रकार सभी अमावस्या में पितरों के पूजन का विधान है।

अग्निपुराण में पूर्णिमा एवं अमावस्या व्रतों की कथा एवं फलश्रुति :-

फाल्गुन की पूर्णिमा में एक वर्ष तक व्रत करने से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्।
शैवं पदमवाप्नोति वृषव्रतमिदं परम्।"[2]

कार्तिक की पूर्णिमा में वृषभ का दान करके शान व्रत करना चाहिए इस व्रत का नाम वृषव्रत है, इसको करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है।

पितृविसर्जनी अमावस्या में पितरों का पूजन करने से स्वर्ग प्राप्ति होती है। माघ में ब्रह्मा की पूजा करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

1- नारदीयपुराण, 124/93

2- अग्निपुराण, 194/2

पंचदश्यां व्रती ज्येष्ठे वटमूले महासतीम्।
त्रिरात्रो पोषिता नारी सप्तधान्यैः प्रपूजयेत्।[1]

वट सावित्री अमावस्या भोग एवं मोक्ष को देने वाली होती है। इसमें तीन रात उपवास करके ज्येष्ठ मास की अमावस्या के दिन प्रातः काल स्त्री को वट वृक्ष के मूल में सप्तधान्य से पूजा करनी चाहिए।

<u>नारदीयपुराण में ध्वजारोपण व्रत की कथा एवं फलश्रुति :-</u>

'ध्वजारोपण तुल्यं स्याद् गंगास्नानमनुत्तमम्।
अथवा तुलसी सेवा शिवलिंगप्रपूजनम्॥[2]

ध्वजारोपण कर्म परमोत्तम गंगा स्नान, तुलसी सेवा अथवा शिवलिंग की पूजा के समान फल देने वाला होता है।

'हेमभारसहस्त्रम् तु यो ददाति कुटुम्बिने।
तत्फलं तुल्यमात्रं स्याद्ध्वजारोपणकर्मणः।'[3]

जो व्यक्ति किसी परिवार वाले ब्राह्मण को एक हजार भार सोना देता है, उसके बराबर फल ध्वजारोपण कर्म से होता है।

इस ध्वजा का वस्त्र जितने दिनों तक वायु में फहराता है, उसके उतने ही पाप समूह नष्ट हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।

1- अग्निपुराण, 194/5

2- नारदीयपुराण, 19/4

3- वही, 19/3

महापापों से युक्त अथवा सब पापों के करने वाले व्यक्ति विष्णु-मंदिर में ध्वजारोपण कर सब पापों से नष्ट हो जाते हैं।[1]

"आरोपितो ध्वजोविष्णुगृहे धुन्वन्नटस्वकम्।

कर्तुः सर्वाणि पापानि धुनोति निमिषाद्धतः।"[2]

जो धार्मिक आरोपित ध्वजा को देखकर नमस्कार करते हैं, वे अपने करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाते हैं। ध्वज की नित्य पूजा करने वाला व्यक्ति देव विमान से स्वर्ग लोक को जाता हुआ सा प्रतीत होता है।

अग्निपुराण में ध्वजारोपण व्रत की कथा एवं फलश्रुति :-

मन्दिर के पीठ को आवेष्टित करने वाला ध्वज महाध्वज कहलाता है। बाँस या साखू आदि का बना हुआ दण्ड सभी कामनाओं को देने वाला होता है।

अथमारोप्यमाणस्तु भंगमायाति वै यदि।

राज्ञोऽनिष्टं विजानीयाद्यजमानस्य वा तथा।"[3]

यदि दण्ड का आरोपण करने पर वह टूट जाये तो राजा अथवा यजमान का अनिष्ट हुआ करता है।

मंदिर को नहलाकर पुष्पाहार और वस्त्र आदि से अलंकृत कर अनुष्ठान करने से स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होता है।

1- महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः।

ध्वज विष्णुगृहे कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः॥ '(नारदीयपुराण, 19/43)

2- वही, 19/45

3- वही, 102/8

नारदीयपुराण में हरिपंचक व्रत की कथा एवं फलश्रुति :-

हरिपंचक व्रत परम दुर्लभ एवं सब लोकों में प्रसिद्ध व्रत है।

"नारीणां च नराणां च सर्वदुःख निवारणम्।

धर्मकामार्थमोक्षाणां निदानं मुनिसत्तम।"[1]

यह व्रत नर नारी सबके दुखों को दूर करने वाला धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का एकमात्र कारण है। सब मनोरथों और सब व्रतों के फल को देने वाला है।

इसमें तिल का हवन और तिल का दान करना श्रेयस्कर है।

"व्रतमेतत्प्रकर्तव्यमिच्छद्भिर्मोक्षमुत्तमम्।

समस्त पापकान्तारदावानल सम द्विज।"[2]

उत्तम मोक्ष पाने की इच्छा करने वाले को अवश्य यह व्रत करना चाहिए, यह व्रत समस्त पाप रूपी महावन के लिए दावानल के समान है।

सहस्त्र कोटि गौओं के दान से जो फल मिलता है, वह फल इस व्रत के उपवास से मनुष्यों को प्राप्त होता है।[3]

जो नारायण की सेवा में तल्लीन रहकर भक्ति पूर्वक इस व्रत की कथा को सुनता है, वह करोड़ों घोर महापापों से मुक्त हो जाता है।

1- नारदीयपुराण, 21/2

2- वही, 21/26

3- गवां कोटिसहस्त्राणि दत्वा यत्फलमाप्नुयात्।

तत्फलं लभ्यते पुंभिरेतस्मादुपवासतः।" (वही, 21/27)

अग्निपुराण में हरिपंचक व्रत कीकथा एवं फलश्रुति :-

अग्निपुराण में यह भीष्मपंचक व्रत कहा जाता है। इसमें भगवान विष्णु की पूजा की जाती है।

'गोमूत्र दधि दुग्धं च पंचमे पंचगव्यकम्।
पौर्णमास्यां चरेन्नक्तं भुक्तिं मुक्तिं लभेद्व्रती।'[1]

इसमें व्रती को गोबर गोमूत्र, दही और पंचगव्य का पान करना चाहिए, व्रती को पौर्णमासी की रात को व्रत तोड़ना चाहिए ऐसा करने से भुक्ति तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है।

'भीष्मः कृत्वा हरिं प्राप्तस्तेनैव भीष्मपंचकम्।
ब्रह्मणः पूजनात्पंच(कों)पवासादि(स्य)कं व्रतम्।'[2]

भीष्म ने यह व्रत करके बैकुण्ठ प्राप्त किया था, इसीलिए इसको भीष्मपंचक व्रत कहते हैं। ब्रह्मा का पूजन और पांच दिनों का उपवास यही इसका सार है।

नारदीयपुराण में मासोपवास व्रत की कथा एवं फलश्रुति :-

मासोपवास व्रत सब पापों को दूर करने वाला, पुण्यप्रद एवं लोकोपकारक होता है -

'मासोपवासांस्त्रितयं यः कुर्यात्समतीन्द्रियः।
आकल्पायमिस्य यत्स्य द्विगुणं फलमश्नुते।'[3]

1- अग्निपुराण, 205/8
2- वही, 205/9
2- नारदीयपुराण, 22/14
3- ~~वही, 22/16~~

जोसंयमी व्यक्ति (आषाढ़ श्रावण, भाद्रपद) तीन मासोपवास व्रत को करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ का दुगुना फल पाता है।

जो बारम्बार पारण पूर्वक इस व्रत का अनुष्ठान करता है। उसको आठ अग्निष्टोम यज्ञ के तुल्य फल प्राप्त हो जाता है।

'पंचकृत्वो व्रतमिदं कृतं येन महात्मना।

अत्यग्निष्टोमजं पुण्यं द्विगुणं प्राप्नुयान्नरः।'[1]

जो महात्मा पाँच बार इस व्रत का अनुष्ठान करता है, उसको अत्यग्निष्टोम यज्ञ का दूना फलप्राप्त होता है। जो छः बार करता है वह ज्योतिष्टोम यज्ञ का दुगुना फल प्राप्त करता है। निराहार रहने पर व्रती अश्वमेध यज्ञ का आठगुना फल पाता है।

'एकादश पराकांश्च यः कुर्यात्संयतेन्द्रियः।

स याति हरिसारूप्यं सर्वभोगसमन्वितम्।'[2]

जो संयमी ग्यारह बार इस व्रत को करता है, वह हरिसारूप्य प्राप्त कर सब भोगों का भोग करता है।

मासोपवास व्रत करने वाले, गंगास्नानपरायण और धर्ममार्ग का उपदेश करने वाले मनुष्य निः सन्देह मुक्ति प्राप्त करते हैं।[3]

गृहस्थ, वानप्रस्थ, व्रती, भिक्षु, मूर्ख अथवा पण्डित सभी इस व्रत कथा को सुनकर मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं।

1- नारदीयपुराण, 22/16

2- वही, 22/22

3- मासोपवासनिरता गंगास्नानपरायणाः। धर्ममार्गप्रवक्तारो मुक्ता एवं न संशयः॥

— वही, 22/24

अग्निपुराण में मासोपवास व्रत की कथा एवं फलश्रुति :-

मासोपवास व्रत करने से व्यक्ति अपनी सौ पीढ़ियों का उद्धार कर उन्हें बैकुण्ठ को प्राप्त करा देता है।

'मासोपवासी यद्देशे स देशो निर्मलो भवेत्।
किं पुनस्तत्कुलं सर्वं यत्र मासोपवास कृत।'[1]

मासोपवासी जिस देश में रहता है वह देश पवित्र हो जाता है, फिर उस कुल का क्या कहना जिसमें ऐसा व्रती हो?

'क्षीरगुरोडितो (तौ) भक्ष्य आपोमूलफलानि च।
विष्णुर्महौषधं कर्ता व्रतमासमुद्धरेत्॥'[2]

व्रत में विघ्नों को दूर करने के लिए विष्णु ही महौषध है। इसीलिए व्रती को उनकी शरण में जाना चाहिए।

तुलनात्मक विश्लेषण :-

भारतीय मनीषियों का चिन्तन ऐहिक सुख प्राप्ति के साथ पारलौकिक आनन्द की खोज रहा है। वैदिक काल एवं उपनिषद काल में ज्ञान क्षेत्र की श्रेष्ठता रही, किन्तु भौतिकता के बोझ से संक्रान्त जनता ज्ञान बिन्दु तक पहुँचने में असमर्थ होने लगी। तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार ऋषियों, महर्षियों ने पुराण कथाओं का समय-समय पर सृजन किया, साथ ही ज्ञान से भटकी हुई जनता को व्रतों से कायिक एवं मानसिक शुद्धि की परिलब्धि एवं व्रत के माहात्म्य और फलश्रुति की ओर आकृष्ट किया। इसीलिए सामान्य जनमानस में पुराणों का प्रभाव हुआ।

1- अग्निपुराण, 204/16

2- वही, 204/18

प्रस्तुत प्रबन्ध में नारदीय एवं अग्निपुराण मेंवर्णित व्रतों की कथा माहात्म्य एवं फलश्रुति का विवेचन मैंने यथामति किया है। दोनों पुराणों में वर्णित फलश्रुति के ऐहिक एवं पारलौकिक सुख की प्राप्ति को आधार बिन्दु मानकर प्रस्तुत किया जा रहा है —

(1) नारदीय पुराण में वर्ष भर की प्रतिपदा की फलश्रुति में धन, आयुः मोक्ष, शिवलोक, विष्णुलोक, आदित्यलोक की प्राप्ति का उल्लेख है, किन्तु अग्नि पुराण में धनी ब्राह्मण होकर जन्म लेना कहा गया है।

(2) द्वितीया के व्रत से सभी कामनाओं की प्राप्ति का वर्णन दोनों पुराणों में प्राप्त होता है। इस तरह इह लोक में सुख प्राप्ति का साम्य दृष्टिगोचर होता है, किन्तु पारलौकिक सुख में यह वैषम्य है कि नारदीय पुराण के अनुसार विष्णु, सूर्य, ब्रह्म आदि लोकों की प्राप्ति कही गया है, जबकि अग्नि पुराण एक स्वर से स्वर्गलोक की प्राप्ति की घोषणा करता है।

(3) तृतीया व्रत की फलश्रुति दोनों पुराणों में धन, पुत्र भोग, सौभाग्य आदि ऐहिक सुख की प्राप्ति का साम्य वर्णित है किन्तु पारलौकिक फल में नारदीय पुराण ने बैकुण्ठ, गौरी एवं विष्णु लोक की प्राप्ति कहा गया है, जबकि अग्निपुराण में गौरी लोक की प्राप्ति के साथ मोक्ष की प्राप्ति भी बतायी है।

(4) दोनों पुराणों में चतुर्थी व्रत के ऐहिक सुखों का साम्य देखने को मिलता है। पारलौकिक फल में नारदीय पुराण गौरी, विष्णु की एवं बैकुण्ठ की प्राप्ति बताता है। जबकि अग्निपुराण में शिवलोक की प्राप्ति एवं मुक्ति का वर्णन है।

(5) पंचमी के व्रत में उभय पुराणों में सर्पों से अभय एवं सभी सुखों की प्राप्ति का साम्य वर्णित है।

(6)आलोच्य पुराणों में षष्ठी के व्रत के फलस्वरूप इहलोक के भोग, पुत्रपौत्रादि की प्राप्ति के वर्णन का साम्य एवं पारलौकिक सुख में मोक्ष का साम्य मिलता है। नारदीय पुराण में मोक्ष की प्राप्ति के साथ शिवलोक की प्राप्ति भी कही गयी है।

(7)सप्तमी व्रत के वर्णन में ऐहलौकिक एवं पारलौकिक दोनों का साम्य है।

(8)अष्टमी के व्रत में गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ विचरण भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति दोनों पुराणों में सामान्य रूप से वर्णित है।

(9)नारदीय पुराण में परमपद एवं स्वर्ग की प्राप्ति तथा अभीष्ट सिद्धि नवमी व्रतों की फलश्रुति कही गयी है, किन्तु अग्निपुराण में ऐहिक तथा पारलौकिक सुख का अभाव है।

(10)दशमी व्रत के फलश्रुति में उभय पुराणोंमें पर्याप्त मतभेद है, यथा नारदीय पुराण के अनुसार धनधान्य के साथ विष्णुलोक या स्वर्ग की प्राप्ति कही गयी है, किन्तु अग्निपुराण में केवल ब्राह्मणाधिपति का कथन है।

(11)एकादशी से प्राप्तफल दोनों पुराणोंमें पृथक्-पृथक है। नारदीय में वैकुण्ठ, विष्णु एवं मोक्ष की प्राप्ति कही गयी है, अग्नि पुराण में सौ यज्ञों का फल प्राप्त होना निर्णीत है।

(12)द्वादशी के व्रत की फलश्रुति समालोच्य पुराणों में भोग एवं मोक्ष सामान्यरूप से वर्णित है।

(13)त्रयोदशी के व्रत के फलस्वरूप सभी कामनाओं की पूर्ति आदि ऐहिक सुख दोनों पुराणों में समानरूप से कहे गये हैं; किन्तु पारलौकिक फल में अग्निपुराण स्वर्गगामी होना निश्चय करता है।

(14)चतुर्दशी के व्रत करने वाले को इहलोक एवं परलोक दोनों में शुभगति प्राप्त होती है। यह कथन दोनों पुराणों का है।

(15)पूर्णिमा व्रत की फलश्रुति भोग एवं मोक्ष समान रूप से वर्णित है।

(16)अमावस्या के व्रत में अनन्त प्राप्ति एवं पितरों का उद्धार आलोच्य पुराणों में समान रूप से प्राप्त होता है।

निष्कर्ष रूप से यह कहना युक्तिसंगत है कि नारदीय एवं अग्नि पुराण में व्रतों की फलश्रुति में पर्याप्त साम्य मिलता है, जो कहीं यत्किंचित् वैषम्य परिलक्षित होता है, वह इष्टपरक वैषम्य ही कहा जायेगा। क्योंकि नारदीयपुराण विष्णुपरक एवं अग्निपुराण शिवपरक है। समष्टिरूप से एक ही शक्ति के दोनों रूप हैं, अतः पारलौकिक वैषम्य कथनमात्र में कहा जाना चाहिए, विष्णु या शिव एक ही अनन्त शक्ति के रूप हैं।

****

षष्ठ अध्याय

नारदीय एवं अग्निपुराण में व्रतकर्म विवेचन

****

षष्ठ अध्याय

नारदीय एवं अग्निपुराण में व्रतकर्म विवेचन

हमारे देश में व्रत, उत्सवों की परम्परा बहुत प्राचीन है। ये जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा देते हैं और संयममय समय व्यतीत करते हुए सदैव प्रफुल्लित रहने के लिए प्रेरित करते हैं। यद्यपि रोग भी पाप हैं और ऐसे पाप व्रतों से दूर होते हैं एवं कायिक, वाचिक, मानसिक एवं संसर्गजनित पाप, उपपाप महापापादि भी व्रतों से दूर होते हैं। इनको जो भक्ति से सुनता है उसकी ब्रह्म-हत्या जैसा पाप भी श्रवणमात्र से नष्ट हो जाता है।

व्रतों को करने में सभी प्रकार के नियमों का पालन करना चाहिए। यदि भूल से कोई गलत काम हो जाये तो उसका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए क्योंकि प्रायश्चित्त के द्वारा विशुद्ध आत्मा वाले सब कर्म फलों को प्राप्त करते हैं। प्राय-श्चित्त के बिना मनुष्य जो कुछ कर्म करता है, सब निष्फल हो जाता है और उसके सब कर्म राक्षसों से घिरे रहते हैं।[1] काम क्रोध से हीन, धर्मशास्त्रज्ञ और सब धर्म के फल के इच्छुक व्यक्ति को चाहिए कि वह व्रत करते समय प्रायश्चित्त करके एवं निषिद्ध कर्मों को ध्यानपूर्वक त्यागकर व्रत पूर्ण करे। उक्त अध्याय में हम निषिद्ध एवं प्रायश्चित्त कर्मों का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं।

1- प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा सर्वकर्म फलं लभेत्।
प्रायश्चित्तविहीनैस्तु यत्कर्म क्रियते मुने।
तत्सर्वं निष्फलं प्रोक्तं राक्षसैः परिसेवितम्॥"

— नारदीयपुराण, पूर्वभाग, अ029/1, 2

नारदीयपुराण में निषिद्ध एवं प्रायश्चित्त कर्म

(अ) निषिद्धकर्म :-

"देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः

मांसादनं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा।

दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं वरस्य च।

नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं च नरमेधाश्वमेधकौ।।"[1]

मनीषियों ने कलियुग में देवर से पुत्र उत्पन्न करना, मधुपर्क में पशुओं का वध, श्राद्ध में मांस भोजन, वानप्रस्थाश्रम, एक बार की दी हुई अक्षत कन्या का पुनर्विवाह, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य नरमेध अश्वमेध इन धर्मों को निषिद्ध कहा है, जो इसको अपनाता है वह सब धर्मों से बहिष्कृत होकर पतित समझा जाता है, ब्रह्मयज्ञ को न करने वाला ब्रह्मघाती कहा जाता है।

"मद्यस्त्री आमिलवणं ताम्बूलं दन्तधावनम्।

उच्छिष्टभोजनं चैव दिवास्वापं च वर्जयेत्।।"[2]

व्रती के लिए मद्य, स्त्री, मांस, नमक, ताम्बूल, दातौन, जूठाभोजन और दिन का सोना वर्जित है। उसको सुगन्धित पदार्थ, जलक्रीड़ा एवं नृत्य गीत आदि भी त्याग देना चाहिए।

1- नारदीयपुराण, पूर्वभाग, अध्याय 24/14, 15

2- वही, अध्याय 25/30

व्रत करने वाले को चिन्ता, अनुताप, व्यर्थालाप, अंजन, धूर्तों की संगति और शूद्रों की संगति भी नहीं करनी चाहिए।[1]

किसी भी अवस्था में क्षत्रिय आदि जाति के मनुष्य विप्रों के अभिवादन के योग्य नहीं है –

"नाभिवाद्यास्च विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन।
नास्तिकं भिन्नमर्यादं कृतघ्नग्रामयाजकम्॥"[2]

एवं न ही नास्तिक, सामाजिक, मर्यादा भंग करने वाले कृतघ्न पुरोहित, चोर और धूर्त का कभी भी अभिवादन करें।

बकवादी, उद्धत, वमन करते हुए, जल में खड़े, भिक्षुक और सोते हुए को प्रणाम करना सर्वथा वर्जित है।

"श्राद्धं व्रतं तथा दानं देवताभ्यर्चनं तथा।
यज्ञं च तर्पणं चैव कुर्वंतं नाभिवादयेत्॥"[3]

श्राद्ध, व्रत, दान, देवार्चन, यज्ञ और तर्पण करते हुए व्यक्ति का अभिवादन नहीं करना चाहिए एवं जो अभिवादन करने पर भी प्रत्यभिवादन नहीं करता उसको अभिवादन के अयोग्य समझना चाहिए।

"अयनादिपतये चैव तथा भूकम्पने मुने।
गलगृहे दुर्दिने च नाधीयीत कदाचन॥"[4]

2- नारदीयपुराण पूर्वभाग, 25/36   1- नारदीयपुराण, 25/32

3- वही, 25/42

4- वही, 25/57

व्रती को चाहिए कि दोनों अयनों के समय भूकम्प, गलग्रह और दुर्दिन में भी कभी अध्ययन नहीं करना चाहिए।

जो विप्र वेदों को बिना पढ़े आचार पालन करता है, वह कभी भी उसका फल नहीं पाता है। वह तो उसी प्रकार है जैसे शूद्र अशिक्षित विप्रों का नित्य, नैमित्तिक काम्य जो वैदिक कर्म है सब निष्फल होते हैं।

"शिरोभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत्।
ताम्बूलमशुचि नाद्यात्तथा सुप्तं न बोधयेत्।" [1]

व्रत के दिन शिर पर लगाने से बचे हुए तेल को शरीर पर नहीं लगाना चाहिए, न तो अशुद्ध पान ही खाना चाहिए एवं सोये हुए को जगाना भी उचित नहीं है।

"देवार्चाचमनस्नान व्रतश्राद्धक्रियादिषु।
न भवेन्मुक्तकेशश्च नैकवस्त्रधरस्तथा।" [2]

देवार्चन आचमन, स्नान, व्रत और श्राद्ध में केशों को न बिखेरें तथा केवल एक ही वस्त्र न पहनें।

व्रती को दूसरों के पापों को न कहना चाहिए न ही अपने पुण्य को प्रगट करना चाहिए।

"नाशुद्धोऽग्निं परिचरेत्पूजयेद्गुरुदेवताः।
न वामहस्तेनैकेन पिबेद्वक्त्रेण वा जलम्।।" [3]

1- नारदीयपुराण, पूर्वभाग अध्याय 26/35

2- वही, 26/24

3- वही 26/36

स्वयं अशुद्ध रहकर अग्नि, गुरू और देवता की पूजा नहीं करनी चाहिए। बायें हाथ से एक हाथ से अथवा पात्र को मुँह में लगाकर जल नहीं पीना चाहिए।

गुरू की छाया और आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। योगी व्रती, ब्राह्मण और सन्यासियों की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[1]

"अपोशाने चापमने अद्यद्भ्येषु च द्विजः ।
शब्दं न कारयेद्विप्रस्तं कुर्वन्नारकी भवेत्।।"[2]

आपोशान(आचमन) करते समय भोजन और जल पीते समय किसी भी प्रकार की बातचीत न करें अन्यथा वह व्यक्ति पाप का भागी होता है।

जो कव्यपदार्थ अकाल में दिये जाते हैं, वे राक्षसों के योग्य हो जाते हैं और पितरों को प्राप्त नहीं होते। अपकाल का दिया हुआ कव्य राक्षसों के योग्य तो ही हो जाता है साथ ही उसका दाता और भोक्ता भी नरक लोक में जाता है।

"नागविद्धा तु या षष्ठी रुद्रविद्धा तु सप्तमी।
दशम्येकादशीविद्धा नोपोष्याः स्युः कदाचन।
दर्शं च पौर्णमासीं च सप्तमीं पितृवासरम्।
पूर्वविद्धं प्रकुर्वाणो नरकायोपपद्यते।।"[3]

1- न चक्रमेद्गुरोश्छायां तदाज्ञां च मुनीश्वर।
न निंद्याद्योगिनो विप्रान्व्रतिनोऽपि यतींस्तथा।— नारदीयपु0पूर्वभाग 26/37

2- नारदीयपुराण पूर्वभाग 27/80

3- वही, 29/4-5

नाग से विद्ध षष्ठी शिव विद्धा सप्तमी, दशमी विद्ध एकादशी को भी उपवास नहीं करना चाहिए। अमावस्या पूर्णिमा सप्तमी और पितृदिवस ये यदि पूर्वतिथियों से विद्ध हों तो उस दिन उपवास या व्रत करने से मनुष्य नरकगामी होता है।

बिना ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाये हुए यज्ञ, दान, तप, होम आदि सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। इसलिए निषिद्ध कर्मों को न करते हुए व्रत पूर्ण करना चाहिए।

<u>(ब) प्रायश्चित्तकर्म :-</u>

"यो भुञ्जानोऽशुचिर्वापि चाण्डालं पतितं स्पृशेत्।
क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम्।
त्रिरात्रं वाथषड्रात्रं यथासंख्यं समाचरेत्।
स्नानं त्रिषवणं विप्र पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥[1]

जो भोजन करते समय क्रोध या अज्ञानवश अपवित्र, पतित या चाण्डाल को छू लेता है उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह तीन रात्रि या छह रात्रि तक व्रत रखे और तीनों काल स्नान करके, पंचगव्य पान करे तब वह शुद्ध होता है।

'यदा भोजनकाले स्यादशुचिर्ब्राह्मणः क्वचित्।
भूमौ निधाय तं ग्रासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात्॥[2]

1- नारदीयपुराण, अध्याय 14/2, 3पूर्वभाग

2- वही, 14/7, 8

"भक्षयित्वा तु तद् ग्रासमुपवासेन शुध्यति
अशित्वा चैव तत्सर्वं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्।"[1]

यदि कोई ब्राह्मण भोजन करते समय अपवित्र हो जाये तो ग्रास को को भूमि पर वह रख दे तो वह स्नान करने से शुद्ध हो जाता है। उस पवित्र अवस्था में यदि वह ग्रास को खा जाये तब वह उपवास से शुद्ध हो जाता है। यदि उस समय वह भोजन को खा ले तो वह तीन रात तक अशुद्ध रहता है।

व्रत में पारण करते समय यदि वमन हो जाये तो अस्वस्थ अवस्था में तीन सौ बार गायत्री मंत्र का जप करने से और स्वस्थावस्था में तीन हजार बार गायत्री मंत्र का जप करने से शुद्धि होती है।

"चाण्डालैः श्वपचैः स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः
त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत्॥"[2]

द्विज मल त्याग या मूत्र त्याग किये हुए चाण्डाल या श्वपच से छू जाये तो तीन रात्रि तक उपवास करे, यदि भोजन करके जूठे हो पश्चात् छू जाये तो छह दिन तक उपवास करे।

जो भूल से चाण्डाल का अन्न खा ले, वह एक पक्ष तक गोमूत्र और कुल्थी का आहार करने से शुद्ध हो जाता है।[3]

जो गौ और ब्राह्मण का घर जला दे, उसके कारण कोई बाधा हुआ पशु मर जाय तो वह कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत करे।

1- नारदीयपुराण पूर्वभाग, अध्याय, 14/7, 8
2- वही, 14/10, 11
3- अज्ञानाद्वा तु यो भुक्त्वा चाण्डालान्नं कथंचन।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विशुद्ध्यति॥' ना0पु014/25

व्रती को मदिरापान, मांस का आहार नहीं करना चाहिए। ऐसा करने वाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ् व्रत से और गौवीं होम से शुद्ध होता है।

कहा जाता है कि गोहन्ता को जो व्रत करना चाहिए वही व्रत गुरु-पत्नीगामी भी करे और यदि ब्रह्मचर्य भंग होने पर जो प्रायश्चित्त होता है वही उसको करना चाहिए।

"ताम्रायश्च पयोग्राह्यं श्वेतायाश्च दधिस्मृतम्।
कपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम्।"[1]

व्रत में शुक्ल गौ का मूत्र, कृष्णा गौ का गोबर, लाल गौ का दूध धवल गौ का दधि एवं कपिला गौ का घृत लेना चाहिए ये महापापों के नाशक हैं।

"अज्ञानाद्ब्राह्मणं हत्वा चीरवासाजटी भवेत्।
स्वेनैव हतविप्रस्य कपालमपि धारयेत्॥"[2]

अज्ञान से किसी ब्राह्मण की हत्या कर देने पर उस हत्यारे को जटा और वल्कल धारी होना चाहिए। यदि जानबूझ कर उसने ब्राह्मण-वध किया हो तो उसको कपाल धारण करना चाहिए।

"व्रतमध्ये मृगवीपि रोगर्दीर्तोऽ निषूदितः।
गोनिमित्तं द्विजार्थं वा प्राणान्वापि परित्यजेत्।
यद्वा दद्याद्विजेन्द्राणां गवामयुतमुत्तमम्।
एतेषान्यतम कृत्वा ब्रह्महा शुद्धमाप्नुयात्।"[3]

1- नारदीयपुराण, पूर्व अध्याय 14/68

2- वही, 30/7

3- वही, 30/13, 14

व्रतपालन काल में यदि किसी वन्य पशु के द्वारा या रोग से मृत्यु हो जाय, गौ अथवा ब्राह्मण रक्षार्थ प्राण त्याग कर दे अथवा ब्राह्मणों को दस हजार उत्तम गायों का दान कर दे तो वह ब्रह्मघाती शुद्ध हो जाता है। अग्नि में प्रवेश कर या पहाड़ से गिरकर अथवा प्राणवायु को रोककर प्राणत्याग करना इसके लिए उत्तम प्रायश्चित्त है।

ब्राह्मण यदि क्षत्रिय की हत्या कर दे तो उसको छह वर्ष तक कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। वैश्य अथवा शूद्र की हत्या करने पर एक वर्ष का प्रायश्चित्त करना शास्त्रों में निहित है।

"क्षीरं घृतं वा गोमूत्रमेतेष्वन्यतमं मुने।
स्नात्वार्द्रवासा नियतो नारायणमनुस्मरन्।
पक्वायसनिभं कृत्वा पिबेच्चैवोदकं ततः ॥[1]

व्रती मदिरा पान करने पर दूध, घी और गोमूत्र इनमें से किसी को जलते हुए लोहे के समान गर्म करके स्नान करने के बाद भीगी धोती पहने व एकाग्रभाव से हरि का स्मरण करता हुआ पी जावे और ऊपर से पानी पी ले। सुरा पान करने पर भी इसी प्रकार शुद्धि होती है। कोई द्विज यदि अज्ञानवश मदिरा पी ले तो पैरों में बेड़ियाँ लगाकर ब्रह्महत्या के समान प्रायश्चित्त कर ले, केवल उसके चिन्ह(कपाल आदि) न धारण करे।

"गुरूणामध्यक्षतॄणां हमिष्ठानां तथैव च।
श्रोत्रियाणां द्विजानां तु हत्वा चैवमाचरेत्।

1- नारदीयपुराण, पूर्वअध्याय, 30/24, 25

कृतानुतापो देहे च सपूर्णे लेपयेद्घृतम्।

करीषच्छादितो दग्धः स्तेयपापाद्विमुच्यते।"[1]

गुरु यज्ञकर्ता, धार्मिक, श्रोत्रिय और द्विजों का सुवर्ण चुराने से

इस प्रकार प्रायश्चित्त किया जाता है कि पहले अपने पाप पर पश्चात्ताप करे और

अपने शरीर पर घी का लेप लगाकर करसी की आग में जलकर मर जाये इस

प्रकार वह चोरी के पाप से छूट जाता है।

यदि व्रत करने वाले को महापापियों में किसी से संसर्ग हो जाता है

उसकी उसी महापाप के अनुकूल व्रत करने से शुद्धि होती है। बारह दिन की संगति

में तो महासान्तपन व्रत करना ही उचित माना गया है। जानबूझकर संगति करनेपर

क्रमशः इनका तिगुना प्रायश्चित्त करना चाहिए।

"तप्तकृच्छ्रं करिवधे पराकं गोवधे स्मृतम्।"[2]

हाथी के वध में तप्तकृच्छ्रव्रत और गोवध में पराकव्रत कहा गया है।

"पानं शय्यासनाद्येषु पुष्पमूलफलेषु च।

भक्ष्यभोज्यापहारेषु पंचगव्यं विशोधनम्।'[3]

पीने योग्य वस्तु रस, शर्बत आदि खटिया, आसन और फल-फूल, मूल

अथवा भक्ष्य भोज्य आदि के चुरा लेने पर पंचगव्य से शुद्धि कही गयी है।

शूद्र का जूठा भोजन करने पर तीन बार चान्द्रायण व्रत का विधान है।[4]

1- नारदीयपुराण, अध्यायपूर्व, 30/39, 40

वही, 30/77

3- वही, 30/78

4- चान्द्रायणत्रयं प्रोक्तं शूद्रोच्छिष्टस्य भोजने।' - वही, 30/83

"रजस्वलां च चाण्डालं महापातकिनं तथा।

सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम्।

स्पृष्ट्वा सचैलं स्नायीत घृतं सम्प्राशयेत्तथा।

गायत्रीं च विशुद्धात्मा जपेदष्टशतं द्विजः ॥[1]

रजस्वला स्त्री, चाण्डाल, महापापी सूतिका, पतित, जूठा भोजन, धोबी आदि के छू जाने पर वस्त्र सहित स्नान करें और घृतप्राशन भी करें। इस प्रकार विशुद्ध हो आठ सौ बार गायत्री का जप करें।

यदि इन किसी को छू कर अनजाने या अज्ञतवश भोजन कर ले तो वह तीन रात तक उपवास करने से शुद्ध होता है, अथवा पंचगव्य का पान करें।

"स्नानदानजपादौ च भोजनादौ च नारद।

स्वाभन्यतमस्यापि शब्दं च शृणुयाद्वदेत्।

उद्वमेद्भुक्तमन्नं तत्स्नात्वा चोपवसेत्तथा।

द्वितीयेऽन्हि घृतं प्राश्य शुद्धिमाप्नोति नारद।"[2]

स्नान, दान, जप, अथवा भोजन आदि के समय यदि इनमें से किसी का शब्द सुन ले या स्वयं इनसे बातचीत करे तो वही व्यक्ति खाया हुआ अन्न उगल दे और स्नान कर उस दिन उपवास करें दूसरे दिन सविधि घृतप्राशन करने पर वह शुद्ध होता है।

व्रत आदि के मध्यकाल में यदि इनकी बोली भी सुन ले तो एक हजार आठ बार वेद माता गायत्री का जप करें –

1- नारदीयपुराण, पर्वअध्याय 30/84 1/2

2- वही, 30/86-87

"पापानामधिकं पापं द्विज देवतनिन्दनम्।

स दृष्ट्वा निष्कृतिस्तस्य सर्वशास्त्रेषु नारद।"[1]

द्विज और देवताओं की निन्दा सब पापों से बढ़कर पाप है। सब शास्त्रों में इसका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं लिखा है।

जो व्यक्ति नारायण का स्मरण करता हुआ प्रायश्चित्त करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं

'यस्तु रागादिनिर्मुक्तो विष्णुस्मरणतत्परः।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः॥[2]

जो राग आदि से मुक्त हो पश्चात्ताप करता है और सब प्राणियों पर दयाभाव रखकर विष्णु के स्मरण में लगा रहता है, वह महापातकी हो चाहे सब पापों से युक्त क्यों न हो उसको सब पापों से मुक्त समझना चाहिए।

जो व्यक्ति व्रत न भी करे, वह अनन्त, विश्वरूप निर्विकार नारायण का स्मरण करता रहे तो करोड़ों पापों से मुक्त हो जाता है।

भगवान विष्णु के स्मरण पूजा, ध्यान, प्रणाम से सज्जनों के हृदय में निवास करने वाले भगवान उसके पापों को नष्ट कर देते हैं। भगवान का एक बार भी स्मरण करने से सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद पर निन्दा, अपवाद को छोड़कर भक्तिपूर्वक हरि का स्मरण करना चाहिए।

फल फलों का आहार करके व्रत पालन करने से ब्रह्मघाती भी शुद्ध कर्मों का अधिकारी हो जाता है। व्रत पालन काल में यदि किसी वन्य पशु के द्वारा या रोग से मृत्यु हो जाय गौ अथवा ब्राह्मण रक्षार्थ प्राण त्याग कर दे अथवा ब्राह्मणों को दस हजार उत्तम गायों का दान कर दे तो वह ब्रह्मघाती भी शुद्ध हो जाता है।

1- नारदी०पु०पूर्वभाग30/89 2- वही, 30/92,93

अग्निपुराण में निषिद्ध एवं प्रायश्चित्त कर्म :-

(अ) निषिद्धकर्म :-

"मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन।
महापातकिना स्पृष्टं यच्च स्पृष्टमुदक्यया॥"[1]

व्रती को मत्त, क्रुद्ध और रोगियों के अन्न का भक्षण नहीं करना चाहिए तथा महापातकियों और ऋतुमती स्त्रियों के द्वारा जिस अन्न का स्पर्श किया गया हो उसे भी नहीं खाना चाहिए ।

"गणान्नं गणिकान्नं च वार्धुषिगायकस्य च।
अभिशप्तस्य षण्ढस्य यस्याश्चोपपतिर्गृहे।"[2]

सामूहिक अन्न, गणिकान्न, गायक, अभिशप्त, नपुंसक, तथा उपपति के साथ रहने वाली स्त्री के द्वारा पकाये गये भोजन को भी ग्रहण नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार धोबी, क्रूर, कर्दा, छली, मिथ्यातपस्वी, चोर, दण्ड देने वाले, कमण्डलु, स्त्रियों को जीतने वाले वेदविक्रयी, नट, जुलाहा, कृतघ्न, कुम्हार, निषाद, मिथ्यासन्यासी तेली, पतित और शत्रु के अन्न को भी नहीं खाना चाहिए, इनमें से किसी का भी अन्न ब्राह्मण को नहीं खाना चाहिए।

1- अग्निपुराण, अध्याय एक, 168/2

2- वही, 168/3

"तथैव ब्राह्मणस्यान्नं ब्राह्मणेनानिमन्त्रितः ।

ब्राह्मणान्नं च शूद्रेण नाद्यात्रैव निमन्त्रितः ॥"[1]

ब्राह्मण के द्वारा निमन्त्रित न किये जाने पर उसका अन्न भी नहीं खाना चाहिए। ब्राह्मण को शूद्र का अन्न भी नहीं खाना चाहिए।

चाण्डाल और रजस्वला का भी स्पर्श नहीं करना चाहिए। चाण्डाल का अन्न रेतस, मल और मूत्र के समान है।

प्रेत अन्न, गाय के द्वारा सूँघा हुआ, शूद्र का जूठा, कुत्ते का जूठा तथा पतितों का भी अन्न नहीं खाना चाहिए।

"अशौचे यस्य यो भुङ्क्ते सो प्यशुद्धस्तथाभवेत्।"[2]

जिसके अशौच में कोई भोजन करता है वह भी उसके जैसा अशुद्ध हो जाता है।

"मृतपञ्चनखात्कूपादमेध्येन सुकृद्युतात्।"[3]

जिस कुँए में पंचनखपशु मरे हों अथवा अमेध्य पदार्थों से युक्त हो उसका जल ब्राह्मण को नहीं पीना चाहिए।

ब्रह्मचारी को मदिरापान नहीं करना चाहिए, एवं चुकन्दर तथा लहसुन का भी सेवन नहीं करना चाहिए।

'गवां च महीषीणां च वर्जयित्वा तथा अप्यजाम्।'[4]

गाय भैंस और बकरी का दूध छोड़कर अन्य पशु का दूध नहीं पीना चाहिए।

1- अग्निपुराण 168/7 2- अग्निपुराण 168/11

3- वही, 168/12 4- वही, 168/19

पांच नाखूनों वाले पशु भक्ष्य कहे गये हैं। शेष पशुओं का भक्षण वर्जित है।

ब्रह्महत्या जैसा महापाप तो करना ही नहीं चाहिए।

"ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः ।

महान्ति पातकान्याहुः संयोगश्चैव तैः सह ।'[1]

ब्रह्महत्या, मदिरा पान, चोरी, गुरुपत्नी समागम करना तथा ऐसे व्यक्तियों के साथ संयोग – ये पांच महापातक कहे जाते हैं।

"यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रियाः ।

वागषाडवचक्रादीन्सस्नेहमुषितं तथा ।'[2]

अग्निहोत्री को कोई ऐसा पदार्थ नहीं खाना चाहिए जो गेहूँ, जौ, जमे हुए दूध अथवा बच से बना हो, इसी प्रकार ऐसे पदार्थों का जिनका चिकनापन नष्ट हो गया हो भक्षण नहीं करना चाहिए।

'ब्रह्मोज्झ्यवेदनिन्दा च कौट साक्ष्यं सुहृद्वधः ।

गर्हितान्नाज्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥[3]

ब्रह्म का परित्याग, वेद निन्दा, कूटसाक्ष्य, मित्रवध, किसी निन्दनीय व्यक्ति के अन्न और भोजन को खाना सुरापान के समान है।

1- अग्निपुराण, 168/24

2- वही, 168/22

3- वही, 168/26

"निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च।

भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्॥[1]

धरोहर का अपहरण तथा मनुष्य, अश्व, चाँदी, पृथ्वी, वज्र और मणियों का अपहरण व सोने की चोरी के समान माना जाता है।

इसी प्रकार निन्दितों से धान्य का ग्रहण करना, वाणिज्य एवं शूद्रों की सेवा करना, मिथ्याभाषण, अधीरता और मलीनता भी अपात्रीकरण के कारण हैं।

(ब) प्रायश्चित्तकर्म :-

ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत्।[2]

ब्रह्महत्या करने वालों को वन में कुटी बनाकर बारह वर्षों तक रहना चाहिए। उसे अश्वमेध या गोमेध यज्ञ करना चाहिए अथवा किसी एक वेद का जप करते हुए अपने घर से सौ योजन दूर निकल जाना चाहिए।

"उपपातक संयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्।

कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः॥[3]

गोहत्या के उपपातक से युक्त व्यक्ति को एक मास तक यव के जल का पान करना चाहिए और उसे गोचर्म को धारण करके गोशाला में निवास करना चाहिए। उसे दो मास तक इन्द्रियों को वश में करके गोमूत्र से स्नान करना चाहिए तदनन्तर व्रत समाप्त होने पर उसे ग्यारह बैल और इतनी ही गायों का दान करना चाहिए। यदि गाय और बैल की हत्या घण्टा और अन्य आभूषणों के द्वारा

1- अग्निपुराण, 168/27 2- अग्निपुराण, 169/1
3- वही, 169/5

हो जाय तो आधे व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। किन्तु यदि गाय की हत्या उस समय हो जाय जब कोई ऐसा कार्य किया जा रहा हो जिससे उसका उपकार ही होना चाहिए तो कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है।

"सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा।'[1]

यदि कोई ब्राह्मण मोहवश मदिरा का पान कर ले तो उसे अग्निवर्ण सुरा का अग्नि के समान वर्ण वाले गोमूत्र अथवा जल का पान करना चाहिए।

"संकरीपात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम्।
मलिनीकरणीयेषु तप्तं स्याद्यावकं त्र्यहम्।'[2]

इन्दु व्रत नामक तपस्या उस पाप के प्रायश्चित्त के स्वरूप करना चाहिए जो विजातीय स्त्री पुरुष के विवाह के समय उपस्थित रहने से होता है। ऐसे कर्मों में जिनसे मनुष्य मलिन हो जाते हैं तीन दिन तक यावक व्रत करना चाहिए। चारों वर्णों में से किसी भी वर्ण की हत्या होने से शूद्र हत्या का प्रायश्चित्त करें।

"सर्पादीनां वधे नक्तमनस्थ्नां वायुसंयमः ॥[3]

सर्पादि का वध होने पर 'नक्त' व्रत और अस्थिहीन जन्तु जीवों की हत्या होने पर 'प्राणायाम' करना चाहिए।

'भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च।
पुष्पमूलफलानां च पंचगव्यं विशोधनम्॥[4]

1- अग्निपुराण, 169/19 2- अग्निपुराण 169/24

3- वही, 169/28 4- वही, 169/30

भोज्यपदार्थों, शय्या, यान, आसन, पुष्प, कन्द और फलों को चुराने वाले को शुद्धि के लिए पंचगव्य का सेवन करना चाहिए।

'यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः।

तद्भैक्ष्यभुग्जपेन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति।'[1]

जो ब्राह्मण एक रात में रजस्वला कुमारी के साथ सहवास करता है, वह तीन वर्षों तक भिक्षान्न खाकर शुद्ध होता है।

एक वर्ष तक किसी पतित के संसर्ग में रहने वाला व्यक्ति स्वयं पतित हो जाता है। यहाँ पर संसर्ग का अभिप्राय है यज्ञ कराना, पढ़ाना और यौन सम्बन्ध रखना।

"येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि।

तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत्।"[2]

जिन ब्राह्मणों को समय से विधि के अनुसार गायत्री उपदेश नहीं प्राप्त हुआ है, उनसे तीन प्राजापत्य कराकर उसका विधिवत उपनयन संस्कार कराना चाहिए।

"शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः।

संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति।"[3]

जो व्रत करने वाला ब्राह्मण शरणागत का परित्याग करता है और अनाधिकारी को वेद का उपदेश देता है, वह एक वर्ष तक नियमित आहार करके उस पाप से मुक्त हो जाता है।

1- अग्निपुराण, 169/41   2- अग्निपुराण, 170/8

3- वही, 170/12

व्रतभंग होने पर और कर्म का परित्याग करने पर उपवास करना चाहिए।

"भाण्डसंकुलसंकीर्णश्चाण्डालादिजुगुप्सितैः।

भुक्त्वा पीत्वा तथा तेषां षड्रात्रेण विशुध्यति।"[1]

जो व्यक्ति चाण्डाल आदि के स्पर्श से दूषित पात्रों में खाता है वह छह रात्रों तक अपवित्र रहता है।

अन्त्यजों के खाने से बचे हुए भोजन को खाने वाले द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए, किन्तु इन्हीं परिस्थितियों में शूद्र त्रिरात्र व्रत से शुद्ध हो जाता है।[2]

वैश्य अथवा क्षत्रिय का स्पर्श हो जाने पर 'नक्त' व्रत करना चाहिए।

"स्नानात्तु रक्तकर्मकर्ता कृच्छ्रकृद् ग्रहणेऽन्नभुक्।

अपाङ्क्तेयाशी गव्याशी शुना दष्टस्तथा शुचिः॥[3]

स्नान के बाद और कर्म करने वाला और ग्रहण के समय भोजन करने वाला 'प्राजापत्य' व्रत करने से शुद्ध होता है।

एक मास तक पुरुषसूक्त का जप करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

1- अग्निपुराण, 170/22

2- अन्त्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः।

व्रतं चान्द्रायणं कुर्युस्त्रिरात्रं शूद्र एव तु॥ (अग्निपुराण 170/23)

3- वही, 170/44

"मुण्डनं सर्वकृच्छ्रेषु स्नानं होमो हरेर्यजिः।
उत्थितस्तु दिवा तिष्ठेदुपविष्टस्तथा निशि।"[1]

सभी कृच्छ्रव्रतों में मुण्डन, स्नान और हवन के बाद भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिए।

चौदह दिन तक उपवास रखने के बाद पन्द्रहवें दिन पंचगव्य का प्राशन करना चाहिए। एक मास में दो बार व्रत का अनुष्ठान करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

"परदारपरद्रव्यजीवहिंसादिके यदा।
प्रवर्तते नृणां चित्तं प्रायश्चित्तं स्तुतिस्तदा॥"[2]

जब जब व्रती मनुष्यों का चित्त परस्त्री, परधन, या जीवहिंसा आदि में प्रवृत्त हो तब भी प्रायश्चित्त करना चाहिए। विष्णु की पूजा करनी चाहिए।

गोहत्या अथवा ब्रह्महत्या करने वालों को तुरन्त ही अपने पापों का परित्याग कर देना चाहिए अथवा अपने पाप को अग्नि में झोंक देना चाहिए इससे ब्रह्महत्या से मुक्ति मिल जाती है।[3]

"षड्भिर्वर्षैः शुद्धचारी ब्रह्महा पूयते नरः।
विहितं यद् कामानां कामात्तु द्विगुणं स्मृतम्॥"[4]

1- अग्निपुराण, 171/3

2- वही, 172/1

3- गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत्।
,प्रास्येदात्मानमग्नौ वा मुच्यते ब्रह्महत्यया।" (अग्निपुराण अध्याय 173/7)

4- वही, 173/9

व्रती से यदि अनिच्छा से ब्राह्मण हत्या हो जाय तो छह वर्षों तक इसी प्रकार आचरण शुद्ध करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है, किन्तु वह यही कर्म इच्छा से करता है तो उसे दुगुना प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

"काष्ठे सान्तपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके।

तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम्॥"[1]

लकड़ी के द्वारा गोहत्या होने पर सान्तपन और लोष्ट से हत्या होने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए इसी प्रकार पत्थर और शस्त्र से गोहत्या होने पर तप्तकृच्छ्र और अतिकृच्छ्र नामक व्रतों का अनुष्ठान करना चाहिए।

"चाण्डालस्य तु पानीयं पीत्वा सप्तदिनं व्रती।

चाण्डाल कूपभाण्डेषु पीत्वा सान्तपनं चरेत्।"[2]

चाण्डाल के द्वारा पीने योग्य जल का पान करने से छह दिनों तक व्रत करना चाहिए किन्तु चाण्डाल के कुएँ और पात्रों का जल पीने से सान्तपन व्रत का आचरण करना चाहिए।

अन्त्यज के जल को पीने वाले ब्राह्मण को तीन रातों के बाद पंचगव्य का पान करना चाहिए।

शूद्र के पात्रों में भोजन करने वाला ब्राह्मण पंचगव्य से शुद्ध हो जाता है।

"देवाश्रमार्चनादीनां प्रायश्चित्तं तु लोपतः।

पूजालोपे चाष्टशतं जपेद्विगुणपूजनम्॥"[3]

1- अग्निपुराण, 173/18 3- अग्निपुराण, 174/1

2- वही, 173/26

किसी देवता आदि के पूजन के छूट जाने पर प्रायश्चित्त स्वरूप उसी देवता के मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए और देवता का पूजन दो बार करना चाहिए।

"पचोपनिषदैर्मन्त्रैर्हुत्वा ब्राह्मणभोजनम्।
सूतिकान्त्यजकोदक्यास्पृष्टे देवे शतं जपेत्।"[1]

पचोपनिषद् मन्त्रों से हवन करके ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। यदि मूर्ति का स्पर्श गणिका, प्रसूता स्त्री अथवा अन्त्यज जाति के व्यक्ति के द्वारा हो जाये तो उस देवता से सम्बद्ध मन्त्रों का सौ बार जप करना चाहिए।

"कुम्भेनष्टेशतजपो देवे तु पतिते करात्।
भिन्ने नष्टे चोपवासः शतहोमाच्छुभं भवेत्।।"[2]

कलश के नष्ट हो जाने पर मन्त्र का सौ बार जप करना चाहिए देवता की मूर्ति हाथ से गिर जाने पर, उसके टूट जाने पर उसके नष्ट हो जाने पर उपवास और सौ बार होम करने पर शुभ होता है।

दाम्भिक, मदिरासेवी, तथा व्यभिचारी प्रभृति पापात्माओं का संग भी दोष पूर्ण है। इनका संग करने वालों के लिए शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है। जितना ही अधिक समय का संग होगा, उतने ही अधिक परिमाण में कठोर प्रायश्चित्त करना ही उचित है।

1- अग्निपुराण, 174/2

2- वही, 174/7

अन्य :-

आलोच्य पुराणों में वर्णित इन निषिद्ध कर्मों के अतिरिक्त अन्य और भी बहुत से कर्म हैं, जो मनुष्य को नहीं करना चाहिए। इन दोनों पुराणों में प्रसंगानुसार बहुत सी निषिद्ध वस्तुओं के सेवन तथा सामाजिक संदर्भ में अनुकूलता न रखने वाले वर्जित कर्मों की ओर संकेत किया गया है, वैसे देशकाल और वातावरण के अनुसार कुछ ऐसी स्थितियां होती हैं, जहां कुछ कार्यों को अच्छा माना जाता है और कहीं अनुचित। ये पुराण इस दिशा में एक पूर्ण आचारसंहिता प्रस्तुत करते हुए सामाजिक संघटन को मजबूत करने की प्रेरणा देते हैं।

देवताओं एवं विप्रों की निन्दा जैसा तो कोई भयंकर पाप नहीं है। शास्त्रों में तो इसका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं बताया गया है, वस्तुतः प्रायश्चित्त की सफलता सत्यनिष्ठा से पश्चात्ताप करने एवं पुनः वैसी भूल न करने का दृढ़संकल्प करने पर होती है।

ब्रह्महत्या, मदिरापान, लहसुन, मांसाहार तथा मदिरासेवन ये निषिद्ध कार्य व्रती को ही नहीं सभी व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए। अपने जघन्य कृत्यों पर पश्चात्ताप करने वाला व्यक्ति अश्वमेध तथा राजसूय जैसे यज्ञों के यजन के फल को प्राप्त कर लेता है, अतः जो मनुष्य सत्यनिष्ठ और भगवान में तत्पर रहकर ईमानदारी से प्रायश्चित्त करता है उसके ही समस्त पापों का नाश होता है, अन्यथा वह पतित ही रह जाता है। पतित प्राणी इस लोक में निन्दित और परलोक में दुर्गति का भागी होता है।

'संक्रांतौ रविवारे च पातग्रहणयोस्तथा।
पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही।"[1]

1- नारदीयपुराण पूर्वभाग अध्याय 29/55

सक्रान्ति के दिन अथवा रविवार को यदि पात और ग्रहण हो तो पुत्रवान गृहस्थ के लिए उस दिन पारण और उपवास करना उचित नहीं है।

"आदित्यग्रहणे प्राप्ते पूर्वयामत्रये तथा।

नाद्यादि्दै यदि भुञ्जीत सुरापेन समो भवेत्।"[1]

सूर्य ग्रहण लगने पर ग्रहण के पूर्व तीन पहर के भीतर भोजन नहीं करना चाहिए, यदि भोजन करें तो मदिरापान के समान होता है।

"जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वा न्यमनिच्छया।

चरेच्छा(सां)तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमभिच्छया।"[2]

ऐसा कर्म करके जिससे मनुष्य जाति से भ्रष्ट हो जाये, 'सान्तपन' नामक व्रत करना चाहिए। अनिच्छा से यह कर्म करने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए।

"अर्केऽन्हि पर्वरात्रौ च चतुर्दश्यष्टमी दिवा।

एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।"[3]

रविवार पर्व की रात्रि, चतुर्दशी और अष्टमी के दिन, एकादशी को रात्रि और दिन दोनों समय भोजन करने से चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

व्रत के समय बारम्बार जल पीने, दिन में सोने, ताम्बूल चबाने और स्त्री सहवास करने पर भी व्रत बिगड़ जाता है।

1- नारदीयपुराण पूर्वभाग 29/57

2- अग्नि पुराण 169/23½

3- नारदपुराण पूर्वभाग 29/56

व्रत के दिनों मे चोरी आदि से वर्जित रहकर क्षमा, दया, दान, शौच और इन्द्रिय निग्रह, देवपूजा और संतोष से काम करना उचित और आवश्यक है।

"प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद् रजो भवेत्।
न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन्॥"[1]

बड़े व्रत का आरम्भ करने पर यदि स्त्री रजस्वला हो जाय तो उससे भी व्रत में कोई रूकावट नहीं होती है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को निषिद्ध कर्मों को न करते हुए एवं प्रायश्चित्त को ध्यान में रखते हुए दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षण में पालन करे, इससे जीवन का प्रत्येक क्षण शुद्ध सात्विक हो जायेगा अन्तःकरण निर्मल हो जायेगा, जिससे व्रत में भी सफलता मिलेगी।

समीक्षा :—

नारदीयपुराण में महर्षि सनकाचार्य जी नारद जी से धर्मकृत्यों (वृतो) के संदर्भ में इस प्रकार कहते हैं — सम्पूर्ण धर्मकृत्य श्रद्धापूर्वक किये जाने पर ही फलद होते हैं। श्रद्धा के बिना सुमेरूतुल्य स्वर्णदान भी निरर्थक एवं फल-शून्य होता है। श्रद्धा रहित किया गया व्रत शरीर का शोषणमात्र है, और श्रद्धाविहीन होकर अग्नि में डाली गयी हवि भस्म में फेंकने के समान निष्फल है। श्रद्धा के बिना वेदोक्त विधि से सहस्त्रों अश्वमेधादि यज्ञों के करने से मनुष्य कुछ

1- व्रतपरिचय, पृ० 17

प्राप्त नहीं कर सकता, जिस प्रकार जीवों का आधार धरती, जीवन का आधार जल है, उसी प्रकार कर्मसिद्धि का एकमात्र आधार श्रद्धा भक्ति है।

व्रती को वर्णाश्रम धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए। आचार-हीन व्यक्ति कभी भक्ति में प्रवृत्त नहीं हो सकता, यदि उसे प्रायश्चित्त एवं निषिद्ध कर्मों का ज्ञान न हो तो वह वेदवेदांगों का ज्ञाता होने पर भी पतित कहलाता है, उसे कोई वेदशास्त्र पवित्र नहीं कर सकते। उसे तीर्थ सेवन, यज्ञ, यजन आदि से भी कोई लाभ नहीं होता क्योंकि अच्छे कर्म करने से मनुष्य को सुख-शान्ति एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

व्रतों की फलश्रुति में स्वर्गादि लोक की प्राप्ति एवं सब प्रकार के भोगों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है, किन्तु स्वर्गादि लोक तो मात्र भोगभूमि है, कर्म करने की एक मात्र सुविधा तो भारतवर्ष में ही है। इस परम पवित्र भारत वर्ष में उत्पन्न और विष्णुभक्ति परायण मनुष्य के समान भाग्यशाली कोई जीव नहीं है। भगवान भी सतत स्मरण एवं बड़ों की सेवा करने वाले को तथा नियम व्रत करने वालों का अभिनन्दन करते हैं। भारतभूमि में जन्म ग्रहण करके सत्कर्मों का श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति अपना जन्म सफल करता है। इसके विपरीत पुण्यभूमि में उत्पन्न होकर भी सत्कर्मों के अनुष्ठान में रुचि न रखने वाला व्यक्ति सचमुच ही ऐसा अभागा है जिसे पूर्वजन्मों के कर्मों से अमूल्य मणि तो मिल गयी पर वह उसका महत्व नहीं समझता। प्रायश्चित्त कर्मों को न करके निषिद्ध कर्मों में मग्न रहने वाला व्यक्ति मानों अमृत को छोड़कर विषका सेवन करता है। सत्-कर्मों को न करने वाला व्यक्ति आत्मघाती है। अनेक जन्मों के पुण्य कर्मों के फल-स्वरूप जो व्यक्ति शुभकर्मों की अपेक्षा और दुष्कर्मों में प्रवृत्ति रखता है वह अभागा

व्यक्ति मानो कामधेनु को छोड़कर आक के दूध की खोज में भटक रहा है। वैसे तो कृतकर्मों का फलभोग एक अनिवार्य प्रक्रिया है, फिर भी भगवान विष्णु की भक्ति से, सत्संग तथा गंगा तुलसी के सेवन से, सत्कर्मों को भगवद्-अर्पण करने और तथा पाप कर्मों का सच्चे मन से प्रायश्चित्त करने और पुनः इन अपराधों को न करने का दृढ़ संकल्प करने से पापों के फल भोग से कुछ राहत अवश्य मिल जाती है। श्री विष्णु की भक्ति में पापों की दहन की अद्भुत और प्रबल शक्ति है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नारदीय एवं अग्निपुराण में जो निषिद्ध एवं प्रायश्चित्त कर्मों का उल्लेख प्राप्त होता है, वह निश्चय ही सर्वजनहिताय एवं मुक्ति प्रदान करने में सहायक हैं। व्रती के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि जिन व्रतों के लिए जिन कर्मों का निषेध किया गया है उन्हें वह जानबूझकर न करे। यदि कहीं भ्रम से व्रत का उल्लंघन हो जाता है तो उसी समय से व्रत पूरा करना चाहिए। जैसे एकादशी का व्रत करने वाला यदि भूल से कदाचित अन्न कण ग्रहण कर ले तो उसे ध्यान आने पर व्रत पूरा करना चाहिए और उसे सौ बार विष्णु भगवान का स्मरण करना चाहिए। यथा अग्निपुराण के अनुसार –

"विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे नमः।
नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकार गतिं हरिम्॥"[1]

1- अग्निपुराण अध्याय ।72/2

आलोच्य पुराण में सभी वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) द्वारा किये जाने वाले कर्मों का उल्लेख किया गया है, जो व्रत करने या न करने वालों के द्वारा भी पालन करने योग्य है। यदि कदाचित कोई जघन्य अपराध, महा - पातक हो जाता है तो उनका प्रायश्चित्त भी श्रद्धा भक्तिपूर्वक भगवान विष्णु और शिव को अपना इष्ट मानकर करना चाहिए। आज हमारे समाज में विहित कर्मों को न करने के कारण भी अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं, जिनके द्वारा भविष्य में भारतीय का लोप हो सकता है। त्रिकालदर्शी ऋषियों ने इसीलिए ऐसी व्यवस्थायें एवं विहितकर्म, निषिद्ध कर्म एवं प्रायश्चित्त कर्मों का प्रकाशन किया है, जिससे ऋषियों का यह देश सर्वदा अक्षुण्ण बना रहे।

अन्त में मुझे यही कहना है कि पुराणों को केवल कथाओं का भण्डार न मानते हुए उन्हें अपने प्राचीन ऋषियों की चिन्तनधारा की धरोहर के रूप में स्वीकार करें और सामान्य रूप से भी तथा व्रत करते हुए भी निषिद्ध कर्मों का सर्वदा ध्यान रखें तथा आवश्यकता पड़ने पर सम्बन्धित प्रायश्चित्तों का निर्वहन करें। इसी रूप में हमको वह सब कुछ प्राप्त हो सकता है, जिन कामनाओं की प्राप्ति के लिए हम अपना सारा जीवन लगा देते हैं।

****

सप्तम अध्याय

आलोच्य पुराणों में वर्णित व्रतों का सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व

****

सप्तम अध्याय

आलोच्य पुराणों में वर्णित व्रतों का सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व

प्राचीनकाल से ही भारतीय संस्कृति में व्रतों का विशिष्ट स्थान रहा है। पौराणिक काल में भी व्रतों के सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। नारदीय एवं अग्निपुराण में अन्य विविध विषयों की तरह इस देश की धरती में निवास करने वालों के लिए उनके स्वास्थ्य एवं सांस्कृतिक लाभ को देखते हुए व्रतों का विशद वर्णन किया गया है। साहित्य समाज का दर्पण होता है इसलिए समय-समय पर साहित्य चिन्तकों द्वारा समाज की उपयोगी बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। पुराणों में व्रतों की विधि से लेकर फलश्रुति तक जो भी वर्णन प्राप्त होता है, सामान्य पाठक के लिए वह पुराण कथाओं की तरह मनोरंजन मात्र हो सकती है, किन्तु इन मनीषियों का ध्यान जनमानस को आनन्द प्रदान करना तथा भौतिकता से ऊपर उठकर जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर ही रहा होगा। जीवन के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए शरीर का स्वस्थ होना जितना आवश्यक है उतना ही परिवार एवं समाज की पवित्रता का भी महत्त्व है।

व्रतों के माध्यम से ऋषियों ने शरीर को स्वस्थ रखने की एवं परिवार एवं समाज में सद्गुणों के विकास का भाव अन्तर्निहित रखा है। हमारा देश धर्मप्रधान देश है, यहां के निवासी धर्म के लिए मर मिटने को तैयार रहते हैं। इस भावना का आदर करते हुए महर्षियों ने व्रतों को धार्मिक अनुष्ठान की संज्ञा दी, जिसके कारण विभिन्न सम्प्रदाय एवं मतवलम्बी समाज ने व्रतों को धार्मिक कृत्य मान

कर तथा उनकी फलश्रुति के प्रति आकृष्ट होकर व्रतों का अनुष्ठान करना सीखा।

आलोच्य पुराणों के अनुसार व्रतों की विधि एवं उद्यापन व पारण पर्यन्त सुस्पष्ट वर्णन हम पिछले अध्यायों में कर चुके हैं। व्रतों के सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्व को अन्तः एवं वाह्य साक्ष्यों के आधार पर प्रस्तुत अध्याय में विवेचन करने का प्रयत्न करूँगी।

व्रतों के सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व को जानने के लिए यह आवश्यक है कि पहले संस्कृति एवं विज्ञान का अर्थ स्पष्ट हो जाये। जहाँ तक संस्कृति का अर्थ रीति रिवाज परम्परा, सभ्यता रहन-सहन आचार विचार आदि सबसे मिल कर संस्कृति बनती है। संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग कृ धातु से भाव अर्थ में 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर संस्कृति शब्द बनता है जिसका अर्थ है परम्परागत अनुस्यूत संस्कार। जहाँ तक विज्ञान का प्रश्न है आधुनिकयुग में उसे साइन्स की संज्ञा दी जाने लगी है। संस्कृत में वि उपसर्ग ज्ञा धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर विज्ञान शब्द बनता है, जिसका शाब्दिक अर्थ विशिष्ट विचार ही होता है। जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा जिसको प्रत्यक्षरूप से लाभ और अलाभ की दृष्टि से देखा जा सके वही विज्ञान है।

संस्कृति एवं विज्ञान के इन अर्थों को दृष्टिगत रखते हुए व्रतों के सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व को दर्शाया जायेगा।

<u>व्रतों का सांस्कृतिक महत्त्व :-</u>

जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त सनातन परम्परा से चली आयी हुई अध्यात्म प्रधान धर्ममय सुसंस्कृत आचार विचार प्रणाली का नाम ही संस्कृति है। प्राकृतिक विधान के अनुरूप संस्कार की ही पद्धति ही संस्कृति है। उसी संस्कृति के किसी

एक अंश को सभ्यता कहते हैं। किसी देश काल की सभ्यता किसी के लिए अहितकारी हो सकती है किन्तु संस्कृति सर्वदेश सर्वकाल सभी के लिए सदा हितकारी होती है। संस्कृति किसी मानव की उपज नहीं है प्रत्युत बीज है। हिन्दू संस्कृति में ईश्वरोपासना सदा से ही प्रधान रूप से चली आ रही है। हिन्दुओं की बात ही तो क्या इसको ईसाई और मुसलमान भी मानते हैं। कोई ईश्वर को साकार रूप में कोई निराकार रूप में और कोई दोनों की उपासना करते हैं। हिन्दुओं के हृदय में तो ईश्वरोपासना भाव सदा से अंकित है। थोड़ी सी विपत्ति होने पर वह संकट निवारणार्थ ईश्वर को पुकारते हैं उन्हीं का आश्रय ग्रहण करते हैं।

भारतीय संस्कृति में देवपरायणता सदा से ही विशेष उल्लेखनीय रही है। भारतीय धारणा के अनुसार सर्वदेवमयम्' सत्य है। जिस ब्रह्म से सबकी उत्पत्ति हुई, उसी में लीन हो जाना जीवन का परम उद्देश्य माना गया है। प्रकृति तो विनाशशील है, इसको भोगने वाला जीवात्मा अमृत स्वरूप अविनाशी है। इन विनाशशील जड़तत्व और अविनाशी चेतन आत्मा दोनों को एक ईश्वर अपने शासन में रखता है। इसीलिए उसका ध्यान करना अत्यन्त आवश्यक है। पृथ्वी पर जितने भी प्राणी हैं सभी सुख की आशा रखते हैं। सभी प्राणियों के लिए अपेक्षित वह सुख उन्हें प्रदान करने की शक्ति एक मात्र संस्कृति है, क्योंकि सभी को मालुम है कि जो मनुष्य व्रत एवं पूजा करता है, ईश्वर उसकी रक्षा करता है। इसीलिए हिन्दू संस्कृति में कहा गया है कि जो मनुष्य प्रभु के सामने धर्म का यथावत पालन करके इस नाशवान शरीर के नष्ट होने से पहले ही ईश्वर की निष्काम एवं अनन्य भाव से पूजा करता है उसको प्रभु की प्राप्ति होती है तथा उसके जन्म मरण का दुख दूर हो जाता है। यदि प्राचीन ऋषि प्रणीत संस्कारों को देखा जाय तो वे जीवन में आने वाली हीनता को

दूर करने के अमोघ उपाय हैं। इस देश में चलाये हुए व्रत, उत्सव, नित्यनैमि - त्तिक कार्य लोक व्यवहार आदि सबका अन्तर ध्येय जीवन की हीनता को हटाकर के मनुष्यों को आनन्दमय बनाना है।

अग्नि एवं नारदीय पुराण में वर्णित व्रतों के सांस्कृतिक महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए यह जान लेना परम आवश्यक है कि उपरोक्त पुराणों में सम्पूर्ण वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिनों के व्रतों का वर्णन प्राप्त हो है। पुराण कर्ता ऋषि ने व्रतों द्वारा भारतीय जनमानस को संस्कारित करने की दृष्टि से व्रतों को धार्मिक कृत्य की संज्ञा दी क्योंकि अनादिकाल से भारत धर्म प्रधान देश रहा है। धार्मिक कृत्य मानकर व्रतों का अनुष्ठान करना धार्मिक जनता के लिए अवश्य करणीय कार्य हो गया और जाने अनजाने में अनायास ही यहाँ के निवासी व्रतों के संस्कारों से संस्कारित होते हुए अपनी मौलिक संस्कृति के साथ संलग्न बने रहे।

प्रत्येक व्रत में किसी देवी या देवता की उपासना करना ही व्रत का अनुष्ठान है। उपासना में भक्ति का प्राधान्य होता है। साधन की दृष्टि से भक्ति तीन प्रकार की कही गयी है – मानसिक, वाचिक और कायिक। ध्यान और धारणापूर्वक बुद्धि के द्वारा वेदार्थ का विमर्श मानसी भक्ति मानते हैं। मन्त्र, जप एवं धार्मिक ग्रन्थों, पुराण आदि का पाठ करना वाचिक भक्ति है। मन एवं इन्द्रियों को निगृहीत करने वाले व्रत उपवास आदि के द्वारा भगवान की आराधना, उपासना कायिक भक्ति कहलाती है। लौकिक वैदिक एवं आध्यात्मिक ये तीन रूप भी भक्ति के माने जाते हैं। सामान्य व्यक्ति वैदिक एवं आध्यात्मिक भक्ति को सहज ही नहीं प्राप्त कर सकता, संभवतः इसी लिए लौकिक भक्ति के रूप में व्रतों का अनुष्ठान आलोच्य पुराणों में किया गया हो जिससे प्रत्येक स्तर पर दलित

वर्ग से लेकर पूंजीपतियों तक का समाज व्रतों के माध्यम से लौकिक भक्ति को अपनाता हुआअपने लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति तक पहुंच सके।

व्रतों की विधियों में प्रकृति प्रदत्त गोमय, स्नान, पंचगव्य, प्रतिमार्चन हवन, चौक, कलश, चन्दन, माला, धूप, दीप, पत्र, फल, दान से लेकर कृत्रिम स्वर्णाभूषण एवं नृत्य, संगीत, वाद्य, जागरण, नैवेद्य आदि से अपने इष्ट की अर्चना का वर्णन है। इस पूजा पद्धति में अपने अपने सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण एवं गोदान आदि का महत्त्व भी प्रतिपादित है। वैसे तो भगवान तो श्रद्धा भक्ति से प्रसन्न होकर कृपा करते हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं -

'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥[1]

(1)गोमय का सांस्कृतिक महत्त्व :-

पौराणिक संस्कृति में गाय का बहुत महत्त्व है। गाय के गोबर से आँगन लीपने की विधि द्वारा हमें प्रेरणा मिलती है कि हम सर्वदैव अपना आवास स्वच्छ रखें। स्वच्छता में ही देवत्व का वास होता है। इसीलिए प्रत्येक वर्ण सम्प्रदाय व आश्रम वासियों ने देवत्व की परिकल्पना से प्रातः होते ही घर द्वार लीपना अपनी संस्कृति मान लिया। स्पष्ट है कि व्रतों के इस कर्म से भारतीय संस्कृति पर अपनी अमिट छाप पड़ी है।

1- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 9/26

(2)स्नान का सांस्कृतिक महत्त्व :-

हमारे देश में ब्राह्ममुहूर्त में स्नान करने का बहुत महत्त्व है। व्रतों में वर्णित स्नान विधि की शिक्षा का ही यह फल है कि आज प्रत्येकवर्ग का व्यक्ति हर ऋतु में प्रतिदिन स्नान अवश्य करता है। तामसी प्रवृत्ति के लोग भी जो आलस्य के कारण अब कभी स्नान करते हैं, वे भी व्रत के दिन स्नान करके कायिक शुद्धि करते हैं। इसी तरह व्रतों के द्वारा शिक्षा ग्रहण कर स्नान के लाभ को देखते हुए प्रातः स्नान कर देवार्चन करना भारतीय संस्कृति का अंग बन गया है।

(3)पंचगव्य का सांस्कृतिक महत्त्व :-

व्रतों में पंचगव्य प्राशन द्वारा पापनिवारण कहा गया है। पंचगव्य में गाय का गोबर दूध दही घी गोमूत्र आदि होते हैं। इस दृष्टि से हमारे देश में गोपालन का प्राचीनकाल से ही महत्त्व रहा है। गाय हमारे परिवार के भरण पोषण में सहयोगी होकर व्रतों का अनुष्ठान भी कराती है। प्रत्येक परिवार यदि एक गाय का भी पालन करता है तो वह अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वर की सृष्टि में एक जीव का पालन करता हुआ सहायक सिद्ध होता है। इस दिशा में प्रेरणास्रोत व्रत ही कहे जायेंगे।

पुराणों के अनुसार गाय में सम्पूर्ण देवताओं का निवास होता है। उसके मुख में वेद, सींगों में शंकर और विष्णु हैं। ऐसी देवरूप गाय की प्रदक्षिणा प्रातःकाल गौ का दर्शन, गोदान आदि कार्य स्वर्ग एवं मुक्ति की प्राप्ति पाप - निवृत्ति की दिशा में महत्त्वपूर्ण होने के कारण गोपालन हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग हो गया।

(4) चौक एवं कलश का सांस्कृतिक महत्त्व :-

व्रतों की पूजा में चौक, कलश आदि देवार्चन के प्रतीक हैं। चौक हमारे घर आँगन का अलंकरण है। यह संस्कार व्रतों की ही देन है। कलश में तीर्थ जल, पवित्र नदियों गंगादि के जल से औषधि आदि का प्रयोग होता है। देव पूजन में कलश को इष्टदेव, वरुण आदि का प्रतीक मानकर पूजा की जाती है। इस प्रकार की पूजा पद्धति से हमारे परिवार व समाज के नवजात शिशुओं पर आस्तिकता की संस्कृति का निर्माण होता है। बच्चों के हृदय में बचपन से ही सद्‌विचार उदात्त भावनायें जागृत होती हैं। मनुष्य मात्र में संतोष, धार्मिक प्रवृत्तियाँ तथा सभी प्राणियों के प्रति साम्य भाव का उदय कलश के जल के अभिषेक से स्व - भावतः होने लगता है। भारतीय संस्कृति में देवी देवताओं के प्रति आस्था अनादि काल से चली आ रही है। पौराणिक व्रत इस संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने में समर्थ सिद्ध हुए हैं।

(5) प्रतिमार्चन एवं हवन का सांस्कृतिक महत्त्व :-

प्रत्येक व्रती अपने इष्ट की पूजा से अभीष्ट प्रतिमा को समर्पित कर कृतकृत्य हो जाता है। प्रारब्ध से प्राप्त होने वाले अनिष्ट फल भी इष्ट की पूजा से अभीष्ट फलदायक हो जाते हैं। यह विश्वास एवं धारणा मानव का मानसिक विकास करने में सहायक सिद्ध हुई है।

पूजा के अन्त में हव्य सामग्री द्वारा अग्नि में हवन करना त्याग की भावना को जन्म देता है। हवन में स्वाहा का उच्चारण स्वत्व का परित्याग

सिखाता है। और इस तरह हम मोह, ममता, क्रोध आदि जैसे मनोविकारों के त्याग की शिक्षा ग्रहण करते हैं। इन मनोविकारों से रहित होकर ही मनुष्य अपने परमानन्द की प्राप्ति कर अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच सकता है। हमारी संस्कृति के इस अभ्युदय में व्रतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(6)दीप आदि का सांस्कृतिक महत्त्व :-

पूजा अर्चना के अन्य अंग चन्दन, पुष्प, माला, पत्र, शंख, तुलसी-दल, बिल्वपत्र, कुंकुम, केसर, सिन्दूर, दीपक, अगरबत्ती, घण्टा आदि सबका हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है। व्रतों में की जाने वाली पूजा पद्धति के इन सभी अंगों द्वारा हमारी संस्कृति प्राचीनकाल से चली आ रही अपनी परम्परा का अद्यावधि निर्वाह कर रही है। स्थानाभाव के कारण सभी अंगों का पृथक-पृथक सांस्कृतिक महत्त्व प्रदर्शित करना असंभव सा प्रतीत होता है। संक्षेप में यह असंगत नहीं होगा कि व्रतों के द्वारा पुराणों ने हमें विश्वजनीन संस्कृति प्रदान की।

(7)कथा प्रवचन का सांस्कृतिक महत्त्व :-

पौराणिक आख्यानों में देवताओं का मानव रूप में अथवा अन्य जीव-धारियों के रूप में अवतार लेकर मानवोचित कार्य करने की कथायें प्रायः मिलती हैं। वे मनुष्य रूप में अवतरित होकर हमारा पथप्रदर्शन करते हैं। प्रश्नों के उत्तर देते हैं। माता-पिता की सेवा करते हैं। इन कथाओं के श्रवण से मानवीय सद्गुणों का विकास होता है। माता पिता गुरु एवं वृद्धों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। यही कारण है कि आज हमारे देश में कार्य करने में असमर्थ हो जाने पर भी वृद्धों

की सेवा करना प्रत्येक परिवार अपना कर्तव्य समझताहै। व्रतों में सुनी जानी वाली पौराणिक कथाओं एवं प्रवचनों से हमें यह संस्कृति ग्रहण करने की दिशा मिलती है।

(8)दान का सांस्कृतिक महत्त्व :-

हमारे शास्त्रों में दान का बहुत महत्त्व है। श्रुति के अनुसार दान ऐसी वस्तु है जो प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए। भगवान ने भगवद्गीता में कहा है कि -

"कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।"[1]

(दम के विरोधी) काम-(दया के विरोधी)क्रोध, और (दान के विरोधी)लोभ, को छोड़ देना चाहिए। धन रहते हुए भी दान रहित जीवन व्यर्थ है इसीलिए भगवान ने दान को अत्याज्य बताया है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि काम एवं क्रोध को त्यागने के पश्चात् लोभ न छूटा तो सब व्यर्थ है। दान का सांस्कृतिक महत्व यह है कि दान करने से चित्त की शुद्धि होती है एवं पापों का नाश होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि लोभ का विजयरूप दान मनुष्य को यथोचित अवश्य करना चाहिए।

उपरोक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि नारदीय पुराण में वर्णित व्रतों में लोक कल्याण के लिए समुचित विधान मिलते हैं। इस दिशा में कुटुम्ब एवं समाज को सुघटित स्वरूप देने का प्रयास विशेष महत्वपूर्ण है, जो भारतीय

1- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 17/21

संस्कृति की मूल भावना है। पौराणिक व्रतों ने सम्पूर्ण देश में जिस प्रकार से धर्म की प्रतिष्ठा की उससे दूरदर्शी राष्ट्रनिर्माता ऋषियों की अपूर्व सूझबूझ का परिचय प्राप्त होता है। कामनाओं की सिद्धि के लिए किये गये व्रतों द्वारा अनेक लोक कल्याण की भावनायें जागृत होती हैं। जैसे वृक्षारोपण करने से पुत्र प्राप्ति का फल अशोक वृक्ष से शोक का नाश, घर-घर में तुलसी की स्थापना, कुआँ, बावली, मन्दिर और जलाशय आदि का निर्माण ये सभी कार्य धार्मिक कृत्य होते हुए भी लोककल्याण के लिए थे।

पौराणिक व्रत परम्परा धनी-निर्धन, छूत-अछूत, उच्च और नीच आदि के भेदभाव मिटाने में समर्थ सिद्ध हुई है। महाभारत के नकुलोपाख्यान के अनुसार युधिष्ठिर के यज्ञ से अधिक महत्त्वपूर्ण दरिद्र ब्राह्मण का सत्तू दान था। इस उपाख्यान द्वारा अकिंचन निर्धनों को यत्किंचित् दान देने की प्रेरणा से हीन भावना का विनाश हुआ। प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति ब्राह्मण से शूद्र तक व्रतों का पालन करते हुए पवित्र एवं धार्मिक जीवन बिताकर समान फल को प्राप्त करता हुआ एकरूपता एवं सम्पूर्ण देश की अखण्डता तथा संस्कृति का अभ्युदय करता है।

व्रतों का लक्ष्य ऋतु अनुसार आहार-विहार करते हुए दुःखनाशक योग को प्राप्त करना है। ऋषियों ने वेदों की रक्षा हेतु अष्टाध्यायी ग्रन्थ का संकलन किया। संस्कृति के रक्षार्थ नित्य कर्म नियम बनाये गये। तीर्थों का मुख्य ध्येय संस्कृति का प्रचार करना था, जिससे लोग आकर पवित्राचार के कार्यों को देखकर अपने जीवन सुधार की शिक्षा ग्रहण करें।

व्रतों का सांस्कृतिक महत्व यह है कि व्रतों के द्वारा मानसिक वृत्तियों का परिष्कार होता है। सात्विक वृत्तियां उदय होती हैं। मन की

दुष्प्रवृत्तियाँ दूर होती हैं और व्रतों से सम्बद्ध अनेक प्रकार की कथाओं का पारायण होते रहने से सम्पूर्ण भौतिक साहित्य सुरक्षित रहता है।

व्रतों का वैज्ञानिक महत्त्व :

सामान्यरूप से व्रतों के कुछ ऐसे अंग हैं, जिनके अनुष्ठान से व्रत का यथाविधि सम्पन्न होना कहा गया है। जैसे व्रत करने से पहले व्रत की करणीय भूमि को गोबर से लीपना, स्नान करना, पंचगव्य का सेवन करना, चौक एवं कलश आदि का पूजन, प्रतिमार्चन एवं हवन, चन्दन एवं गंगाजल, धूपदीप करना अश्वत्थ एवं तुलसी का पूजन, शंखनाद एवं दान इत्यादि। संक्षेप में इन करणीय कृत्यों का वैज्ञानिक महत्व प्रतिपादित किया जा रहा है —

(1) गोमय का वैज्ञानिक महत्त्व :—

गोमय अनेक प्रकार के कीटाणुओं को नष्ट करने वाला होता है। इसलिए भूमिलेपन के लिए इसका उपयोग अवश्य करना चाहिए। इटली में अब भी हैजा या अतिसार के रोगियों को ताजे पानी में ताजा गोबर घोलकर पिलाते हैं और जिस तालाब के पानी में हैजे के जन्तु उत्पन्न हो गये हों उसमें गोबर डालते हैं। उनका अनुमान है कि इससे हैजे के जन्तु तुरन्त मर जाते हैं।

मद्रास के सुप्रसिद्ध किंग कहते हैं — यह अब प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि गाय के गोबर में हैजे के जन्तु का संहार करने की विचित्र शक्ति है। डाक्टरों ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि रोग जन्तु नाश के लिए गोमय

का बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपयोग है।"[1] वैज्ञानिक दृष्टि से शुद्ध गोबर "एण्टी - सेप्टिक" भी माना जाता है।

(2) स्नान का वैज्ञानिक महत्त्व :-

भारतवर्ष में ऐसा कौन सा हिन्दू होगा जो स्नान की महिमा से परिचित न हो, चाहे ब्राहमण हो अथवा अन्त्यज। आयुर्वेद में स्नान के निम्नलिखित गुण बताये गये हैं -

"दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमूर्जाबलप्रदम्।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मजित्।"[2]

अर्थात् स्नान अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, शुक्र बढ़ाने वाला, आयु के लिए हितकारी, उत्साह और बल देने वाला, खुजली, मैल, थकावट, पसीना, ऊँघ, जलन और पाप को परास्त करने वाला है। स्नान यद्यपि घर, तालाब, नदी कुआँ आदि में किया जाता है पर नदी का स्नान बहुत प्रशस्त है।

'भण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट पूना' में अठारहवीं शताब्दी का एक हस्तलिखित ग्रन्थ है 'भोजनकुतूहल' उसमें कहा गया है कि गंगा जल शीतल स्वादु, स्वच्छ अत्यन्त रुचिकर, पथ्य भोजन, पकाने योग्य, पाचनशक्ति बढ़ाने वाला सब पापों को हरने वाला, प्यास को शान्त तथा मोह को नष्ट करने वाला, क्षुधा बढ़ाने वाला तथा बुद्धि को बढ़ाने वाला होता है -

---

1- कल्याण, गो अंग, पृष्ठ 43।

2- वाग्भट सूत्र स्थान अध्याय 2, श्लोक 15

"शीतं स्वादु स्वच्छमत्यन्तरुच्यं पथ्यं पाक्यं पावनं पापहारि।

तृष्णामोहध्वंसनं दीपनं च प्रज्ञां धत्ते वारि भागीरथीयम्॥"[1]

भारतवर्ष में ऐसा कौन सा व्यक्ति होगा जो मिट्टी अथवा भस्म से बरतन न मांजता हो सभी का अनुभव है कि ये दोनों वस्तुएं चिकनाई तथा जमे मल को साफ करती हैं। उसी प्रकार शरीर में भी चिकनाई लगने से उसे जल के द्वारा निवृत्ति कर दिया जाता है। इसी प्रकार भौतिक दृष्टि से स्नान उपकारक है, आध्यात्मिक दृष्टि से पापनिवृत्ति तो है ही।

(3) पंचगव्य का वैज्ञानिक महत्व :-

उपवास के दिन व्रती को सात्विक एवं स्वल्प आहार विहार का सेवन करना चाहिए। इससे न केवल शरीर शुद्ध रहता है, अपितु मन भी दुर्विचार से अलग रहता है। इसीलिए शरीर, वाणी और मन की शुद्धि के लिए पंचगव्य प्राशन किया जाता है। पंचगव्य की पाँच वस्तुएँ यह हैं - दूध, दही, घी, गोमूत्र और गोमय। ऐसा भी विधान है कि इसमें पीली गाय का दूध, नीली गाय का दही काली गाय का घी, लाल गाय का गोमूत्र एवं सफेद गाय का गोमय ग्रहण करना चाहिए। पंचगव्य के वैज्ञानिक गुण इस प्रकार हैं —

(क) दूध :-

गाय के दूध के लिए चरक संहिता में दश गुण बताये गये हैं —

"स्वादुशीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।

1- भारतीय व्रतोत्सव, पृ० 80

गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः।

तदेवंगुणमेवौजः सामान्यादभिवर्धयेत्।

प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्॥"[1]

गाय का दूध, स्वादिष्ट, ठण्डा, कोमल, घी वाला, गाढ़ा, चिकना लिपटने वाला, भारी, ढीला और स्वच्छ होताहै। इन दश गुणों से युक्त गाय का दूध साधारणतया इन्द्रियों के बल को बढ़ाने वाला तो हैही परन्तु जीवन बढ़ाने वाली चीजों में सबसे श्रेष्ठ और रसायन(आयु, बल और बुद्धि को बढ़ाने वाला) है। गौ सम्पूर्ण मानव जाति की दूध आदि द्वारा सेवा करने के कारण माता के तुल्य है, इसलिए श्रद्धालुजन उसे गोमाता कहकर पुकारते हैं।

(ब)दही :-

दही के विषय में चरक संहिता में मिलता है कि —

"रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्धनम्।

पाकेऽम्लमुष्णं वातघ्नं मंगल्यं बृंहणं दधि॥

पीनसे चातिसारे च शीतके विषमे ज्वरे।

अरुचौ मूत्रकृच्छ्रे च कार्श्ये च दधि शस्यते।"[2]

दही रुचि बढ़ाने वाला, अग्नि बढ़ाने वाला, शुक्र बढ़ाने वाला चिकनाई लाने वाला, बलबढ़ाने वाला, पाचन के समय खटाई और गर्मी लाने वाला, मंगल करने वाला, और पुष्ट करने वाला होताहै। विशेषरूप से पीनस

1- चरकसूत्र0, 27?217-218

2- वही, 27/225-226

अतिसार, शीतव, पुराने ज्वर, अरुचि मूत्रकृच्छ्र और दुर्बलता के लिए प्रशस्त है।

(ग) घी :-

गाय के घी के विषय में वैज्ञानिकों का कहना है कि गाय का उत्तम घृत बुद्धि, कान्ति और स्मरण शक्ति को देनेवाला, शुद्धि प्रदान करने वाला, वायुनाश करने वाला, थकावट दूर करने वाला, स्वर को ठीककरने वाला पित्त मिटाने वाला पुष्टि देने वाला, विपाक में मधुर, शुक्र बढ़ाने वाला एवं तत्काल निकाला हुआ घृत गुणकारी होता है।

इसके अतिरिक्त गाय का घृत अमृत, जहर का नाश करने वाला, नेत्रों का हितकारी आरोग्य करने वाला, आयु, बल एवं बुद्धि बढ़ाने वाला, स्मरण शक्ति बढ़ाने वाला एवं स्नेहों में अत्यन्त उत्तम है।

(घ) गोमूत्र :-

गोमूत्र तीखा, गरम खारा और कफ मिटाने वाला होता है। वात को दूर करनेवाला होता है। पेडू के दर्द और कुष्ठ का नाशक होता है। खांसी दमा को मिटाने वाला तथा सूजन, पीलिया एवं रक्त की कमी को दूर करता है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि गोमूत्र, प्लीहा, उदर, खांसी दमा, सूजन और मलरोध को निवृत्त करता है। शूल गोला की पीड़ा को भी मिटाता है। कान में भरने से कान की पीड़ा ठीक हो जाती है।

(ङ) गोमय :-

वैज्ञानिकों का कहना है कि प्लेग के कीटाणुओं के विनाश के लिए गोमय अत्यन्त आवश्यक है। पंचगव्य बनाते समय गोबर डालने पर यह मन्त्र

पढ़ा जाता है —

"अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां वनेऽवने।

तासामृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम्।"[1]

अर्थात् जंगलों में औषधियों के ऊपर-ऊपर के भाग को चरनेवाली गायों का गोमय शरीर को पवित्र और शुद्ध करने वाला होता है। हे गोमय, वह तू मेरे रोगों एवं शोकों को सर्वदा दूर कर।

गाय के गोबर का रस, दही, का खट्टा पानी दूध और गोमूत्र बराबर लेकर उनसे तैयार किया हुआ घृत चौथिया (चार-चार दिन में आने वाला ज्वर) पागलपन, भूतप्रेत और अपस्मार मिर्गी का नाशक है। यह सूजन, खांसी, ज्वर उदर रोगों में एवं बवासीर तथा पीलिया में हितकारी है। पंचगव्य में जो कुश का जल मिलाया जाता है वह भी बड़ा महत्वपूर्ण है। कुशोंके लिए वेद कहते हैं - 'बार्हवैं देवसदनम्' अर्थात् कुश देवों का निवास है। देवतत्व उसमें अन्दर भरे रहते हैं। इसलिए पंचगव्य में पवित्र जल मिल जाने से वह और भी हितकारी होता है।

(4) चौक एवं कलश का वैज्ञानिक महत्व :-

चौक पूरने में हल्दी या रोली का प्रयोग किया जाता है। वह मांगलिक और सौन्दर्यधायक तो है ही साथ में वैज्ञानिकों के मतानुसार कीटाणु विनाशक है। क्योंकि हल्दी तीव्र गन्ध वाली और कटु होने से कई रोगाणुओं को नष्ट करने

1- भारतीय व्रतोत्सव, पृष्ठ 110

वाली होती है। रोली भी हल्दी से बनती है अतः उसमें भी वे ही गुण हैं।

(5) प्रतिमार्चन और हवन का वैज्ञानिक महत्त्व :-

प्रतिमा का अर्चन हम अपने कल्याण के लिए करते हैं न कि भगवान की अभिलाषा की पूर्ति के लिए, क्योंकि भगवान ही तो हमें सब कुछ दे सकते हैं। उनकी सेवा से हम अपना ही भला करते हैं। उनके द्वारा हमारे सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और आध्यात्मिक विकास का प्रसव होता है।

भगवान भास्कर हमारे प्रत्यक्ष देव हैं। सूर्य की देवमय प्रतिष्ठा भी पुराणों में वर्णित है। कहा भी गया है '—' प्रतिमार्चन सर्वदेवमयः सूर्यः" अस्तु यहाँ सूर्य की वैज्ञानिकता के महत्त्व के रूप में सूर्य व्रत का वैज्ञानिक महत्व प्रतिपादित किया जा रहा है।

वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य की उपासना मात्र से कोढ़ की बीमारी दूर हो जाती है कितने ही ऐसे रोग हैं जो इनकी किरणों के सेवन से दूर हो जाते हैं। कुष्ठ रोग की निवृत्ति के लिए सूर्य व्रत, गंगा स्नान आदि चिकित्सा — विधान है। कुष्ठ रोग रक्त दोष से होता है। रक्त दोष में भगवान सूर्य का व्रत एवं लवण परिवर्जन बहुत ही लाभदायक होता है, क्योंकि सूर्य की किरणें जब पड़ती हैं उस दिन मनुष्य के खून का लावणिक और क्षारीय तत्व और अधिक बढ़ जाता है। इसलिए उस दिन नमक खाना वर्जित है।

प्रतिमार्चन की तरह हवन भी एक प्रकार का यज्ञ है, क्योंकि वह हवन की जाने वाली वस्तु को परमाणु स्वरूप में विभक्त कर उसकी वृद्धि करता है और मनोरथ भी पूर्ण करता है, इसीलिए मानव जीवन में इसका अत्यन्त महत्व है।

(6) चन्दन एवं गंगाजल का वैज्ञानिक महत्त्व :-

वैज्ञानिक दृष्टि से चन्दन का यह महत्व है कि जब गर्मी में वायु का संचय होता है। सूर्य के ताप से दाह बढ़ जाता है प्यास बढ़ने लगती है और शरीर गर्मी के कारण सूखने लगता है। इन सब को नियन्त्रित करने की शक्ति चन्दन में है। जैसा कि आयुर्वेद में कहा गया है -

"चन्दनं शीतलं रूक्षं तिक्तमाह्लादनं लघु।
श्रमशोषविषश्लेष्मतृष्णापित्तास्रदाहनुत्॥"[1]

अर्थात् चन्दन ठण्डा, रूखा, कड़ुवा, प्रसन्न करने वाला और लघु है। उससे थकावट, सूखना, जहर, कफ प्यास, रक्तपित्त और जलन मिटती है। भला ऐसी वस्तु को भगवान के लिए उपयोग करने के लिए कौन नहीं लेगा।

गंगा जल के बारे में वैज्ञानिकों का कहना है कि मधुरता, स्वाद और हल्केपन में गंगाजल के बराबर कोई जल नहीं है। कितने ही दिनों तक रखने पर भी यह बिगड़ता नहीं है। इसके स्पर्श मात्र से ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। चरक संहिता में कहा गया है कि हिमालय से निकलने वाले जल पथ्य है परन्तु इनमें गंगाजल का विशेष महत्त्व है।

(7) धूपदीप का वैज्ञानिक महत्त्व :-

इन सुगन्धित द्रव्यों के कारण मन्दिर के चारों ओर दिव्य शक्ति का संचार होता है। इसमें भूत-प्रेत बाधा की निवृत्ति तथा विषयुक्त कीटाणु शक्ति का ह्रास होता है। शुद्ध वायुमण्डल के प्रभाव से कुविचार अन्दर नहीं आ पाते।

1- भारतीय व्रतोत्सव, पृ0 65

(8) अश्वत्थ और तुलसी का वैज्ञानिक महत्व :—

व्रतों में पीपल और तुलसी की अत्यधिक महिमा बताई गयी है। अथर्ववेद में पीपल को देवताओं का घर कहा गया है। आयुर्वेद के अनुसार स्त्री के बन्ध्यत्व दोष को हटाने की अद्भुत क्षमता है।

वैज्ञानिकों का मत है कि जिस स्थान में तुलसी का पौधा होता है उसके आसपास का स्थान पवित्र माना जाता है। इसमें मलेरिया के विषाक्त वायु को दूर करने की भी क्षमता है। यह सब प्रकार के ज्वरों को हटाती है। जिन रोगियों को स्वास्थ्यार्थ गंगातट के पास जाने में सुविधा नहीं उन्हें तुलसी सैनिटोरियम में रखा जाता है। इस प्रकार से वैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(9) शंखनाद का वैज्ञानिक महत्त्व :—

श्री जगदीश चन्द्र वसु ने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि जहाँ तक शंख की ध्वनि सुनाई पड़ती है वहाँ तक रोग के ~~से~~ अनेक विषाक्त कीटाणु उसकी ध्वनि से ही नष्ट हो जाते हैं। हमारे यहाँ प्रसिद्ध है कि 'शंख बाजे भूत भागे' कीटाणु भी सूक्ष्म भूतों के अन्तर्गत आते हैं। यूरोपीय वैज्ञानिकों ने भी शंख में मनुष्य हितकारिणी विद्युत मानी है। शंख में यदि गंगा जल को सिद्ध कर पिलाया जाये तो कीटाणुमूलक सब रोग दूर हो जाते हैं। इसके अनेक लाभों को देखकर प्राचीनकाल में स्त्रियाँ शंख की चूड़ियाँ पहनती थीं अब भी बंगाल में पहनती हैं जिसका सांख्यदर्शन के सूत्र में संकेत किया गया है —

"बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशङ्खवत्।"[1]

(10)दान :-

दान के लिए संस्कृत में कहा गया है कि —

"स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वापादनं दानम्।"[2]

इसका अभिप्राय यह है कि किसी भी वस्तु पर अपना स्वत्व हटा कर दूसरे का स्वत्व स्थापित कर देना दान कहलाता है। दान के लिए वैज्ञानिकों का मत है कि दान यश प्राप्त करने तथा दूसरों को दुखी देखकर उनका दुख दूर करने के लिए किया जाता है। इससे मन को शान्ति मिलती है। यदि ईश्वर ने धन दिया है तो धर्म भी करना चाहिए उसे व्यर्थ में बरबाद नहीकरना चाहिए। और यदि दुखनिवारणार्थ दान दिया जाय तो अत्यन्त उपयोगी होता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि शरीर को स्वस्थ रखने हेतु तथा रोगों का शमन करने हेतु व्रत उपवास की महत्वपूर्ण भूमिका है। जिस प्रकार आदमी चलते-चलते एवं दिन भर काम करते-करते थक जाता है, उसी प्रकार थके हुए पाचन तंत्र को अथवा उसके प्रत्यंग को विश्रान्ति देने के लिए व्रत की अत्यधिक आवश्यकता है। अति भोजन में शरीर की ऊर्जा का बहुत सा भाग उसे पचाने में व्यय हो जाता है, अतः विषाक्त द्रव्यों का पूरी तरह से निराकरण नहीं हो पाता है। यह अवस्था रोगों को उत्पन्न करती है।

1- सांख्यदर्शन, 4/9

2- भारतीय व्रतोत्सव, पृ0 298

आंशिक विश्राम देने के लिए तो रसाहार, शुद्ध आहार, अल्पाहार का प्रयोग करना चाहिए, जिससे कि पाचन क्रिया में थोड़ी सी शक्ति लगे अतः रोग निवारक सभी उपायों में उपवास प्राकृतिक सरल एवं श्रेष्ठ चिकित्सा है। उपवास के तीन उद्देश्य हैं — शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ। इससे दमा, मोटापा, कब्ज, बवासीर, यकृत जैसे आदि रोगों में बहुत फायदा होता है। प्रसिद्ध आयुर्वेदिक महर्षि चरक के अनुसार उल्टी, अतिसार, अजीर्ण बुखार, शरीर का भारीपन, जी मिचलाना, अरूचि आदि रोगों में व्रतोपवास परम औषधि है।

डा0 प्यूरिंगटन ने आरोग्य, जीवन का आनन्द सौन्दर्य, स्वतंत्रता शान्ति तथा शक्ति चाहने वालों को उपवास करने की सलाह दी। व्यक्ति की शारीरिक क्षमता के अनुसार 1 से 21 दिन उपवास करने का विधान है। भारतीय धार्मिक परम्परा ने समय-समय पर विभिन्न व्रतों का समावेश उत्तम स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर किया। इसीलिए एकादशी के दिन मोटापा बढ़ाने वाले चावल आदि स्टार्चयुक्त पदार्थों का निषेध तथा प्राणशक्ति बढ़ाने वाले फलाहार का निर्देश निश्चय ही प्रशंसनीय है।

व्रत रखने के लिए हम लोग देवालय जाने के लिए सूर्योदय से पहले उठकर स्नान करते हैं, इससे रूप, तेज, आरोग्य, मेधा आयु आदि की वृद्धि होती है। देवपूजा के लिए हम फूल चुनते हैं इससे शुद्धवायु मिलती है, जिससे शारीरिक तथा मानसिक लाभ एवं शक्ति का लाभ होता है। चन्दन लगाने से मस्तिष्क एवं दृष्टि की शक्ति बढ़ती है। मन्दिर में पूजा के समय शंख बजाने

से फेफड़ों की शुद्धि तथा छाती की विशालता सम्पन्न होती है। इस प्रकार सांस्कृतिक महत्त्व के साथ-साथ व्रतों का वैज्ञानिक महत्त्व भी कम नहीं है।

व्रतों के सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व की उपरोक्त पंक्तियों से परिलक्षित होता है कि भारतीय संस्कृति में व्रतों द्वारा मानव जीवन को संस्कारित करने एवं सद्गुणों का विकास करने तथा वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से ओत-प्रोत करते हुए अखण्ड भारत के निर्माण में सहयोग प्राप्त होता है। व्रतों द्वारा मानवीय मूल्यों का निर्माण स्वाभाविक रूप से हो जाता है।

समीक्ष्य पुराणों में व्रतों के निषिद्ध कर्मों का उल्लेख आया है जिसका पूर्ण विवेचन हम पूर्व अध्याय में कर चुके हैं। व्रत का अनुष्ठान करता हुआ व्यक्ति निषिद्ध कर्मों के त्याग के प्रति सजग रहता है और इस प्रकार उसके जीवन से असत प्रवृत्तियां दूर होने लगती हैं। सत प्रवृत्तियों की ओर सहज ही मन आकृष्ट हो जाता है, जिनका आश्रय लेकर सभी वर्णों के व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करते हुए जीवन का फलरूप अमृतत्व प्राप्त कर लेता है।

अस्तु, भारतीय संस्कृति के विकास में पुराणों में प्राप्त इन व्रतों का सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त प्रभाव हुआ अभिव्यक्त है। मैं पुराण रचयिता वेदव्यास की इस परिप्रेक्ष्य में मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करती हूँ। आज पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित भारतीय जनता को इन व्रतों का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए। मेरा विश्वास है कि व्रतों का अनुष्ठान करने वाले व्यक्तियों द्वारा एक ऐसे समाज की संरचना बनती रहेगी जो हमारी प्राचीन संस्कृति को सुरक्षित रखने में सिद्ध होगा।

****

उपसंहार

****

उपसंहार

संस्कृत वाङ्मय में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। महाभारत के बाद इन्हें पंचम वेद कहा गया है। इनका बाह्यरूप तथाअन्तस्वरूप प्रायः रामायण, महाभारत और स्मृतियों के समान है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नारदीय एवं अग्निपुराणों में विधि निषेधात्मक आद्योपान्त वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में व्रत कीव्युत्पत्ति, अर्थ, व्रत उत्सव एवं पर्व, व्रत एवं धर्म तथा मानव जीवन में व्रतों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है, इसके साथ ही व्रतों की वैज्ञानिकता भी दी गयी है। द्वितीय अध्याय में आलोच्य पुराणों के रचयिता, संस्करण, विषयवस्तु एवं पुराण लक्षणों की दृष्टि से आलोच्य पुराणों का वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में नारदीय एवं अग्निपुराणों का व्रत -सूची तथा वर्गीकरण वर्णित किया गया है। चतुर्थ अध्याय में तिथि एवं काल,निर्णय, पूर्वान्ह कृत्य, अपरान्ह कृत्य, अनुष्ठान तथा पारण के बारे में बताया गया है। पंचम अध्याय में व्रतकथा, माहात्म्य एवं फलश्रुति का वर्णन है। षष्ठ अध्याय में सभी निषिद्ध, प्रायश्चित्त एवं अन्य कर्मों का वर्णन किया गया है। सप्तम अध्याय में व्रतों का सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व दर्शाया गया है।

व्रत मनुष्यमात्र के उद्धार के लिए एक सुगम साधन है और तो क्या तल्लीन होकर व्रत करने से मनुष्य का मन ईश्वर में संलग्न होता है और ऐसा होने से लोक मे सुख तथा परलोक में भी सुख की प्राप्ति होती है, एवं निष्काम भाव से केवल भगवत्प्रीत्यर्थ व्रताचरण करने पर मोक्ष या भगवद्चरणों में अहैतुक प्रेम की

प्राप्ति होती है। उचित तो यही है कि प्रत्येक सद्गृहस्थ को व्रत करना चाहिए क्योंकि इनमें ऐसे गुण होते हैं जिनसे आयु, आरोग्य, आदर सम्मान, धर्म, कर्म, सम्पत्ति स्वतः प्राप्त होते हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि कोई भी परिवार अपने बच्चों में सत्प्रवृत्तियों का आधान करने के लिए यदि विध्यात्मक या निषेधात्मक कथन करता है तो इस प्रकार कथन मात्र से बालक में सद्गुणों का विकास होना बहुत कम संभव होता पाया गया है जैसे बच्चों से यह कहना कि ब्राह्ममुहूर्त में जगो, स्वाध्याय करो, भगवान कीस्तुति करो आदि उपदेशों का उन पर कोई प्रभाव नहीं होताऔर बच्चों की प्रवृत्ति उसके विपरीत ही दिखायी पड़ती है। अतः बच्चों में सुन्दर संस्कार डालनेके लिए हमें वही करना चाहिए जैसा कि हम उन्हें बनाना चाहते हैं।इस दिशा में व्रत हमारी बहुत सहायिता करते हैं। वार, व्रत, तिथिव्रत, या मासिक व्रत करते हुए हम स्वयं कम से कम सप्ताह पक्ष या मास में एक दिन व्रतों के माध्यम से निषिद्ध कर्मों अर्थात् पाप से रहित होते हुए निष्कलुष एवं उदात्त संस्कृति से ओतप्रोत अपनी भावी पीढ़ी का निर्माण कर सकेंगे। क्योंकि बालक वही करता है जो घर, परिवार विद्यालय ~~कक्ष~~ या समाज में देखता है।

मैं यह कहना अपना कर्तव्य समझती हूँ कि हमें अपनी संस्कृति का पालन अवश्य करना चाहिए। अपने धर्म के लिए सर्वस्व त्याग करने की प्रेरणा भगवान श्रीकृष्ण ने भी दी है -

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"[1]

1- श्रीमद्भगवद्गीता, 3/35

सर्वस्व त्याग करते हुए यज्ञ, दान, तप आदि का पालन करना हमारा परम कर्तव्य है। गीता में कहा गया है —

"यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।" [1]

अन्त में मुझे यह कहने में भी संकोच नहीं है कि अपने पूज्य गुरुदेव डॉ० जगदेव प्रसाद पाण्डेय जी के निर्देशन में मेरे परम सौभाग्य से ही व्रतों पर शोध करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। व्रतों पर अध्ययन करते हुए पुराणवर्णित व्रतों का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मैं मानती हूँ कि मेरे स्वर्गस्थ माता-पिता का आशीर्वाद ही अवसर पाकर फलित हुआ है।

1- श्रीमद्भगवद्गीता, 18/85

****

परिशिष्ट

****

****

परिशिष्ट

****

****

सहायक ग्रन्थ-सूची

****

सहायक ग्रन्थ-सूची

(1) नारदीयपुराण – वेदव्यासकृत, अनुवादक तारणीश झा

(2) अग्निपुराण : वेदव्यासकृत, अनुवादक तारणीश झा

(3) पुराण विमर्श / श्री बलदेव उपाध्याय, बनारस

(4) धर्मशास्त्र का इतिहास : पी0वी0काणे

(5) कल्याण गो अंक, गीता प्रेस गोरखपुर

(6) कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, गीता प्रेस गोरखपुर

(7) व्रत परिचय : हनुमान प्रसाद पोद्दार

(8) भारतीय व्रतोत्सव : श्री पुरूषोत्तम शर्मा

(9) मनुस्मृति : चौ0सं0सी0बनारस

(10) श्रीमद्भगवद्गीता :

(11) श्रीमद्भागवत : गीताप्रेस गोरखपुर

(12) शब्द कल्पद्रुम

(13) हितोपदेश

(14) गरूड़पुराण

(15) पाणिनिसूत्र

(16) अमरकोष : चौखम्बा संस्कृत सीरीज

(17) कठोपनिषद

(18) पाणिनिसूत्र

(19) वायुपुराण : हरिनारायण आप्टे, पूना

(20) पद्मपुराण : महादेव चिमणाजी आप्टे पूना

(21) ब्रह्माण्डपुराण

(2)

(22)देवी भागवत

(23)मत्स्य पुराण : हरिनारायण आप्टे, पूना

(24)विष्णु पुराण : गीताप्रेस गोरखपुर

(25)महाभारत : गीता प्रेस गोरखपुर

(26)संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

(27)निघण्टु : सं0 देवराज कलकत्ता

(28)अष्टाध्यायी : वृन्दावनगु0कु0वि0वि0वृन्दावन

(29)पुराण समीक्षा: डॉ० हरिनारायण दुबे

(30)ऐतरेय ब्राह्मण